

प्रकाशक : डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक
SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ० प्र०)
दूरभाष : 9910777969

E-mail : harisharanverma1@gmail.com
WWW.IJSCJOURNAL.COM

सहयोग राशि (भारत में)

(व्यक्तिगत) (आजीवन 5100 रुपये)
(संस्थागत) (आजीवन 7100 रुपये)

कृपया सहयोग राशि बैंक ड्राफ्ट से ही भेजें।

बैंक ड्राफ्ट, संपादक "इण्डियन जर्नल ऑफ सोशल कन्सर्न्स" के पक्ष में देय होगा। आजीवन सदस्यता केवल दस वर्षों के लिए मान्य होगी। यदि किसी कारणवश पत्रिका का प्रकाशन बन्द हो जाता है तो आजीवन सदस्यता स्वतः ही समाप्त हो जायेगी।

संपादकीय कार्यालय :

1. डॉ० हरिशरण वर्मा, प्रधान सम्पादक
F-120, सेक्टर-10, DLF, फरीदाबाद (हरियाणा) 121006
harisharanverma1@gmail.com 09355676460
WWW.IJSCJOURNAL.COM

2. डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक
SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ० प्र०)

क्षेत्रीय सम्पादक

1. डॉ० वाई.आर. शर्मा, A-24, रेजिडेंसल कैम्पस, न्यू कैम्पस, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू-180001, फोन : 09419145967
2. डॉ० सलमा असलम, ओल्ड टाउन बरामुला, कश्मीर पिन - 193101, मौ० 9682162934
3. डॉ० आरती लोकेश P. o. Box 99846, Dubai, UAE 97150-4270752
4. श्री मोहनलाल, 11 अशोक विहार, संजय नगर, पो. इज्जत नगर बरेली (उ० प्र०) फोन : 09456045552
5. श्री जितेन्द्र गिरधर, कार्यालय सहायक 105/26 जवाहर नगर, कॉर्पोरेटिव बैंक के पीछे, रोहतक 09896126686
6. Dr. Vimla Devi, Asst. Professor (History) M.B.G.P.G College Haldwani Nainital (Uttarakhand) G-mail address. drvimla2015@gmail
7. डॉ० प्रिया कपूर, सहायक प्रोफेसर, डी० ए० वी शताब्दी कालेज, फरीदाबाद मौ० 9711196954
8. डॉ० ऊषाणी हिन्दी-विभाग हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला-5
9. विमला टोप्पो, एस० आर० इंटरप्राइसेस म्युनिसिपल काम्पलेक्स सोप न० 4, डेरी फार्म, पोर्ट बलेयर, पी० ओ० जंगली घाट -744103 साउथ अंडमान
10. डॉ० राजपाल, सहायक प्रो० राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हिसार
11. डॉ० प्रवेश कुमारी, सहायक प्रो० (हिन्दी-विभाग), बाबा मस्तराथ, विश्वविद्यालय, रोहतक, (हरियाणा)
12. डॉ० निर्भय शर्मा, असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी), संघटन राजकीय महाविद्यालय भदपुरा, नवाबगंज, एम० जे० पी० रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उ० प्र०) पिन कोड - 262406.
Mobile No: 9634160016 Email: dr.nirbhaysharma@gmail.com

संरक्षक मण्डल :

1. प्रो० डॉ० चक्रधर त्रिपाठी पूर्व कुलपति, उड़ीसा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट, 763004, चलभाषा: 9437568809
2. डॉ० दिनेश मणी त्रिपाठी, प्रधानाचार्य एन० पी० के० आई कालेज, सरदार नगर बसडीला (गोरखपुर) उ० प्र०
3. डॉ० नरेश मिश्रा (पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
4. डॉ० वाई.आर.शर्मा, (राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू)
5. डॉ० सुधांशु कुमार शुक्ल पूर्व चेयर हिन्दी, आई. सी. सी. वासा विश्वविद्यालय, वासा (पोलैन्ड) मौ० 48579125129
6. डॉ० तपन कुमार शण्डिल्य, पूर्व कुलपति, डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय रांची, (झारखण्ड) 9431049871
7. डॉ० जंगबहादुर पाण्डेय (पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग) रांची विश्वविद्यालय, रांची - 834008
फोन : 09431595318
8. सुदेश रावत प्राचार्य एस. एन. आर. जयराम महिला कॉलेज, लोहार माजरा, कुरुक्षेत्र हरियाणा 36119 (सेठ नारंग राय लोहिया जय राम महिला कॉलेज)
9. Sh. Butta Singh gill, PPS, Dy Superintendent of Police. No 409 ,Street no 7 Ghuman Nagar , Sarhind Road, Patiala Punjab -147001.

परामर्शदात्री समिति :

1. डॉ० विजयदत्त शर्मा, पूर्व निदेशक, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी पंचकूला (हरियाणा)
2. डॉ० सुधेश (पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली)
3. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल (पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर)
4. डॉ० राजकुमारी सिंह, प्रोफेसर एफ.टी.एम. विश्वविद्यालय लोधीपुर राजपूत मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश 9760187147
5. डॉ० माया मलिक, पूर्व प्रोफेसर हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
6. डॉ० ममता सिंहल, (प्रोफेसर एवं अध्यक्षा अंग्रेजी विभाग) जे० वी० जैन कॉलेज सहारनपुर
7. डॉ० विनीत बाला, सहायक प्रो. भूगोल विभाग, वैश्य पी.जी. कॉलेज, रोहतक

संपादकीय विशेषज्ञ समिति :

हिन्दी विभाग:

1. डॉ० राजेश पाण्डे (डी.वी. कॉलेज, उरई, जिला जालौन, उ० प्र०)
2. डॉ० अनिता, सहायक प्रोफेसर, (हिन्दी), श्री अरविन्दो कालिज दिल्ली (सांध्य) मौ० :8595718895
3. डॉ० सुशील कुमार शर्मा (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय शिलांग, मेघालय)
4. डॉ० शशि मंगला, पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त स्नातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
5. डॉ० के० डी० शर्मा, पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त, स्नातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
7. मुकेश चन्द्र गुप्ता (हिन्दी विभाग, एम.एच.पी.जी. कॉलेज, मुरादाबाद)
8. डॉ० गीता पाण्डेय (रीडर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, एस.डी.

9. डॉ० प्रवीण कुमार वर्मा (सह प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग) गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय, पलवल
10. डॉ० सुधा चौहान, पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग, वैश्य कालिज, भिवानी
11. डॉ० रूबी, (सीनियर सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग कश्मीर)
12. डॉ० सुमन राठी, सहायक प्रो० हिन्दी विभाग, मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर रोहतक
13. डॉ० सुधा कुमारी (हिन्दी विभाग) एन०जी०एफ० डिग्री कालिज, उडदू, अध्ययन केन्द्र मथूरा रोड, पलवल 982719456
14. डॉ० एम. के. कलशेट्टी, हिन्दी विभाग, श्री माधवराव पाटिल महाविद्यालय, मुरुम तह० अमरगा, जिला उस्मानाबाद (महाराष्ट्र)-413605
15. डॉ० मनोज पंड्या, व्याख्याता हिन्दी विभाग, श्री गोविन्द गुरु, राजस्थान महाविद्यालय, बांसवाड़ा-327001, मो० 09414308404
16. डॉ. कृष्णा जून, प्रो० हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
17. डॉ. विपिन गुप्ता, सहायक प्रोफेसर, वैश्य कॉलेज भिवानी
18. प्रो० (डॉ०) वन्दना शर्मा, म. न. 2, प्रोफेसर लॉज, किचम सी. डी. एम. मोदीनगर (उ.प्र.) 201204, मो० 2760411251
19. डॉ० जाहिदा जबीन, (प्रो० एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर-६)
20. डॉ० टी०डी० दिनकर, पूर्व प्रो० एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग अग्रवाल कॉलेज, बल्लभगढ़
21. डॉ० सुभाष सैनी, (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग दयालसिंह कॉलेज, करनाल, हरियाणा)
22. डॉ० उर्विजा शर्मा, (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग शम्भु दयाल स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, गाजियाबाद)
23. डॉ० ममता कुमारी, सहायक प्रो०, डी० ए०वी० शताब्दी महाविद्यालय, फरीदाबाद हरियाणा
24. डॉ० मधुकान्त, (वरिष्ठ साहित्यकार) 211- L मॉडल टाऊन, रोहतक
25. डॉ० कंचन पुरी, विभागध्यक्ष, रघुनाथ गर्ल्स पी० जी० कालेज मेरठ
26. डॉ० प्रवेश कुमारी, सहायक प्रो० हिन्दी बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर रोहतक
27. डॉ० राजपाल, सहायक प्रो० राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हिसार
28. डॉ० प्रवेश कुमारी, सहायक प्रो० टिकाराम कन्या कॉलेज, सोनीपत, हरियाणा
29. प्रो. प्रणव शास्त्री, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत - 262 001 उ. प्र. मो. 98379 60530 drpranav&pbt23@rediffmail-com
30. प्रो. राखी उपाध्याय, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष - हिन्दी विभाग, डी. ए. वी. कॉलेज, देहरादून - 248 001 (उत्तराखण्ड) मो. 94111 90099 drakhi.418@gmail-com
31. डॉ० सुनीता जसवाल, असिस्टेंट प्रोफेसर - हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला (हिमाचल प्रदेश) मो. 7018621542
32. डॉ० सुमन रानी, सहायक प्रोफेसर, अस्थाई, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय पलवल हरियाणा मो० 9050289680 sumanbhati808@gmail.com
33. डॉ० संगम वर्मा, सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, सैक्टर 11, चण्डीगढ़ 9463603737.kavysavvy@yahoo.com
34. डॉ० प्रीति गुप्ता, हिन्दी व्याख्याता GGSSS राम नगर न०1 पहाड़गंज नई दिल्ली (शिक्षा निदेशालय दिल्ली सरकार) मो० 8058138017 sweetpriti80@gmail.com
35. संजय कुमार, व्याख्याता, GBSSS करावल नगर, दिल्ली (शिक्षा निदेशालय दिल्ली सरकार) संपर्क- 8769406872 ई मेल sanjaydholpuria51@gmail.com

अंग्रेजी विभाग:

1. डॉ. ममता सिंहल, अध्यक्षा, अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर, उ.प्र.
2. डॉ. रणदीप राणा, प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. डॉ. जयवीर सिंह हुड्डा, प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
4. डॉ० रविन्द्र कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग, चौ० चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
5. डॉ. अनिल वर्मा (पूर्व रीडर, अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर)
6. डॉ० जे. के. शर्मा, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक
8. डॉ. पी.के. शर्मा, (प्रो., अंग्रेजी-विभाग, राजकीय के.आर.जी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर)
9. डॉ. गीता रानी शर्मा, (सहायक प्रोफेसर) गो.ग.दत्त सनातन धर्म कॉलेज, पलवल
10. डॉ. किरण शर्मा, (एसोसिएट प्रोफेसर) राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय रोहतक
11. डॉ० राजाराम, सहायक प्रोफेसर (अंग्रेजी) ओम स्ट्रलिंग ग्लोबल, विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

वाणिज्य विभाग:

1. डॉ० नवीन कुमार गर्ग (वाणिज्य विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. डॉ० ए.के. जैन, रीडर (वाणिज्य विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर)
3. डॉ० दिनेश जून, एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फरीदाबाद
4. डॉ० एम.एल. गुप्ता, (पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, वाणिज्य एवं व्यवसायिक प्रशासन संकाय, एस.एस.वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हापुड़ एवं संयोजक-शोध उपाधि समिति एवं संयोजक बोर्ड ऑफ स्टीडिज चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ)
5. डॉ. गीता गुप्ता, (सहायक प्रोफेसर) वाणिज्य विभाग, वैश्य महिला महाविद्यालय, रोहतक)
6. Dr,shaveta Kakkar Associate professor in commerce Vaish Mahila Maha vidyalaya Rohtak

राजनीति शास्त्र विभाग:

1. साकेत सिसोदिया, (राजनीति शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
2. डॉ० रोचना मित्तल (रीडर एवं अध्यक्षा, राजनीति शास्त्र-विभाग, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
3. डॉ० राजेन्द्र शर्मा (एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद, उ०प्र०)
4. डॉ० कौशल गुप्ता, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली Mob.: 09810938437
5. डॉ० पी.के. वाष्णीय, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, जे.वी.जैन कॉलेज, सहारनपुर
6. डॉ० सुदीप कुमार, सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, पेहवा (कुरुक्षेत्र) Mob.: 9416293686
7. डॉ० वाई०आर० शर्मा, एसो० प्रो०, राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू
8. डॉ. रेनू राणा, (सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, प. नेकीराम शर्मा राजकीय महाविद्यालय रोहतक 124001
9. डॉ. ममता देवी, (सहायक प्रोफेसर, राजनीतिक शास्त्र विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

इतिहास विभाग:

1. डॉ० भूकन सिंह (प्रवक्ता, इतिहास विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. डॉ० मनीष सिन्हा, पी.जी. विभाग, इतिहास, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार-824231
3. डॉ० राजीव जून, सहायक प्रो० इतिहास, सी.आर. इन्स्टीट्यूट ऑफ ला, रोहतक
4. डॉ० मीनाक्षी (सहायक प्रोफेसर इतिहास विभाग) सी.आर. किसान कॉलेज, जीन्द
5. डॉ० रश्मि, (अध्यक्षा) इतिहास विभाग, हिन्दू कन्या महाविद्यालय, जीन्द (हरियाणा) पिन - 126102

भूगोल विभाग:

1. डॉ० पी.के. शर्मा, पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, भूगोल विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर
2. रश्मि गोयल (भूगोल विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
3. डॉ० भूपेन्द्र सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, राजकीय पी.जी. कॉलेज, हिसार
4. डॉ० विनीत बाला, सहायक प्रो. भूगोल विभाग, वैश्य पी.जी. कॉलेज, रोहतक
5. डॉ० प्रदीप कुमार शर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक

शिक्षा विभाग:

1. डॉ० उमेन्द्र मलिक, एसिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, म.द.वि., रोहतक
2. डॉ० संदीप कुमार, सहायक प्रो० शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली एसोसिएट
3. डॉ० तपन कुमार बसन्तिया, एसोसिएट प्रोफेसर, सेंटर फॉर एजुकेशन, सेंट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ बिहार, गया कैम्पा, विनोभा नगर, वार्ड नं. 29, Behind ANMCH मगध कालोनी, गया-823001 बिहार Mob.: 09435724964
4. डॉ० (प्रो०) अनामिका शर्मा, प्राचार्या, एम.आर. कॉलेज ऑफ एजुकेशन, फरीदाबाद
5. डॉ० मनोज रानी, सहायक प्रोफेसर (अंग्रेजी) एम.एल.आर.एस. कॉलेज ऑफ एजुकेशन, चरखी दादरी (भिवानी)
6. डॉ० अनीता ढाका, (प्राचार्या, आर.जी.सी.ई. कॉलेज, ग्रेटर, नोएडा I)
7. डॉ० ममता देवी, (सहा. प्रो. बी.आई.एम.टी. कॉलेज कमलपुर गढ़ रोड, मेरठ)

गृह विज्ञान

1. डॉ० श्रीमती पंकज शर्मा, (सहायक प्राफेसर), गृह विज्ञान (प्रसार शिक्षा) राजकिय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रोहतक

शारीरिक शिक्षा विभाग:

1. डॉ० सरिता चौधरी, सहायक प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, आर्य गर्ल्स कॉलेज, अम्बाला कैट, हरियाणा
2. डॉ० वरुण मलिक, सहायक प्रोफेसर, म.द.वि., रोहतक
3. डॉ० सुनील डबास, (पद्मश्री व द्रोणाचार्य अवार्ड) HOD in physical education "DGC Gurugram

समाज शास्त्र विभाग:

1. प्रवीण कुमार (समाजशास्त्र विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. डॉ० कमलेश भारद्वाज, समाज शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद

मनोविज्ञान विभाग:

1. डॉ० चन्द्रशेखर, सहायक प्रोफेसर साइक्लोजी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू
2. डॉ. रश्मि रावत, (मनोविज्ञान विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, देहरादून)
3. अनिल कुमार लाल (प्रवक्ता, मनोविज्ञान विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)

अर्थशास्त्र विभाग:

1. डॉ० जसवीर सिंह (पूर्व रीडर अर्थशास्त्र विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मवाना)
2. डॉ० सुशील कुमार (एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद, उ०प्र०)
3. डॉ० अखिलेश मिश्रा (प्राध्यापक, अर्थशास्त्र-विभाग, एस.डी.पी. जी. कॉलेज, गाजियाबाद)
4. डॉ० सत्यवीर सिंह सैनी, एसो०प्रो० (अर्थ०वि०, गो०ग० सनातन धर्म पी०जी० कॉलेज, पलवल)

विधि विभाग:

1. डॉ० नरेश कुमार, (प्रोफेसर, विधि-विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
2. डॉ० विमल जोशी, (प्रोफेसर, विधि-विभाग भगत फूलसिंह महिला विश्वविद्यालय खानपुर, सोनीपत)
3. डॉ० जसवन्त सैनी, (सहायक प्रोफेसर, विधि-विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
4. डॉ० वेदपाल देशवाल, (सहायक प्रोफेसर, विधि-विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
5. डॉ. अशोक कुमार शर्मा, एसो. प्रोफेसर, विधि विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर
6. डॉ. राजेश हुड्डा, सहायक प्रो०, विधि विभाग, बी.पी.एस. महिला विश्वविद्यालय, खानपुर कलां, सोनीपत
7. डॉ० सत्यपाल सिंह, (सहायक प्रोफेसर, विधि-विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
8. डॉ० सोनू, (सहायक प्रोफेसर, विधि-विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
9. डॉ० अर्चना वशिष्ठ, (सहायक प्रोफेसर, के०आर० मंगलम विश्वविद्यालय, सोहना रोड, गुरुग्राम)
10. डॉ० आनन्द सिंह देशवाल, (सहायक प्रोफेसर, सी०आर० कॉलेज ऑफ लॉ रोहतक)
11. अनसुईया यादव, (सहायक प्रोफेसर, विधि विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा)

गणित विभाग:

1. डॉ० विनोद कुमार, रीडर एवं अध्यक्ष गणित विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर
2. डॉ० विरेश शर्मा, लेक्चरर गणित विभाग, एन.ए.एस. कॉलेज, मेरठ
3. डॉ० सलौनी श्रीवास्तव सहायक प्रो०, गणित विभाग आर० बी० एस० कालेज आगरा
4. Dr. Dhruv Kumar Singh.HOD, Department of Mathematics, YBN University, Rajaulatu, Namkum, Ranchi, Jharkhand, India. Pin-834010
5. डॉ० रश्मि मिश्रा प्रोफेसर (एप्लाइड साइंस एंड हमनीटीएस), मैथमेटिक्स गनेशी लाल बजाज इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी एंड मैनेजमेंट ग्रेटर नॉएडा

कम्प्यूटर विभाग:

1. प्रो० एस.एस. भाटिया (अध्यक्ष, स्कूल ऑफ मैथमेटिक्स एण्ड कम्प्यूटर एप्लीकेशन, थापर विवि, पटियाला)
2. सर्वजीत सिंह भाटिया (प्रवक्ता, कम्प्यूटर साइंस, खालसा कॉलेज, पटियाला)
3. डॉ० बालकिशन सिंहल, सहायक प्रोफेसर, कम्प्यूटर विभाग, म०द०विश्वविद्यालय, रोहतक

संस्कृत विभाग:

1. डॉ० रामकरण भारद्वाज पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, लाजपत राय कॉलेज, साहिबाबाद (गाजियाबाद)
2. डॉ० सुनीता सैनी, एस० प्रोफेसर संस्कृत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. डॉ० सुमन, (सहायक प्रोफेसर, संस्कृत-विभाग, आदर्श महिला महाविद्यालय, भिवानी।)
4. डॉ० दिनेश मणि त्रिपाठी {प्रधानाचार्य} एल०पी०के० इंटर कॉलेज सरदार नगर बसडिला {गोरखपुर}
5. डॉ० दानपति तिवारी, प्रोफेसर, एवं अध्यक्ष, महात्मा गांधी काशी विद्यापिठ, वाराणसी, उत्तर-प्रदेश
6. डॉ० दिनेशचन्द्र शुक्ल, सहायक प्रोफेसर, महात्मा गांधी काशी विद्यापिठ, वाराणसी, उत्तर-प्रदेश

रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग:

1. डॉ० आर०एस० सिवाच, प्रो० एवं अध्यक्ष, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, म०द०वि०, रोहतक

1254

दृश्यकला विभाग:

1. डॉ० सुषमा सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर, दृश्यकला विभाग, म०द० विश्वविद्यालय, रोहतक

पंजाबी विभाग:

1. डॉ० सिमरजीत कौर, सहायक प्रो० (पंजाबी), ईश्वरजोत डिग्री कालेज, पेहवा (कुरुक्षेत्र)

संगीत विभाग:

1. डॉ० संध्या रानी, अध्यक्षा, संगीत विभाग, यूआरएलए, राजकीय पीजी कॉलेज, बरेली
2. डॉ० हुकमचन्द, एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष तथा डीन, संगीत विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा
3. डॉ० अनीता शर्मा, (संगीत-गायन प्राध्यापिका, जयराम महिला महाविद्यालय लोहारमाजरा (कुरुक्षेत्र)
4. डॉ० वन्दना जोशी, (सहायक प्राध्यापक, विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा)

पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग:

1. डॉ० सरोजनी नंदल, प्रोफेसर (पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग) महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

उर्दू विभाग:

1. डॉ० मो. नूरुल हक, (एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, उर्दू, बरेली कॉलेज, बरेली)

कृषि विभाग

1. डॉ० गोविन्द प्रकाश आचार्य सह-आचार्य (कृषि-प्रसार) श्री गोविन्द गुरु राजकीय महाविद्यालय, बांसवाड़ा राजस्थान मो. 9460545836

दर्शनशास्त्र

1. Prof, Dr, Asha Devi department of Philosophy Govt P G college kotdwar pauri Garhwal Uttarakhand 246149

LIFE MEMBERS OF INDIAN JOURNAL OF SOCIAL CONCERNS

1. **Dr. Praveen Kumar Verma**
Associate Professor, Hindi Department, GGD Sanatan Dharam Post Graduate College, Palwal.
2. **Smt. Veena Pandey (Shukla)**
Hindi Teacher, Jawahar Navodaya Vidyalaya, Dhoom Dadri, Distt. Gautambudhnagar - 203207 (U.P.)
3. **Dr. Suman**
H.No. 1001, Radha Swami Colony, Rohtak Road, Bhiwani (Haryana)
4. **Dr. Subhash Chand Saini** (Hindi Department, Dyal Singh College, Karnal, Haryana)
5. **Dr. Vimla Devi, Asst. Professor (History)** M.B.G.P.G College Haldwani Nainital (Uttarakhand)
G-mail address. drvimla2015@gmail
6. **Princepal**, Associate Professor (Hindi), Aggarwal College, Ballabgarh (Haryana)
7. **Dr. Dinesh Mani Tirpathi (Principal)** L-P-K Inter College sardar Nagar, Basdila Gorkhpur
8. **Dr. Govind Prakash Acharya** F-63, Chandra Vardai Nagar, UIT, Colony, Shaheed Bhagat Singh Marg, Opposite Ramganj Thana, Taragarh Road, Ajmer (Rajasthan) Pincode--305003.
9. **Amardeep Singh** Mcf C -21, Near Deep Vatika, Bhagat Singh Colony, Ballabgarh 121004, Mob. 9873814066
10. **Principal**, Goswami Ganesh Dutt Sanatam Dharma College Palwal (Haryana)



आचार्य मनिष र. जोशी
सचिव

Prof. Manish R. Joshi
Secretary



सत्यमेव जयते



आज़ादी का
अमृत महोत्सव
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग
University Grants Commission
(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार)
(Ministry of Education, Govt. of India)

F.No. 1-1/2018(CARE/JOURNAL)-Part file 22 माघ 1946/11 February, 2025

सार्वजनिक सूचना

In supersession of the Public Notice dated 28th November 2018 for establishing UGC Consortium for Academic and Research Ethics (UGC- CARE), the Commission, in its 584th meeting held on 3rd October 2024, based on the recommendations of the expert committee, has decided to discontinue UGC-CARE listing of Journals and develop suggestive parameters for choosing peer-reviewed journals by faculty members and students. The suggestive parameters, developed by a group of experts and academicians, are now placed in the public domain for their feedback till **25th February, 2025 at email id: journal@ugc.gov.in.**

The stakeholders, including HEIs, faculty members, researchers, and students, may take note of it.


(मनिष जोशी)

बहादुरशाह जफ़र मार्ग, नई दिल्ली-110002 | Bahadur Shah Zafar Marg, New Delhi-110002
दूरभाष (Ph.): 011-23236288/23239337 | सम्पर्क सूत्र (ई-मेल) (E-mail) : secy.ugc@nic.in

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ स.
1.	अनामिका के काव्य में भाषा और शिल्प का नवाचा वर्षा कुमारी यादव, डॉ. मधु वर्मा		9-11
2.	"लोकसभा चुनाव 2024: मतदाता व्यवहार, क्षेत्रीय प्रवृत्तियाँ और चुनावी गतिशीलता का विश्लेषणात्मक अध्ययन"		12-16
3.	अभिलाष कुमार		
4.	स्थानीय से वैश्विक तक: गीतांजलि श्री के साहित्य में भारतीय और विश्व दृष्टि		17-19
5.	कुमारी बबिता यादव		
6.	स्त्री विमर्श		20-22
7.	बबली		
8.	कुरुक्षेत्र का प्रतिपाद्य		23-25
9.	डॉ० आलोक रंजन		
10.	'रश्मि' नामकरण का औचित्य		26-28
11.	डॉ० अमृता धीर		
12.	डॉ. नगेंद्र का 'रस' चिंतन		29-31
13.	डॉ. गौतम कुमार गुप्ता		
14.	उत्तराखण्ड गढ़वाल में संत – साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन		32-35
15.	डॉ० पुष्पा रानी		
16.	डॉ. नगेंद्र और उनका रस-सिद्धांत		36-38
17.	डॉ. गौतम कुमार गुप्ता		
18.	सहकारी समितियाँ, स्वयं सहायता समूह एवं सूक्ष्म वित्त		39-43
19.	डॉ० प्रिया सिंह		
20.	राजस्थानी कलाकार राम जैसवाल के कार्यों का प्राकृतिक चित्रण में योगदान		44-45
21.	प्रो० – ज्योत्सना, प्रियंका		
22.	हिंदी साहित्य में अग्रणी महिला साहित्यकारों का योगदान		46-50
23.	रश्मि सिंह, डॉ० सुनीता कुमारी		
24.	तृतीय-लिंगी समाज का यथार्थ : पोस्ट बॉक्स नं. 203		51-55
25.	नाला सोपारा		
26.	कोमल खलको		
27.	वैदिक परंपरा में पर्यावरण संरक्षण :		56-58
28.	सुनीति त्यागी, डॉ० पूनम शर्मा		
29.	ब्रिटिश शासनकाल के दौरान इलाहाबाद में सामाजिक सुधार आंदोलन		59-63
30.	डॉ० सिद्धार्थ सिंह		
31.	सूचना और प्रौद्योगिकी की अहम भूमिका शिक्षण में		64-71
32.	श्रीमती शांति सोनी		
33.	जनजातीय समुदायों का सामाजिक-सांस्कृतिक एकीकरण – एकात्म भारत की ओर अग्रसर		72-78
34.	डॉ० सुधीर कुमार सिंह		
35.	वर्तमान परिदृश्य में सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन (सी.सी.ई.) पद्धति का समग्र विश्लेषण :		79-83
36.	डॉ. गोपाल प्रसाद "पाठक"		
37.	अतीत की सीख, आज की राह		84-86
38.	डॉ. रजिंदर कौर		
39.	Greening State Budgets: Practical Pathways for Mobilising Climate Finance in India		87-94
40.	Bharti Thakur, Dr. Manju Dalal		
41.	National Company Law Tribunal – of Corporate World		95-99
42.	Dr. Santosh Kumar Sharma		
43.	The Federal Roots in the Formation of India		100-103
44.	Dr. Ritu		

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ स.
23.	Poverty in Rural Areas: A Study of Jhajjar District, Haryana		104-110
24.	Dr. Sudhir Malik, Amrita		
25.	Intersecting Oppressions: Racism, Domestic Violence, and the Silencing of Female Voices in Buchi Emecheta's <i>Second-Class Citizen</i> and <i>Kehinde</i>		111-113
26.	Rinku Rani, Dr. Sneha Sharma		
27.	Comparative Analysis of Religion, Beliefs, and Culture in Parenting: Insights from India and Developed Nations for Best Practices		114-122
28.	Inderpal Singh Kohli, Dr. Nahid Parveen		
29.	A District-Level Analysis of the Spatial Distribution of Scheduled Caste Female Literacy : A Case Study of Haryana		123-127
30.	Dr. Pardeep Kumar Sharma, Sonu		
31.	Title: Sustaining Heritage, Shaping Commerce: The Role of the Indian Knowledge System in Traditional Industries and Global Trade		128-137
32.	Dr. Priyanka Singh		
33.	A Comparative study on the Wrist Width and Hand length of high and low performance volleyball players.		138-140
34.	Dr. Mohd Khalid Khan		
35.	Directive Principles of State Policy in India: Constitutional Vision and Contemporary Challenges		141-145
36.	Rishav Kumar		
37.	Effectiveness of digital marketing and its value in new ventures or Judicial Overreach?		146-151
38.	Dr Kanwaljeet Kaur		
39.	Towards Safer Depths: A Review of Mine Safety in Underground Mining in India – of Hazards, Interventions, and Global Best Practices		152-160
40.	Vidya Prakash, Dr. Deepak Miglani		
41.	"Mapping the Evolution of Managerial and Leadership: A Bibliometric Perspective"		161-166
42.	Kareena Saini, Dr. Seema Rathee		
43.	वस्त्र विज्ञान – एक समग्र अवलोकन		167-169
44.	कुमारी निभा		
45.	नासिरा शर्मा के कहानी संग्रह 'पत्थर गली में नारी जीवन की त्रासदी		170-174

सारांश

समकालीन कवयित्री अनामिका हिन्दी साहित्य में एक विशिष्ट योगदान के लिए जानी — पहचानी जाती है। कवयित्री की काव्य भाषा में सहजता, सरलता, सजगता और प्रवाहमय का सौन्दर्य विद्यमान है। उनकी काव्य भाषा लचीलापन लिये हुए होती है। वह अपनी कविता की भाषा को तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज शब्दों, बिम्ब, प्रतीक और और लयबद्धता के माध्यम से समृद्ध करती है। उनकी कविता की भाषा में नये प्रतीक, मुक्त छन्द, सहज अलंकार योजना पायी जाती है। अनामिका की कविता में स्त्री-पुरुष संबंधों की टकराहट बदलते परिवेश, अकेलापन, टूटते मूल्य और विखंडित होते संयुक्त परिवार की दशा का बखूबी से चित्रण मिलता है। कवयित्री के काव्य का मूल स्वर स्त्री-विमर्श है। उनकी कविता में परिवार एवं समाज, बुद्धिजीवी तथा श्रमजीवी, महानगर और जनपद की संवेदना का विस्तार विद्यमान है। उपेक्षित वर्गों का जीवन्त चित्रण भी अनामिका के काव्य में स्पष्ट रूप से देखा देखा जाता है।

मुख्य शब्द:-

कोलाजनुमा, सवांदधर्मी, स्त्री-अस्मिता, संगृहीत, अख्तियार, पितृसत्तात्मक।

भूमिका रू-

हिन्दी साहित्य के आधुनिक दौर में अनामिका एक सशक्त, विशिष्ट और प्रयोगशील स्वरूप के रूप में उभरी है। भाषा और शिल्प के स्तर पर कवयित्री ने जो नवाचार किए हैं, उसमें परम्परागत काव्यबोध को चुनौती देकर पाठकों को नई संवेदनात्मक दृष्टि प्रदान की है। उनका काव्य नारी संवेदनाओं, सामाजिक दृष्टि सांस्कृतिक विडंबनाओं, आर्थिक, राजनीतिक समस्याओं को नवीन रूप से अभिव्यक्त करता है। अनामिका ने सामान्य जन की भाषा को काव्य में प्रस्तुत किया है। इस भाषा में सांस्कृतिक बहुलता और गहन प्रतीकात्मकता का सामंजस्य विद्यमान हैं। वे हिन्दी, उर्दू, संस्कृत — अंग्रेजी तथा लोकभाषाओं के शब्दों को आत्मसात करते हुए एक बहु-भाषिक काव्यभाषा रचती है। उनका शिल्प भी नवीन रूप धारण करता है। पारम्परिक छन्दों और शैलीबद्धता से हटकर एक खुला, कोलाजनुमा और संवादधर्मी रूप अपनाता है, जो आधुनिक और उत्तर-आधुनिक काव्य प्रवृत्तियों के मध्य सेतु का काम करता है।

शोध प्रविधि:-

अनामिका का जन्म बिहार के मुजफ्फरपुर शहर में 17 अगस्त, 1961 ई. को हुआ। कवयित्री का सम्पूर्ण परिवार सुशिक्षित था, इसलिए वे

बचपन से ही पढ़ने-लिखने की शौकीन थी। उनके पिता बिहार विश्वविद्यालय के कुलपति रहे तथा माता भी सुशिक्षित थी। बचपन में दादी से कहानियाँ सुनती थी। यही कारण है कि अनामिका की कविता के बीच-बीच में गपशप शैली की प्रधानता पायी जाती है। इनके भाषा सौंदर्य को पुरुषों के प्रतिमान पर नहीं आँका जा सकता। इसके लिए स्त्रियों की जीवन — शैली को परखना होगा, तभी स्त्री के भाषा की खूबसूरती समझ में आएगी। अनामिका अपने काव्य — संग्रह 'दूब — धान' में संगृहीत कविता 'भामती की बेटियाँ' में यह मानती है कि अब स्त्री अपनी पीड़ाओं की अभिव्यक्ति स्वयं ही करेगी। उसे किसी पुरुष की जरूरत नहीं है। आज स्त्री इतनी काबिल हो गई है कि अब उसे किसी की कृपा नहीं चाहिए। वह इस कविता में लिखती है दृ

"लिखने की मेज वही है, वही आसान

पांडुलिपि वही, है वही बासन

ग्रंथ लिख रही है पर

भामती की बेटियाँ

इन्होंने अपनी कलम से लिखा है जो

कृपा नहीं, प्रेम का प्रसाद भी नहीं लेंगी,

भामती की बेटियाँ

ग्रंथ अपने स्वयं ही रचेंगी

लगातार

इसी तरह

हर युग में" ⁽¹⁾

प्रस्तुत पंक्तियों में कहा गया है कि विपरीत परिस्थितियों में भी संघर्ष करते हुए स्त्री ने पर्याप्त प्रतिभा हासिल कर ली है, अतः अपनी पीड़ाओं की अभिव्यक्ति करने में वह पूर्णतया सक्षम है।

आधुनिककालीन हिंदी काव्य का साहित्य पिछली सदी में विकास के विविध पड़ावों से गुजरा, जिसमें अनेक विचारधाराओं का बहुत तीव्रता से विकास हुआ। जहां काव्य में इसे छायावादी युग, प्रगतिवादी युग, प्रयोगवादी युग, नई कविता, साठोतरी कविता, समकालीन कविता के नाम से जाना गया। समकालीन दौर में अनामिका ने अपनी काव्य भाषा को एक नए आयाम के रूप में पाठक वर्ग के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

अनामिका ने अपने काव्य में स्त्री — अस्मिता की भी चर्चा की है। कोई मनुष्य जब अन्य से हटकर स्वयं के स्वर की पहचान करता है, तो वहां से अस्मिता का बोध आरंभ होता है। कहा जा सकता है की अस्मिता स्वयं की पहचान है। अनामिका ने भी इस

अस्मिता को अपने काव्य के माध्यम से पाठक के समक्ष रखा है ।
स्त्री अस्मिता के संदर्भ में डॉक्टर रूपा सिंह लिखती है—“अस्मिता
की अवधारणा, आधुनिकता के साथ आने वाली वह अवधारणा है
जिसका अर्थ है — ‘स्व’ की पहचान, अपने होने का बोध । लिंग,
जाति, रिश्ते, नाते, समाज, धर्म, देश, राष्ट्र, बोली तथा व्यवसाय
आदि के आधार पर मानव अपनी अस्मिता की पहचान करता है ।”

(2)

अनामिका की भाषा में स्त्रियों की घरेलू भाषा, रसोई की भाषा और
लोकगीतों की भाषा स्पष्टतया दिखाई देती है । उनकी यह भाषा
पुरुष — प्रधान साहित्यिक परंपरा से अलग स्त्री दृष्टिकोण को
केंद्र में लाती है । अनामिका अपने कविता — संग्रह ‘अनुष्ठुप’ में
संगृहीत कविता ‘चौका’ में लिखती है —

“पृथ्वी — जो खुद एक लोई है—

सूरज के हाथों में दृ

रख दी गई है

पूरी — की — पूरी ही सामने

कि लो, इसे बेलो, पकाओ,

जैसे मधुमक्खियां अपने पंखों की छाह में

पकाती है शहद” (3)

अनामिका ने अपने काव्य में परंपरागत प्रतीकों और
बिंबों के स्थान पर, नवीन प्रतीक और मुक्तक छंद विधान को
प्रमुखता दी है । वे लोककथाओं, घरेलू वस्तुओं और मिथकीय
पात्रों को आधुनिक संदर्भ में प्रयोग करती है । कवयित्री सीता,
द्रौपदी, कैकेयी, बर्तन, दुपट्टा आदि को उनके स्त्री — विमर्श का
हिस्सा बनाती है ।

“और ‘भगवद्गीता’ का वह फल ?

भर्तृहरि के आम की तरह

राजा से रानी, रानी से मंत्री,

मंत्री से गणिका, गणिका से फिर राजा के पास

टहलता हुआ आ ही जाएगा —

रोम — रोम की आंखें खोलता हुआ !” (4)

उपर्युक्त कवितांश अनामिका के साहित्य अकादमी से
पुरस्कृत काव्य — संग्रह “टोकरी में दिगंत थैरी गाथा — 2014” में
संगृहीत कविता ‘सत्रह बरस का प्रतियोगी परीक्षार्थी — माँ, यह
दुख क्यों होता है ?’ से लिया गया है । प्रस्तुत पंक्तियों में
अनामिका ने भारतीय संस्कृति को मुक्तक छंद में अभिव्यक्त किया
है ।

कवयित्री ने उपर्युक्त पंक्तियों में भी मुक्त छंद को अभिव्यक्ति दी है ।

यह अनामिका का प्रिय छंद है ।

“लेट जाती थीं वे

दम साधकर,

जैसे कि भालू के आते ही

लेट गया था

रूसी लोककथा का आदमी

सोचता हुआ की मर लेते हैं कुछ देर,

मरे हुए को भालू और नहीं मारेगा ।” (5)

प्रस्तुत काव्य — पंक्तियों में अनामिका ने मुक्तक छंद में
रूसी लोक कथा का जिक्र किया है । इससे यह सिद्ध होता है कि
कवयित्री को देश — विदेश की कथा — कहानियों का भी अच्छा
ज्ञान था । ‘कविता में औरत’ में अनामिका भाषा के संबंध में
लिखती है — “मुझे तो लगता है कि स्त्रियों के यहाँ कविता —
कहानी में चित्रित हर लैंडस्केप, उनमें प्रयुक्त हर लोकमोटिक या
लोकभाषा से नागमणि की तरह उग गया हर व्यंजन शब्द,
कहावत, मुहावरा, बिम्ब, चरित्र, संवाद, प्रसंगादि अस्मिता की
लड़ाई में एक छोटी — मोटी युद्धभूमि की भूमिका अख्तियार कर
गया है ।” (6)

अनामिका के काव्य में अलंकारों का प्रयोग सूक्ष्म,
सहज, प्रभावशाली और आधुनिक काव्य — सौंदर्य के अनुरूप
हुआ है । कवयित्री अलंकारों का सजावट के लिए प्रयोग नहीं
करती है, बल्कि भावना और विचार की गहनता को अभिव्यक्त
करने के लिए करती है ।

“जिद

एक बटन ही तो है ।” (7)

अनामिका की प्रस्तुत पंक्ति में रूपक अलंकार है । इस पंक्ति में
‘जिद’ की तुलना सीधे ‘बटन’ से की गई है ।

उन से ठनक जाते थे ।

अक्का महादेवी के एकतारे — सी तनी हुई

झनन — झनन बजती थी पीठ !” (8)

उपर्युक्त काव्य पंक्ति में ‘एकतारे — सी’ में उपमा
अलंकार है और ‘झनन — झनन’ में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है ।
अनामिका की प्रस्तुत काव्य — पंक्तियों में ध्वनि सौंदर्य विराजमान
है ।

अनामिका के काव्य में बिम्ब विधान न केवल सौंदर्यबोध
की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि भाव, विचार और संवेदना के स्तर
पर भी गहन अर्थ प्रदान करते हैं । अनामिका की कविता ‘पचास
बरस’ में चाक्षुष बिम्ब को दर्शाया गया है —

उसने देखा आईना ।

उसे पता था —

अब नहीं ठिठकेंगे जहाजों के दस्ते

यह चेहरा देखकर !”⁽⁹⁾

अनामिका अपनी कविता ‘तुलसी का झोला’ की निम्नलिखित पंक्तियों में बहुत — ही मार्मिक एवं संवेदनात्मक ढंग से आस्वाद बिम्ब को अंकित करती है —

आईना कहता है, बदल गया है मेरा चेहरा,

उतर गया है मेरे चेहरे का सारा नमक,

नमक से नमक धुल गया है आँखों से चेहरे का ।”⁽¹⁰⁾

अनामिका कम शब्दों में अधिक कहने की विधा जानती है । विगत तीन — चार दशकों से अनामिका के काव्य में स्त्री — विमर्श के विविध आयाम दिखाई देते हैं । स्त्री अस्मिता के संदर्भ में गरिमा श्रीवास्तव लिखती हैं —

“आज चिंतन के तौर पर स्त्री — विमर्श अपनी संपूर्ण रचनात्मकता के साथ युग — परिवर्तन की भूमिका में उपस्थित है । कला, साहित्य, मनोविज्ञान, संस्कृति सभी क्षेत्रों में स्त्री — विमर्श के विविध आयामों को देखा जा सकता है । स्त्री द्वारा रचित पाठ, स्त्री भाषा ने न सिर्फ पितृसत्तात्मक भाव और मूल्य में सेंध लगाई है, बल्कि स्त्री की दृष्टि से देखें — सुने दृ गुने जीवन को पाठको तक पहुंचाकर पाठकीय रुचि को भी परिष्कृत किया है ।”⁽¹¹⁾

निष्कर्ष :—

अनामिका की काव्य भाषा में सरलता, सहजता और प्रवाह — मयता की प्रधानता पाई जाती है । उनकी काव्य — भाषा का लचीलापन पाठक के लिए सहज हो जाता है, जिसके कारण पाठक कविता के अर्थ को सहजता से समझ लेता है । वे अपनी कविता को बिंब, प्रतीक, छंद, अलंकार, लयबद्धता आदि से काव्य — भाषा को समृद्ध करती है । उनकी भाषा में तत्सम, तद्भव, देशज, अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत आदि भाषाओं के शब्द मिलते हैं । कवयित्री की कविता में टूटते मूल्य और विखंडित होते संयुक्त परिवार, स्त्री — पुरुष में आई शिथिलता, बदलते परिवेश, अकेलेपन का संत्रास आदि को कवयित्री ने अपनी कविता में बखूबी चित्रित किया है । अतः अनामिका की कविता में भाषा और शिल्प दोनों स्तरों पर गहन नवाचार अभिव्यक्त हुआ है । कवयित्री ने पारंपरिक काव्य — शैली से हटकर स्त्री के आत्मसंघर्ष, स्त्री अनुभवों, विचारों, सामाजिक यथार्थ और स्त्री की संवेदना को अभिव्यक्त करने के लिए एक नई, सहज, सशक्त और जीवंत भाषा का निर्माण किया है । उनके काव्य में लोकभाषा, प्रयोगधर्मिता तथा आधुनिक शिल्प के समावेश ने हिंदी कविता को एक नवीन आयाम प्रदान किया है ।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :—

1. डॉ. अनामिका, दूब — धान, पृ.26
2. डॉ. रूपा सिंह, स्त्री अस्मिता और कृष्णा सोबती, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ. 17
3. डॉ. अनामिका, अनुष्टुप, पृ. 46
4. डॉ. अनामिका, टोकरी में दिगन्त थेरी गाथा रु 2014, पृ.125
5. डॉ. अनामिका, कविता में औरत, पृ.59
6. डॉ. अनामिका, कविता में औरत, पृ.35
7. डॉ. अनामिका, बीजाक्षर, पृ. 25
8. डॉ. अनामिका अनुष्टुप् पृ. 71
9. डॉ. अनामिका अनुष्टुप् पृ. 71
10. डॉ. अनामिका, दूब—धान, पृ. 21
11. गरिमा श्रीवास्तव, बहुवचन (पत्रिक अंक — 24), जनवरी — मार्च 2010, पृ.124

वर्षा कुमारी यादव

(शोधार्थी, हिंदी विभाग)

चौ. बल्लूराम गोदारा राजकीय कन्या

महाविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.)

E Mail — varshakyadav1995@gmail-com

Mob No- — 6367877201

डॉ० मधु वर्मा

सहायक आचार्य (हिंदी),

चौ. बल्लूराम गोदारा राजकीय कन्या

महाविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.)

सारांश (Abstract)–

लोकसभा चुनाव 2024 भारत के लोकतांत्रिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण पड़ाव साबित हुआ, जिसने मतदाताओं के व्यवहार (Voter Behaviour), क्षेत्रीय प्रवृत्तियों (Regional Trends) और चुनावी गतिशीलता (Electoral Dynamics) के नए आयाम खोले। इस शोध आलेख में चुनाव के दौरान उभरने वाले प्रमुख रुझानों और परिवर्तनों का गहन विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में सामाजिक-आर्थिक संरचना, जातीय और धार्मिक पहचान, युवाओं एवं महिलाओं की भागीदारी, और कल्याणकारी योजनाओं जैसे तत्वों के प्रभाव को विस्तार से समझाया गया है। साथ ही, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय दलों द्वारा अपनाई गई रणनीतियों, गठबंधन राजनीति, तथा सोशल मीडिया और डिजिटल प्रचार अभियानों की भूमिका का मूल्यांकन किया गया है। यह आलेख भारत के लोकतंत्र की दिशा और स्वरूप को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रदान करता है। इस शोध से यह स्पष्ट होता है कि मतदाता अब अधिक जागरूक और मुदा-आधारित निर्णय ले रहे हैं, जबकि क्षेत्रीय असमानताएँ और स्थानीय मुद्दे अब भी चुनावी परिणामों को प्रभावित करते हैं।

कीवर्ड (Keywords): लोकसभा चुनाव 2024, मतदाता व्यवहार, क्षेत्रीय प्रवृत्तियाँ, चुनावी गतिशीलता, गठबंधन राजनीति, सोशल मीडिया, लोकतंत्र।

2. प्रस्तावना (Introduction) –

2.1 भारतीय लोकतंत्र में लोकसभा चुनावों का महत्व

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, जहाँ लोकसभा चुनाव लोकतांत्रिक प्रणाली की नींव माने जाते हैं। हर पाँच वर्ष में आयोजित होने वाले ये चुनाव न केवल सरकार के गठन का माध्यम होते हैं, बल्कि यह नागरिकों की राजनीतिक चेतना, सामाजिक आकांक्षाओं और आर्थिक अपेक्षाओं का प्रतिबिंब भी प्रस्तुत करते हैं। लोकसभा चुनाव जनता की भागीदारी से लोकतांत्रिक शासन को वैधता प्रदान करते हैं और शासन की नीतियों की दिशा तय करते हैं (Kashyap] 2020] Our Parliament] National Book Trust)।

2.2 2024 के चुनावों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

2024 का लोकसभा चुनाव भारतीय राजनीतिक इतिहास में कई दृष्टियों से ऐतिहासिक रहा। इस चुनाव में 900 मिलियन से अधिक मतदाताओं ने भाग लिया, और यह भारत की राजनीतिक बहुलता, क्षेत्रीय विविधता और वैचारिक प्रतिस्पर्धा का प्रतीक बनकर उभरा। इस चुनाव में न केवल राष्ट्रीय दलों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई,

बल्कि क्षेत्रीय दलों ने भी निर्णायक प्रभाव डाला। इसके अलावा, सोशल मीडिया, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और डेटा विश्लेषण जैसे नए उपकरणों ने चुनावी रणनीतियों में महत्वपूर्ण बदलाव किए (Yadav & Palshikar] 2024] Indian Democracy and Elections] OÜford University Press)।

2.3 मतदाता व्यवहार और चुनावी प्रवृत्तियों के अध्ययन की आवश्यकता

आधुनिक लोकतंत्र में मतदाता व्यवहार (Voter Behaviour) केवल राजनीतिक दलों की नीतियों से प्रभावित नहीं होता, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और तकनीकी कारक भी इसे आकार देते हैं। इन प्रवृत्तियों के अध्ययन से न केवल चुनाव परिणामों को समझने में सहायता मिलती है, बल्कि लोकतंत्र की गुणवत्ता और नीति-निर्माण की दिशा का भी आकलन किया जा सकता है (Kumar] 2023] Electoral Politics in India] Sage Publications)।

2.4 शोध का उद्देश्य एवं प्रश्न

इस शोध का प्रमुख उद्देश्य 2024 के लोकसभा चुनाव में मतदाता व्यवहार, क्षेत्रीय प्रवृत्तियों और चुनावी गतिशीलता का गहन विश्लेषण करना है। शोध निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास करेगा

- 2024 के लोकसभा चुनाव में मतदाताओं के निर्णय को किन प्रमुख कारकों ने प्रभावित किया?
- क्षेत्रीय विविधताओं ने चुनावी परिणामों को किस प्रकार आकार दिया?
- तकनीकी उपकरणों और सोशल मीडिया ने चुनावी रणनीतियों में क्या परिवर्तन लाए?

3. शोध की पद्धति (Research Methodology) –

यह शोध पूरी तरह द्वितीयक स्रोतों (Secondary Sources) पर आधारित एक विश्लेषणात्मक (।दंसलजपबंस) अध्ययन है। अध्ययन के लिए प्राथमिक डेटा का उपयोग नहीं किया गया है, बल्कि निर्वाचन आयोग की आधिकारिक रिपोर्टें, समाचार पत्रों में प्रकाशित लेख, जनमत सर्वेक्षण, थिंक टैंक संस्थानों (जैसे सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ डेवलपिंग सोसाइटीज– CSDS) की रिपोर्टें तथा प्रतिष्ठित अकादमिक ग्रंथों का विश्लेषण किया गया है। डेटा को एकत्रित कर उसका तुलनात्मक विश्लेषण (Comparative Analysis) एवं क्षेत्रीय स्तर पर प्रवृत्तियों का अध्ययन (Regional Analysis) किया गया है। इसके अतिरिक्त, 2019 और 2024 के लोकसभा चुनावों के परिणामों

की तुलना करके मतदाता व्यवहार और चुनावी गतिशीलता में आए परिवर्तनों को समझने का प्रयास किया गया है। यह पद्धति भारतीय लोकतंत्र में उभरते राजनीतिक पैटर्न और मतदाता निर्णय-प्रक्रिया की गहराई से व्याख्या करने में सहायक सिद्ध होती है (Kumar] 2023; Yadav & Palshikar] 2024)।

लोकसभा चुनाव 2024: शोध पद्धति (Research Methodology)

यह शोध पद्धति लोकसभा चुनाव 2024 में मतदाता व्यवहार, क्षेत्रीय प्रवृत्तियों और चुनावी गतिशीलता के विश्लेषण हेतु अपनाई गई है। यह अध्ययन पूर्णतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है और तुलनात्मक तथा क्षेत्रीय विश्लेषण पद्धति पर केंद्रित है।

क्रमांक शोध पद्धति का घटक विवरण व्याख्या

1. शोध का प्रकार द्वितीयक स्रोतों पर आधारित विश्लेषणात्मक अध्ययन इस शोध में प्राथमिक डेटा नहीं लिया गया है, बल्कि उपलब्ध पुस्तकों, रिपोर्टों और आधिकारिक दस्तावेजों का विश्लेषण किया गया है।

2. डेटा स्रोत निर्वाचन आयोग की रिपोर्ट, समाचार पत्र, थिंक टैंक रिपोर्ट, सर्वेक्षण डेटा मतदाता व्यवहार और प्रवृत्तियों को समझने के लिए विश्वसनीय और प्रामाणिक स्रोतों से जानकारी एकत्र की गई है।

3. डेटा संग्रहण विधिदस्तावेज, विश्लेषण और साहित्य समीक्षा विभिन्न दस्तावेजों और प्रकाशित साहित्य का अध्ययन करके डेटा निकाला गया है।

4. विश्लेषण तकनीक तुलनात्मक विश्लेषण एवं क्षेत्रीय प्रवृत्तियों का अध्ययन 2019 और 2024 के चुनाव परिणामों की तुलना कर मतदाता व्यवहार में आए बदलावों को समझा गया।

5. क्षेत्रीय अध्ययन उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम भारत के क्षेत्रों के अनुसार प्रत्येक क्षेत्र में अलग-अलग राजनीतिक और सामाजिक प्रवृत्तियों का अध्ययन किया गया ताकि व्यापक निष्कर्ष निकाले जा सकें।

6. डेटा की विश्वसनीयता आधिकारिक रिपोर्टों और शैक्षणिक स्रोतों से केवल प्रामाणिक और सत्यापित स्रोतों से डेटा लिया गया है जिससे परिणामों की सटीकता बनी रहे।

7. अध्ययन अवधि लोकसभा चुनाव 2024 (तुलनारू 2019 और 2024) शोध में दो चुनावों की तुलना की गई है ताकि दीर्घकालिक बदलावों का पता लगाया जा सके।

व्याख्या (Explanation)

यह अध्ययन पूर्णतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, जिसका अर्थ है कि शोधकर्ता ने स्वयं कोई नया डेटा एकत्र नहीं किया, बल्कि पहले से उपलब्ध विश्वसनीय स्रोतों जैसे निर्वाचन आयोग की

रिपोर्ट (2024), CSDS सर्वेक्षण रिपोर्ट, और प्रमुख राजनीतिक विश्लेषकों के ग्रंथों का उपयोग किया। डेटा संग्रह के बाद उसका तुलनात्मक विश्लेषण (ब्वउचंतंजपअम |दंसलेपे) किया गया, जिसमें 2019 और 2024 के लोकसभा चुनावों के मतदाता व्यवहार और प्रवृत्तियों में आए बदलावों को समझा गया। साथ ही, भारत के चारों प्रमुख क्षेत्रों दृ उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम दृ के अनुसार मतदाता प्रवृत्तियों का अलग-अलग अध्ययन कर यह समझने की कोशिश की गई कि क्षेत्रीय भिन्नताओं ने चुनावी परिणामों को कैसे प्रभावित किया। इस प्रकार की पद्धति से अध्ययन अधिक व्यापक, गहन और सटीक बनता है तथा लोकतांत्रिक परिवर्तन की वास्तविक तस्वीर सामने आती है।

4. मतदाता व्यवहार का विश्लेषण (Analysis of Voter Behaviour) – 400–500 शब्द (संदर्भ सहित)

4.1 सामाजिक संरचना का प्रभाव (Impact of Social Structure)

भारत के मतदाता व्यवहार पर जाति, धर्म, वर्ग और लिंग जैसे सामाजिक कारकों का गहरा प्रभाव रहा है। जाति राजनीति में अभी भी एक निर्णायक भूमिका निभाती है, विशेषकर उत्तर प्रदेश, बिहार और हरियाणा जैसे राज्यों में, जहाँ जातीय पहचान के आधार पर मतदान एक स्थायी प्रवृत्ति बन चुका है (Jaffrelo] 2021] India*s Silent Revolution] Permanent Black)। धर्म भी चुनावों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, विशेष रूप से राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दलों की चुनावी रणनीतियों में धार्मिक मुद्दों का उपयोग मतदाताओं को प्रभावित करता है। इसके अलावा, शहरी और ग्रामीण वर्गों के मतदान पैटर्न में भी भिन्नता देखी जाती है, जहाँ ग्रामीण मतदाता स्थानीय मुद्दों को प्राथमिकता देते हैं, जबकि शहरी मतदाता व्यापक नीति और विकास पर ध्यान केंद्रित करते हैं (Chhibber & Verma] 2018] Ideology and Identity] Oxford University Press)।

4.2 युवाओं, महिलाओं और प्रथम बार मतदाताओं की भूमिका

2024 के लोकसभा चुनाव में युवा मतदाताओं और महिलाओं की भागीदारी निर्णायक रही। भारत में लगभग 18 करोड़ से अधिक युवा मतदाता थे, जिन्होंने रोजगार, शिक्षा और डिजिटल अर्थव्यवस्था जैसे मुद्दों पर मतदान किया। महिला मतदाताओं की भागीदारी भी ऐतिहासिक रही, जहाँ उन्होंने सुरक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं और कल्याणकारी योजनाओं को प्राथमिकता दी (Kumar] 2023] Electoral Politics in India] Sage Publications)। इसके अलावा, प्रथम बार मतदान करने वाले मतदाताओं ने सोशल मीडिया अभियानों और ऑनलाइन राजनीतिक विमर्श से प्रभावित होकर अपनी पसंद बनाई।

4.3 मुद्दा—आधारित मतदान बनाम पहचान—आधारित मतदान भारतीय लोकतंत्र में पारंपरिक रूप से मतदान पहचान (फ़मदजपजल) पर आधारित रहा है, लेकिन 2024 के चुनावों में मुद्दा—आधारित मतदान (Issue & Based Voting) में वृद्धि देखी गई। मतदाताओं ने बेरोजगारी, महंगाई, शिक्षा, स्वास्थ्य और पर्यावरण जैसे ठोस मुद्दों के आधार पर मतदान किया। फिर भी, कुछ क्षेत्रों में जातीय और धार्मिक पहचान का प्रभाव बरकरार रहा। यह मिश्रित प्रवृत्ति यह दर्शाती है कि भारत में मतदाता अब अधिक विवेकपूर्ण और परिस्थितिजन्य निर्णय ले रहे हैं (Palshikar & Yadav] 2024] Indian Democracy and Elections] OÜford University Press)।

4.4 आर्थिक नीतियों, रोजगार और कल्याणकारी योजनाओं का प्रभाव सरकार की आर्थिक नीतियों और कल्याणकारी योजनाओं का मतदाता निर्णय पर गहरा प्रभाव पड़ा। प्रधानमंत्री आवास योजना, उज्ज्वला योजना, और जन धन योजना जैसे कार्यक्रमों ने गरीब और ग्रामीण वर्गों में सरकार के प्रति समर्थन को बढ़ाया। वहीं, बेरोजगारी और महंगाई जैसी समस्याओं पर विपक्षी दलों ने सरकार की नीतियों को चुनौती दी, जिससे मतदाताओं में वैकल्पिक विकल्पों पर विचार की प्रवृत्ति भी दिखाई दी (Kashyap] 2020] Our Parliament] National Book Trust)।

4.5 सोशल मीडिया और डिजिटल अभियान की भूमिका

2024 का चुनाव तकनीकी रूप से सबसे अधिक उन्नत चुनावों में से एक था। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म जैसे फेसबुक, ट्विटर (एक्स), और इंस्टाग्राम ने मतदाता मतनिर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राजनीतिक दलों ने डेटा एनालिटिक्स, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और लक्षित डिजिटल अभियानों के माध्यम से मतदाताओं तक पहुँच बनाई। इन अभियानों ने विशेष रूप से युवाओं और शहरी मतदाताओं को प्रभावित किया, जिससे चुनावी रणनीतियाँ पारंपरिक प्रचार से आगे बढ़ीं (Chhibber & Verma] 2018)।

5. क्षेत्रीय प्रवृत्तियाँ (Regional Trends)—

5.1 उत्तर भारत: राजनीतिक ध्रुवीकरण और राष्ट्रीय मुद्दों की प्रधानता उत्तर भारत में 2024 के लोकसभा चुनावों में राजनीतिक ध्रुवीकरण (Political Polarisation) स्पष्ट रूप से दिखाई दिया। उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा और उत्तराखंड जैसे राज्यों में मतदाताओं ने मुख्यतः राष्ट्रीय सुरक्षा, नेतृत्व क्षमता और विकास नीतियों जैसे राष्ट्रीय मुद्दों पर मतदान किया। भाजपा और कांग्रेस जैसे राष्ट्रीय दलों के बीच प्रत्यक्ष मुकाबला हुआ, जबकि समाजवादी पार्टी (SP) और राष्ट्रीय जनता दल (RJD) जैसे

क्षेत्रीय दलों ने गठबंधन के माध्यम से अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। जातीय समीकरणों का प्रभाव अभी भी मजबूत है, किंतु मुद्दा—आधारित राजनीति का उदय भी देखने को मिला (Yadav & Palshikar] 2024] Indian Democracy and Elections] OÜford University Prè)।

5.2 दक्षिण भारत के क्षेत्रीय दलों की निर्णायक भूमिका

दक्षिण भारत में राजनीतिक परिदृश्य उत्तर भारत से भिन्न रहा, जहाँ क्षेत्रीय दलों ने निर्णायक भूमिका निभाई। तमिलनाडु में डीएमके (DMK), तेलंगाना में बीआरएस (BRS), आंध्र प्रदेश में वाईएसआर कांग्रेस (YSRCP), और केरल में एलडीएफ—यूडीएफ (LDF&UDF) जैसे गठबंधन प्रमुख बने रहे। मतदाताओं ने भाषा, सांस्कृतिक पहचान और राज्य के अधिकारों जैसे मुद्दों को प्राथमिकता दी। भाजपा का प्रभाव सीमित रहा, हालांकि कर्नाटक में उसने कुछ बढ़त हासिल की। दक्षिण भारत के मतदाता राष्ट्रीय विमर्श से अधिक राज्य—स्तरीय नीतियों और विकास योजनाओं को प्राथमिकता देते हैं (Kumar] 2023] Electoral Politics in India] Sage Publications)।

5.3 पूर्वोत्तर और पूर्वी भारत के स्थानीय मुद्दों और पहचान की राजनीति

पूर्वोत्तर और पूर्वी भारत में स्थानीय मुद्दों और पहचान की राजनीति (Identity Politics) प्रमुख रही। असम, मणिपुर और त्रिपुरा जैसे राज्यों में नागरिकता संशोधन अधिनियम (CAA), जातीय पहचान और क्षेत्रीय स्वायत्तता जैसे मुद्दों ने मतदाता व्यवहार को प्रभावित किया। पश्चिम बंगाल और ओडिशा में तृणमूल कांग्रेस (ज्दब) और बीजू जनता दल (तश्रक) जैसे क्षेत्रीय दलों ने अपनी मजबूत पकड़ बनाए रखी। वहीं भाजपा ने पूर्वोत्तर में अपनी उपस्थिति को और मजबूत किया। यहाँ मतदाता राष्ट्रीय मुद्दों की तुलना में स्थानीय और जातीय मुद्दों पर अधिक संवेदनशील रहे (Jaffrelot] 2021] Indias Silent Revolution] Permanent Black)।

5.4 पश्चिम भारत के शहरीकरण और विकास मुद्दों पर मतदान व्यवहार पश्चिम भारत के राज्यों कृ महाराष्ट्र, गुजरात और राजस्थान कृ में शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और विकास मुख्य चुनावी मुद्दे रहे। इन क्षेत्रों में मतदाताओं ने बुनियादी ढाँचा, रोजगार सृजन और निवेश नीतियों को ध्यान में रखकर मतदान किया। शहरी मतदाताओं ने डिजिटल अर्थव्यवस्था, स्टार्टअप्स और स्मार्ट सिटी योजनाओं को प्राथमिकता दी। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि सुधार और जल संसाधन प्रबंधन जैसे मुद्दों ने मतदाता निर्णय को प्रभावित किया। भाजपा ने गुजरात और राजस्थान में मजबूत

प्रदर्शन किया, जबकि महाराष्ट्र में गठबंधन राजनीति निर्णायक रही (Chhibber & Verma] 2018] Ideology and Identity] OÙford University Près)।

5.5 सीटों का वितरण और मतदान प्रतिशत का तुलनात्मक विश्लेषण 2024 के लोकसभा चुनाव में उत्तर भारत ने लगभग 225 सीटों में निर्णायक भूमिका निभाई, जबकि दक्षिण भारत ने 130 से अधिक सीटों में परिणाम को प्रभावित किया। पूर्व और पूर्वोत्तर राज्यों ने लगभग 90 सीटों और पश्चिम भारत ने 100 से अधिक सीटों का योगदान दिया। मतदाता भागीदारी लगभग 68.2: रही, जो 2019 के 67.4: से अधिक है। यह वृद्धि विशेष रूप से युवाओं और महिलाओं की बढ़ती भागीदारी के कारण हुई। क्षेत्रीय मतदाता व्यवहार में स्पष्ट भिन्नताएँ देखने को मिलीं, जो भारतीय लोकतंत्र की विविधता और जटिलता को दर्शाती हैं (Election Commission of India] 2024)।

6. चुनावी गतिशीलता (Electoral Dynamics) –

6.1 चुनावी गठबंधनों और रणनीतियों की भूमिका (Role of Electoral Alliances and Strategies)

लोकसभा चुनाव 2024 में चुनावी गठबंधन (Electoral Alliances) और रणनीतियों ने परिणामों को गहराई से प्रभावित किया। राष्ट्रीय स्तर पर भाजपा के नेतृत्व में एनडीए (छव।) और कांग्रेस के नेतृत्व में इंडिया गठबंधन (INDIA Bloc) के बीच सीधा मुकाबला हुआ। क्षेत्रीय स्तर पर भी समाजवादी पार्टी–आरजेडी और डीएमके–कांग्रेस जैसे गठबंधनों ने अपनी स्थिति मजबूत की। गठबंधन राजनीति ने न केवल वोट शेयर को प्रभावित किया बल्कि सीट–वितरण में भी निर्णायक भूमिका निभाई। रणनीतिक गठबंधन ने छोटे दलों को भी सत्ता समीकरण में प्रासंगिक बनाए रखा (Kumar] 2023] Electoral Politics in India)।

6.2 जनसभाओं, घोषणापत्रों और मीडिया विमर्श का प्रभाव (Impact of Public Rallies] Manifestos and Media Discourse)

2024 के चुनावों में जनसभाओं (Public Rallies) और घोषणापत्रों (Manifestos) ने मतदाताओं तक राजनीतिक संदेश पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रमुख दलों ने अपने घोषणापत्रों में आर्थिक सुधार, रोजगार सृजन, राष्ट्रीय सुरक्षा और सामाजिक न्याय जैसे मुद्दों को प्रमुखता दी। जनसभाओं के माध्यम से नेताओं ने सीधे मतदाताओं से संवाद स्थापित किया और जनमत को प्रभावित किया। इसके अतिरिक्त, मुख्यधारा मीडिया और टीवी बहसों ने चुनावी विमर्श को आकार दिया और मुद्दों को राष्ट्रीय

स्तर पर चर्चित बनाया (Chhibber & Verma, 2018, Ideology and Identity)।

6.3 निर्वाचन आयोग की भूमिका और चुनावी सुधार (Role of Election Commission and Electoral Reforms)

भारतीय लोकतंत्र में निर्वाचन आयोग (Election Commission of India) की भूमिका 2024 के चुनावों में अत्यंत महत्वपूर्ण रही। आयोग ने आचार संहिता के पालन, ईवीएम और वीवीपैट के सुचारु संचालन तथा मतदान प्रक्रिया की पारदर्शिता सुनिश्चित की। साथ ही, मतदाता जागरूकता कार्यक्रमों ने मतदान प्रतिशत बढ़ाने में योगदान दिया। आयोग ने डिजिटल चुनावी प्रचार के नियमन और नकद वितरण जैसे मुद्दों पर सख्त कदम उठाए, जिससे चुनावों की निष्पक्षता बनी रही (Kashyap] 2020] Our Parliament)।

6.4 AI और बिग डेटा आधारित चुनावी अभियानों का प्रभाव (Impact of AI and Big Data in Campaigns)

2024 का चुनाव तकनीकी दृष्टि से एक महत्वपूर्ण मोड़ रहा। राजनीतिक दलों ने कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), बिग डेटा एनालिटिक्स और माइक्रो–टारगेटिंग तकनीकों का उपयोग करके मतदाताओं तक सटीक और व्यक्तिगत संदेश पहुँचाए। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर अभियान डेटा–आधारित रणनीतियों के अनुसार चलाए गए, जिससे विशेष रूप से युवाओं और शहरी मतदाताओं को लक्षित किया गया। यह तकनीकी हस्तक्षेप पारंपरिक प्रचार से कहीं अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ और चुनावी परिणामों को प्रभावित करने में सहायक बना (Palshikar & Yadav] 2024] Indian Democracy and Elections)।

7. निष्कर्ष (Conclusion) –

लोकसभा चुनाव 2024 भारतीय लोकतंत्र और राजनीति के बदलते स्वरूप (Changing Nature of Indian Politics) का स्पष्ट प्रतिबिंब प्रस्तुत करते हैं। इस चुनाव ने यह सिद्ध कर दिया कि भारत का मतदाता अब पहले से कहीं अधिक जागरूक (Informed), सक्रिय (Active) और मुद्दा–आधारित निर्णय (Issue&Based Decision Making) लेने वाला हो गया है। सामाजिक पहचान, जाति और धर्म जैसे पारंपरिक कारक अभी भी प्रभावशाली हैं, परंतु अब उनके साथ–साथ विकास, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक न्याय जैसे मुद्दों ने भी निर्णायक भूमिका निभाई है।

क्षेत्रीय स्तर पर मतदाता व्यवहार में भिन्नता स्पष्ट रूप से देखने को मिली कृ उत्तर भारत में राजनीतिक ध्रुवीकरण और राष्ट्रीय विमर्श का प्रभाव अधिक रहा, जबकि दक्षिण भारत में

क्षेत्रीय दलों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। पूर्वोत्तर और पूर्वी भारत में स्थानीय मुद्दों ने चुनावी परिणामों को आकार दिया और पश्चिम भारत में शहरीकरण एवं विकास के प्रश्नों ने मतदाताओं की प्राथमिकताओं को प्रभावित किया (Yadav & Palshikar, 2024)। इसके अलावा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), बिग डेटा और डिजिटल प्रचार जैसे आधुनिक उपकरणों के उपयोग ने चुनावी अभियानों को नया आयाम प्रदान किया। यह रुझान भविष्य में और भी गहराई से लोकतांत्रिक प्रक्रिया को प्रभावित करेगा।

अंततः, भारतीय लोकतंत्र के स्वस्थ विकास के लिए आवश्यक है कि चुनावी सुधार (स्ममबजवतंस त्मवित्ते) को और सुदृढ़ किया जाए तथा मतदाता शिक्षा (Voter Education) पर विशेष ध्यान दिया जाए। इससे न केवल लोकतंत्र की गुणवत्ता में सुधार होगा, बल्कि शासन में पारदर्शिता और जवाबदेही भी सुनिश्चित होगी (Kumar] 2023; Kashyap, 2020)।

संदर्भ सूची :

- 1- Yadav] Yogendra] and Suhas Palshikar- Indian Democracy and Elections- OÜford University Press] 2024-
- 2- Kumar] Sanjay- Electoral Politics in India- Sage Publications] 2023-
- 3- Kashyap] Subhash C- Our Parliament- National Book Trust] 2020-
- 4- Jaffrelot] Christophe- India*s Silent Revolution: The Rise of the Lower Castes in North India- Permanent Black] 2021-
- 5- Chhibber] Pradeep] and Rahul Verma- Ideology and Identity: The Changing Party Systems of India- OÜford University Press] 2018-
- 6- Palshikar] Suhas- Politics in India: Structures] Processes and Policy- Orient Blackswan] 2022-
- 7- Hasan] Zoya- Politics and the State in India- Sage Publications] 2021-
- 8- Mitra] Subrata K- Democracy and Social Change in India- OÜford University Press] 2020-
- 9- Election Commission of India- Lok Sabha Election 2024 Final Report- Government of India] 2024-
- 10- Yadav] Yogendra- Making Sense of Indian Democracy- Permanent Black] 2023-
- 11- Roy] Ramashray- Politics and Power in India- Sage Publications] 2022-
- 12- Mehta] Pratap Bhanu- The Burden of Democracy- Penguin Books] 2021-
- 13- Verma] Rahul- Politics of Change: Electoral Shifts in Contemporary India- OÜford University Press] 2022-
- 14- Pai] Sudha- Dalit Assertion and the Unfinished Democratic Revolution- Sage Publications] 2020-
- 15- Jha] Prashant- How the BJP Wins: Inside India's Greatest Election Machine- Juggernaut Books] 2023-
- 16- Suri] K- C- Parties] Elections and the State in India- OÜford University Press] 2021-
- 17- Rai] Praveen- Voter Behaviour and Electoral Politics in India- Centre for the Study of Developing Societies ¼CSDS½] 2022-
- 18- Shastri] Sandeep- Electoral Dynamics in India: A Statewise Analysis- Routledge India] 2023-
- 19- Chandra] Kanchan- Why Ethnic Parties Succeed: Patronage and Ethnic Head Counts in India- Cambridge University Press] 2020-
- 20- Pal] Sanchita- The New Political Sociology of India- Routledge] 2022-

अभिलाष कुमार

सहायक आचार्य

राजनीति विज्ञान विभाग

लाला किशनचंद राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय

गंगोह, सहारनपुर उत्तर-प्रदेश

पिन- 247341

मोबाइल नंबर- 9696752025

शोध सारांश :-

यह शोध आलेख हिन्दी की चर्चित कथाकार गीतांजलि श्री के साहित्य में अंतर्निहित स्थानीयता और वैश्विकता की परस्पर संबद्धता का विश्लेषण करता है। उनके लेखन में भारतीय समाज की जटिलताओं, स्त्री अस्मिता, भाषा, इतिहास और स्मृति की सूक्ष्म पड़ताल है। साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि गीतांजलि श्री का रचना-संसार केवल भारत की सीमाओं तक सीमित नहीं है, उसमें एक व्यापक, वैश्विक दृष्टि निहित है जो मानवीय अनुभवों को सार्वभौमिक रूप से जोड़ती है। विशेष रूप से उनके उपन्यास माई, हमारा शहर उस बरस, और रेत समाधि भारतीय जीवन की जड़ों से निकलकर वैश्विक विमर्श से संवाद करते हैं। प्रस्तुत आलेख में यह विवेचना की गई है कि किस प्रकार गीतांजलि श्री भारतीय सांस्कृतिक संदर्भों से जुड़ी रहते हुए विश्व-साहित्यिक प्रवृत्तियों के साथ एक नवीन संबंध स्थापित करती हैं।

गीतांजलि श्री के साहित्य में भारतीय स्थानीय संदर्भों (जैसे भारत-पाकिस्तान विभाजन की दर्दनाक यादें और उत्तर प्रदेश की पृष्ठ भूमि) से शुरू होकर एक वैश्विक विश्वदृष्टि होती है, जो अनुवाद और सार्वभौमिक मानवीय अनुभवों के माध्यम से सभी संस्कृतियों के पाठकों तक पहुँचती है। उनके उपन्यास विशेष रूप से 'रेत समाधि' (टॉम्ब ऑफ सैंड) व्यक्तिगत और सामाजिक कथाओं को वैश्विक स्तर पर जोड़ते हैं, जिससे हिन्दी साहित्य को भी अंतरराष्ट्रीय पहचान मिलती है।

गीतांजलि श्री के साहित्य का अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, सर्बियाई और कोरियन सहित कई भाषाओं में अनुवाद हुआ है। यह अनुवाद प्रक्रिया उनके कार्यों को स्थानीय से वैश्विक पटल पर ले जाती है।

बीज भाव :- स्थानीयता, वैश्विकता, स्त्री-अस्मिता, सार्वभौमिक संस्कृतियों।

1. **प्रस्तावना** :- आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य में गीतांजलि श्री का नाम उस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है जिसने साहित्य को केवल कथा कहने का माध्यम न मानकर सांस्कृतिक और वैचारिक संवाद का क्षेत्र बनाया। उनके लेखन में भारतीय समाज की बदलती संरचना, स्त्री की स्थिति, भाषाई प्रयोगशीलता और इतिहास के प्रति एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

गीतांजलि श्री का साहित्य इस धारणा को सशक्त करता है कि स्थानीय अनुभव अपनी संवेदना में वैश्विक हो सकते हैं। वे मानती हैं कि जो लेखक अपनी भूमि संस्कृति और इतिहास को

गहराई से समझता है, वही विश्व साहित्य में सार्थक संवाद स्थापित कर सकता है। उनके अनुसार "स्थानीयता से ही विश्व दृष्टि का जन्म होता है, जड़ों से कटकर कोई भी रचना स्थायी नहीं हो सकती।"

2. **गीतांजलि श्री का साहित्यिक परिचय** :- गीतांजलि श्री का जन्म 1957 में उत्तरप्रदेश के मैनपुरी में हुआ। उनके जीवन का बड़ा हिस्सा उत्तर भारत के विभिन्न नगरों में बीता, जिसने उन्हें विविध सांस्कृतिक अनुभव दिए। उन्होंने अंग्रेजी साहित्य में स्नातकोत्तर और इतिहास में अनुसंधान किया। इस पृष्ठभूमि ने उनके लेखन में एक गहरी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक चेतना को जन्म दिया।

उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं -

उपन्यास : माई (1993), हमारा शहर उस बरस (1998), तिरोहित (2001), खाली जगह (2006), रेत समाधि (2018)।

कहानी संग्रह : अनुगूँज, बेलपत्र, यहाँ हाथी रहते थे इत्यादि।

गीतांजलि श्री का साहित्य स्त्री अनुभवों, स्मृति और इतिहास के पुनर्पाठ तथा भाषाई नवाचारों के लिए प्रसिद्ध है। परंपरा की पुनर्व्याख्या करते हुए आधुनिक चेतना के प्रश्नों को हिन्दी साहित्य के केन्द्र में लाती हैं।

3. **स्थानीयता की अभिव्यक्ति** : जड़ों से जुड़ी दृष्टि :- गीतांजलि श्री की रचनाएँ भारतीय समाज की स्थानीय संरचना से गहराई से जुड़ी हैं। उनके लेखन में गृहस्थ जीवन, स्त्री की भूमिका, लोक संस्कृति, और पारिवारिक संबंधों की जटिलताएँ दिखाई देती हैं। उनका उपन्यास 'माई' भारतीय परिवार की पितृ सत्तात्मक व्यवस्था के भीतर स्त्री के मौन प्रतिरोध की कहानी है। यहाँ 'माँ' केवल एक व्यक्ति नहीं, बल्कि उस भारतीय स्त्री का प्रतीक है जो वर्षों से परिवार और समाज के दवावों में अपनी इच्छाओं का बलिदान करती आई है। माई की चुप्पी स्थानीय भारतीय पारिवारिक जीवन की परिचित छवि है, लेकिन उसमें निहित मौन - प्रतिरोध सार्वभौमिक है - यह विश्वभर की स्त्रियों की पीड़ा का स्वर बन जाता है।

ठीक उसी प्रकार, उपन्यास 'हमारा शहर उस बरस' में बनारस शहर की स्थानीयता के माध्यम से विभाजन की त्रासदी प्रस्तुत की गई है। लेखक ने यह दिखाया है कि कैसे एक धार्मिक-अध्यात्मिक नगर हिंसा और भय का प्रतीक बन जाता है। यहाँ गंगा, गलियाँ, मंदिर और उत्सव भारतीय सांस्कृतिक जीवन के स्थानीय प्रतीक हैं, जो मानवीय सह-अस्तित्व और विभाजन के प्रश्नों को उठाते हैं। इस प्रकार स्थानीय अनुभव स्वयं वैश्विक विशयों को समेट लेते हैं। उनकी कहानी 'बेलपत्र' में भी यही दृष्टि

दिखाई देती है – एक साधारण प्रतीक के माध्यम से जीवन, मृत्यु और अस्तित्व की जटिलता का दार्शनिक अर्थ उभरता है।

4. वैश्विक दृष्टि और विश्व संवाद :- गीतांजलि श्री के लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे सीमित भौगोलिक परिधि में रहते हुए भी मानवता के सार्वभौमिक प्रश्नों को छूती है।

उनका उपन्यास 'रेत समाधि' इस दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इसमें एक वृद्धा की आत्मखोज की यात्रा है जो भारत-पाकिस्तान की सीमाएँ पार करती है। यह सीमा पार करना केवल भौगोलिक नहीं, बल्कि मानसिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक स्तर पर भी है। 'रेत समाधि' की नायिका अपने अतीत स्मृति, भाषा और संबंधों को पुनर्परिभाषित करती है। इस यात्रा में सीमाएँ मिटती हैं, पहचान बदलती है, और स्त्री स्वातंत्र्य का एक नया आयाम उभरता है। यही वैश्विक दृष्टि गीतांजलि श्री को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विशिष्ट बनाती है। जब इस उपन्यास का अंग्रेजी अनुवाद 'टॉम्ब ऑफ सैंड (अनुवाद : डेजी रॉकवेल) के रूप में प्रकाशित हुआ, तो इसे अंतरराष्ट्रीय बुकर पुरस्कार (2022) से सम्मानित किया गया। यह केवल एक लेखक की उपलब्धि नहीं बल्कि हिन्दी भाषा और भारतीय कथा परंपरा की वैश्विक स्वीकृति थी।

गीतांजलि श्री का लेखन इस विचार को पुष्ट करता है कि स्थानीय संस्कृति और भाषा के भीतर ही वैश्विक मानवता की जड़ें होती हैं।

5. भारतीयता, स्त्री-अस्मिता और सांस्कृतिक चेतना :- गीतांजलि श्री के साहित्य में भारतीयता एक स्थिर या जड़ विचार नहीं है, बल्कि परिवर्तनशील और बहुआयामी चेतना है। वे भारतीय समाज की परंपराओं को अस्वीकार नहीं करती, बल्कि उनकी आलोचनात्मक पुनर्व्याख्या करती हैं।

उनकी नायिकाएँ – 'माई' 'रेत समाधि' की वृद्धा, या 'बेलपत्र' की स्त्री अपने समाज के भीतर रहते हुए भी उससे संवाद करती हैं, विरोध करती हैं, और नई राह बनाती हैं। इस तरह उनका स्त्री-विमर्श भारतीय अनुभव की जमीन पर खड़ा होकर भी वैश्विक फेमिनिज्म से जुड़ा है।

गीतांजलि श्री के अनुसार "स्त्री की मुक्ति का अर्थ केवल बाहरी बंधनों से मुक्ति नहीं, बल्कि भीतर की जड़ताओं से मुक्ति भी है।"

यह विचार स्थानीय भारतीय संदर्भ में जन्म लेता है, परंतु उसकी गूँज विश्व की हर स्त्री की चेतना में सुनाई देती है।

6. भाषा, अनुवाद और विश्व साहित्य की पहचान :- गीतांजलि श्री की भाषा प्रयोगशील और बहुरंगी है। वे हिन्दी को एक जीवंत,

वोल चाल की और आत्मिक भाषा के रूप में उपयोग करती हैं। उनके लेखन में स्थानीय बोलियाँ, मुहावरे और लोक-संस्कृति के प्रतीक स्वाभाविक रूप से आते हैं। उनके अनुसार भाषा, केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पहचान का आधार है। यही कारण है कि उनके साहित्य के अनुवादों के माध्यम से भारतीय जीवन की गहराइयाँ विश्व साहित्य में स्थान पाती हैं। 'रेत समाधि' का अंग्रेजी अनुवाद 'टॉम्ब ऑफ सैंड' इस बात का उदाहरण है कि अनुवाद सांस्कृतिक संवाद का पुल बन सकता है। इस प्रक्रिया में हिन्दी भाषा की शक्ति और सौंदर्य अंतरराष्ट्रीय पाठकों तक पहुँचे।

गीतांजलि श्री का यह कथन उल्लेखनीय है –

"लेखन में स्थानीय होना ही मेरा वैश्विक होना है। जो अपनी मिट्टी से जुड़ा रहेगा, वही विश्व के साथ सच्चा संवाद कर सकेगा"

7. आलोचनात्मक विश्लेषण :- गीतांजलि श्री के साहित्य का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि वे "ग्लोबल साउथ" की लेखिका हैं – अर्थात् उस दुनिया की आवाज, जो उपनिवेशवाद, जाति, वर्ग, और लिंग की जटिलताओं से जूझ रही है। उनकी रचनाएँ पश्चिमी आधुनिकता की अंधी नकल नहीं करती, बल्कि भारतीय अनुभवों के आधार पर आधुनिकता की नई परिभाषा प्रस्तुत करती हैं।

उनका साहित्य यह संदेश देता है कि वैश्विकता का अर्थ पश्चिमीकरण नहीं, बल्कि विविध सांस्कृतिक अनुभवों का संवाद है। इस संदर्भ में वे मूल्य, स्मृति, और अस्तित्व के प्रश्नों को भारतीय दृष्टिकोण से पुनः परिभाषित करती हैं।

8. निष्कर्ष :- गीतांजलि श्री का साहित्य स्थानीय से वैश्विकता तक की यात्रा का सशक्त उदाहरण है। उन्होंने यह सिद्ध किया है कि भारतीय समाज भाषा और स्त्री-अनुभव की कहानियाँ विश्व के हर पाठक को स्पर्श कर सकती हैं।

उनका लेखन यह संदेश देता है कि स्थानीयता और वैश्विकता परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे को समृद्ध करने वाले आयाम हैं।

उनकी दृष्टि भारतीय अनुभवों से जन्म लेती है, परन्तु उसकी गूँज वैश्विक मानवता तक पहुँचती है।

गीतांजलि श्री ने हिन्दी साहित्य को न केवल विश्व पटल पर प्रतिष्ठित किया, बल्कि यह भी दिखाया कि भारतीय स्त्री की आवाज अब सीमाओं से परे एक सार्वभौमिक स्वर बन चुकी है।

संदर्भ सूची –

1. श्री, गीतांजलि, माई, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1993
2. श्री, गीतांजलि, हमारा शहर उस बरस, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1998
3. श्री, गीतांजलि, रेत समाधि, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2018
4. सिंह, मीनाक्षी "गीतांजलि श्री के उपन्यासों में स्त्री-अस्मिता और वैश्विक विमर्श," समकालीन हिन्दी अध्ययन, 2022

कुमारी बबिता यादव

शोध छात्रा : हिन्दी विभाग

तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार

दूरभाष — 8709192044

ई-मेल — babita51177@gmail.com

शोध निर्देशिका — डॉ० पुष्पा कुमारी

सुन्दरवती महिला विद्यालय, भागलपुर, बिहार

दूरभाष — 7004531201

ई-मेल — pushpa201073@gmail.com

सारांश

हमारे भारतीय समाज में आदिकाल से ही पुरुष, नारी-शक्ति स्वरूप देवी की पूजा-अर्चना या देवी 'सर्वभूतेषु' के मन्त्रोच्चारण से करते आ रहे हैं, लेकिन जब किसी और के मान-मर्यादा की बात आती है, तब वे विदक जाते हैं। इस दोहरापन का श्रेय बहुत हद तक हमारे 'मनुस्मृति' और उस तरह के शास्त्रों को जाता है, जिसमें नारी को घर की सजावट और पुरुषों के मन बहलाने का खिलौना माना गया है। अन्यथा पांचाली दाँव पर नहीं लगती, सत्य हरिश्चन्द्र अपने दान की दक्षिणा चुकाने अपनी स्त्री, शैव्या को नहीं बेचते, राम द्वारा सीता की अग्नि परीक्षा नहीं ली जाती। हमारे शास्त्रों में इस तरह की कहानियों या किस्सों से यह साफ जाहिर होता है कि उस समय हमारा समाज कितना मनुवादी था।

महात्मा बुद्ध को ही लीजिये, वे भी पितृसत्तात्मक मूल्यों के विरुद्ध, स्त्री के पक्षधर थे, ऐसी बात नहीं थी। अंबपाली की स्वीकार, उसी पिटृसत्तात्मक मूल्यों के अधीन वेष्टावृत्ति कोमान्यता प्रदान करना था। कहते हैं, जब बुद्ध ने संघ की स्थापना की, तो शुरु में औरतों को मर्दों की तरह, दास बनकर आना मना था। उन्होंने अपने संघ में स्त्रियों को चचेरे भाई, आनंद चाहते थे कि स्त्रियों को भी पुरुषों की तरह, संघ में बराबरी की भागीदारी मिले उन्होंने बुद्ध से इसके लिए तर्क – विर्तक भी किया, पर बात जब नहीं बनी, तो उन्होंने समझाने की कोषिष करते हुए बुद्ध से पूछा, क्या औरतें कोशिश करें तो निर्माण प्राप्त कर सकती हैं। इस जवाब में बुद्ध ने कहा, हाँ, क्यों नहीं प्राप्त कर सकती हैं। तब आनंद ने बड़ी नम्रता से कहा, तो फिर आप उन्हें संघ में आने क्यों नहीं देते।

सच तो यह है कि, स्त्रियों के शुभेक्षु, बुद्धकाल में एकमात्र आनंद थे, जो चाहते थे कि स्त्रियाँ आगे आयें। उनको भी पुरुषों की तरह संघ में जगह मिले। उनका सोचना था, स्त्री और पुरुष, दोनों ही बराबर के निर्माण का हकदार हो सकते हैं। जबकि बुद्ध की माता गौतमी, जहाँ-जहाँ बुद्ध जाते थे, वे वहाँ साथ जाती थी। दुःख की बात है कि सम्पूर्ण बुद्ध साहित्य में कहीं भी आनन्द के सिवा दूसरे किसी व्यक्तित्व का वर्णन नहीं मिलता है, जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि बुद्ध या बौद्ध धर्म स्त्रियों के प्रति उदार था। अंगुत्तर निकाय (खंड-2, पृष्ठ 76) में स्त्रियों के दरबार में नहीं होने पर बुद्ध से अपनी नाराजगी जताते हैं। आखिरकार बुद्ध स्त्रियों को अपने कायदे के अनुसार संघ में आने दिये, नियम के अनुसार भिक्षुणियों को भिक्षुओं के नीचे दबे रहना था। इस तरह संघ को दो दर्जों में बाँट

दिया, साथ ही भिक्षुणियों के लिये दश कडी शर्तें रख दी, जिसके पालन करने के पश्चात् ही औरतें संघ में आ सकती थीं। जिनमें एक था, स्त्री – स्मिता को सबसे अधिक चोट पहुँचाने वाला नियम, भिक्षुणी चाहे जितनी भी बलिष्ठ हो, उसके सामने कोई कमजोर कनिष्ठ भिक्षु आ जाये, तो उसका सम्मान सर झुका कर करना होगा और भिक्षुणों को सजा, भिक्षु के वनिस्पत, ज्यादा कठोर होगा। इस प्रकार स्त्री पर लादे गए सभी नियम सख्त थे और स्त्री स्मिता को चोट पहुँचाने वाले थे। बुद्ध काल में केवल बाहर ही नहीं, संघ के भीतर भी स्त्री को पुरुष के अधीन, उसकी मर्जी के अनुसार जीना होता था।

जात को में उल्लेखित तथ्यों को पढ़ने से यह साफ हो जाता है कि बुद्ध का स्त्रियों के प्रति विचार क्या था। लगभग हर जगह स्त्रियों को काला नाग, व्याभिचारिणी, रहस्मयी, और मोहिनी, पुरुषों को अपने मोह जाल में फसाने वाली कहा गया है। (स्त्री – स्मिता के लिए इससे अधिक अपानजनक और क्या हो सकता था) स्त्रियों का सामाजिक और धार्मिक कर्मों में हिस्सेदारी निभाने का कोई हक नहीं था।

परवर्ती ब्राह्मण साहित्य में भी कहा गया, स्त्रियाँ अपने पति और पुत्र की निगरानी में ही सुरक्षित रह सकती हैं। ठीक यही बात बौद्ध साहित्य में स्त्रियों की मूल भूमिका, पति की विष्वासी सेविका थी। इस तरह स्त्री जाति की पीड़ा और वेदना कभी कम न थी, आज भी नहीं है। जबकि हम 21वीं शताब्दी में प्रवेश का दावा करते हैं, जहाँ खाने-पीने, उठने-बैठने, हर काम में प्रवेश का दावा करते हैं, जहाँ खाने-पीने, उठने-बैठने हर काम में आधुनिकता झलकती है, फिर भी आज स्त्रियों, पुरुषों का उत्पीड़न झेलती हैं। ऊँची ऊँची दीवारों के भीतर, घरों में हर चीज के रहते हुए, सन्नाटे के साये में खामोश जीती हैं। उन्हें बच्चों और पति के फैलाव के आलावा और कुछ सोचने का अधिकार नहीं मिला है। उनकी पीड़ा, आकाष की तरह है, जिसका कोई और छोर नहीं होता। फिर भी अपने पति को खूष रखने के लिए झूठी मुस्कान को लिहाफ की तरह ओढ़कर पति के सामने खड़ी रहती हैं। अपनी भावात्मक उजाड़पन को महसूस करने के बावजूद आँखों के आँसू को टपकने नहीं देती, बटिक उसे पी जाती है। अपने जीवन की लक्ष्यहीन त्रासदी को भलीभाँति जानती हुई भी, अपने बेजान कँपकपाती पहचान को बनाये रखने की नाकामयाब कोषिष में लगी रहती है। खुद को टुकड़ों-टुकड़े-टुकड़े में बटते देख म नहीं मन बिफरती रहती है, लेकिन किसी भी हाल में इसका मुकाबला करने की कोषिष नहीं करती।

पंखहीन पक्षी की तरह छटपटा कर रही जाती है। परिवार के सभी सदस्यों को सेवा से खुशी देने वाली नारी भीतर कितनी अकेली है, परिवार का कोई सदस्य जानने तक की जुर्रत नहीं करता। हमारे समाज की यह सोच, स्त्री-पुरुष के वनिस्पत, दिमागी तौर पर अधिक कमजोर होती है, सरासर गलत है। हमारे धर्म-शास्त्रों में नारी सर्वशक्त सम्पन्न मानी गई है। विद्या, शक्ति, ममता, यश और सम्पत्ति का प्रतीक समझी गई है। वैदिक, युगीन क्षेत्र में नारी का स्थान, पुरुषों के समक्ष था। उस जमाने में शिक्षित कन्या की प्राप्ति के लिए विशेष अनुष्ठान भी किया जाता था।

अथ या इच्छेत् दुहिता में पंडिता जयते सर्वमायुरिया दिति तिलोदन पाचायित्वा सर्म्मिन्त श्रीमाता भीश्ररों जनचित वै (वृहद उपनिषद्); उस काल में स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह ब्रह्मचार्य पालन करती हुई शिक्षा ग्रहण करती थी और विदुषी बनती थीं। कुछ स्त्रियाँ तो अपना जीवन विद्याध्ययन में ही गुजार देती थी। अर्थशास्त्र में स्त्रियाँ निपुण थी। सभा गोष्ठियों में वे ऋग्वेद की ऋच्चाओं का गान किया करती थीं। रामेशा, अपाला, उर्वशी, विष्वतारा, सिकता, निबावरी, धोखा, लोपामुद्रा आदि पंडित स्त्रियाँ, इसमें प्रसिद्ध थीं। ये सभी पति के साथ समान रूप से धार्मिक, सामाजिक अनुष्ठानों में भाग लेती थीं। द्वापर काल में पाण्डवों की माँ, कुंती, अर्थवेद में पारंगत थी। कन्या के लिए उपनयन का विधान, मनु ने भी किया था। ऋषि कुष्धवज की कन्या वेदवती, ऐसी ब्रह्मवादिनी स्त्री थी। काष क्रत्सनी नायक स्त्री ने मीमांसा जैसे क्लिष्ट और गुढ़ विषय पर बहुचर्चित पुस्तक का प्रणयन भी किया गया था, जो बाद में उसी के नाम पर चर्चित हुई। याग्यवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी, एक विख्यात दार्शनिका थी। उसनके तो केवल ज्ञानप्राप्ति की अनुमति पाने के लिए, अपनी पति की सम्पत्ति में अपना अधिकार त्याग दिया और अपने हिस्से का धन, अपने पति की दूसरी पत्नी को दे दिया, राजा जनक की राज्यसभा में होने वाली विद्वदजनों की सभागोष्ठी में गार्गी ने अपनी अद्भुत शक्ति से याग्यवल्क्य को चौका दिया था, कौशल्या और तारा दोनों मंत्रविद थीं, द्रौपदी पंडिता थीं, वे नित्य वैदिक प्रार्थनायें किया करती थीं। सह शिक्षा का ऐसा उदाहरण महाभारत काल में भी मिलता है, अम्बा और शैखावत्य, एक साथ शिक्षा ग्रहण करते थे। बौद्धकाल में आनंद के प्रयास से जब संघ में स्त्रियोग को आने का अधिकार प्राप्त हुआ, शिक्षा के क्षेत्र में अनेकों स्त्रियों ने ख्याति प्राप्त की। इन भिक्षुणियों में बतीस तो आजीवन ब्रह्मचारिणी थी, उनमें सुमेधा, शोभा, अनोपमा उच्चवंश की कन्याएँ थी। राजगृह के सेठ की पुत्री यद्राकुंडकेषा ग्यानवान महिला थी। पूर्व वैदिक काल में अपला नामक कन्या, अपने पिता

के कृषि कार्य में पूर्णरूपेण सहयोग किया करती थी। उस युग में कन्याएँ गाय दुहना जानती थी। इसलिए उन्हें दुहिता भी कहा गया। कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी हुईं जो शासन व्यवस्था और राज के प्रबन्ध में भी दक्ष होती थीं। मत्स्य की महारानी ने सिकंदर के आक्रमण का प्रतिरोध पति की मृत्यु के बाद, पुत्र की अल्पावस्था के कारण स्वयं शासन किया था। स्पष्ट है कि महिलायें ज्ञान-विज्ञान, तर्क-वितर्क, शासन, युद्ध, सब कुछ कर सकती हैं। उनको केवल समाज में मौका मिलना चाहिये। बेटियाँ, बेटों से कम नहीं होती। शायद पुरुषों को यह समझ अभी तक नहीं आई या आई भी तो मानने के लिए तैयार नहीं हैं, जब तक स्त्रियों को समाज में उचित मान-सम्मान और पुरुषों के बराबर का दर्जा नहीं मिलेगा, स्त्री, शिक्षा और आर्थिक उत्थान से दूर रहेगी और जब तक यह नहीं होगा तब तक हमारा समाज पिछड़ा रहेगा। खुशी की बात है कि आजकल पुरुषों के द्वारा भी, कविता कहानी के जरिये स्त्रियों की जिस दिन स्त्री-पुरुष के दयनीय अवस्था को महसूस करने की कवायद शुरू हो चुकी है बीच की अधिकारिक भिन्नता मिटेगी, बेटियों को भी बेटों की तरह, पिता के धन में बराबर का हिस्सा मिलना शुरू होगा उसी दिन पालकी और अर्थी वाली कहावत खत्म हो जाएगी।

बेटी ससुराल वालों की प्रताड़ना को सहने के लिए मजबूर नहीं होगी। वह वापस अपने घर आ सकेगी। जब समाज इसे कबूल नहीं करेगा, बेटियाँ बहू बनकर जलती रहेगी। उनमें कभी आत्म सम्मान, आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता की बात नहीं आयेगी। मेरे हिसाब से महिला सबलीकरण की मुहिम केवल संसद में नहीं, उसके साथ पीहर में भी होनी चाहिए। बेटियों को जब तक निजी जिंदगी में पैतृक सम्पत्ति में हिस्सा नहीं मिलेगा, संसद में सबलीकरण के बिल को पास करवाकर कुछ नहीं होगा। आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्ति सामाजिक उत्पीड़न का मुकाबला नहीं कर सकता। धन का अभाव उसे आत्महत्या करने के लिए मजबूर करता है। इसलिए सामाजिक और धार्मिक जीवन दोनों ममें ही, स्त्रियों की पुरुषों के साथ, समान हिस्सेदारी होनी चाहिए। अन्यथा खुद प्रकृति कही जाने वाली नारी, प्राकृतिक, लौकिक अलौकिक सभी सुखों से दूर जीती रहेगी, उसके जीवन में कभी कोई प्रकाश नहीं आयेगा।

सन् 1971 में श्रीमती गाँधी के शासनकाल में पहली बार एक कमेटी का गठन किया गया था। जिसमें बताया गया था कि स्त्रियों के विकास में यदि कोई बात सबसे अधिक एक आदर्श स्त्री के समाज के बाधक है तो वे हैं हमारी रुढ़ियाँ, परम्परा और रिति-रिवाज जो मानक हैं वे ये हैं कि स्त्री कभी घर से बाहर नहीं

निकलती कभी अपने लिए नहीं मांगती। हमेशा त्याग और तपस्या में लगी रहती है। सन् 1975 में ही संयुक्त राष्ट्र ने 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' या इंटरनेशनल वुमन ईयर मनाया था। इस बात को भी 40 वर्ष हो गए। यही वह निर्णायक बिन्दू था जहाँ से स्त्रियों की भूमिका में बदलाव आया। आज जो लड़कियाँ कर रही हैं उन्हें देखकर समाज यही कहेगा

हे ईश्वर, हमें बेटियाँ जरूर देना।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

पुस्तक

स्वत्ववादी विमर्ष
समाज और साहित्य

पृष्ठ 18,19,20

बबली पिता श्री रमेश कुमार

महाराजा अग्रसेन महिला महाविद्यालय, झज्जर।

दूरभाष 9728919256

सारांश

कुरुक्षेत्र राष्ट्रकवि दिनकर का एक विचार प्रधान प्रबन्ध काव्य है। जिसका प्रकाशन 1946ई० में हुआ। यह युद्ध एवं शांति, हिंसा और अहिंसा तथा कर्म और संन्यास से संबंधित विचारों का पाटवपूर्ण विश्लेषणात्मक संश्लेष उपस्थित करता है। कुरुक्षेत्र के निवेदन में दिनकर ने लिखा है कि “युद्ध निंदित एवं क्रूर कर्म है किंतु उसका दायित्व किस पर होना चाहिए? उस पर जो अनीतियों का जाल बिछाकर प्रतिकार को आमंत्रण देता है या उस पर जो जाल को छिन्न-भिन्न कर देने के लिए आतुर है। पांडवों को निर्वासित करके एक प्रकार की शांति की रचना दुर्योधन ने भी की थी। तो क्या युधिष्ठिर महाराज को इस शांति को भंग नहीं करना चाहिए था?”

कुरुक्षेत्र की कथावस्तु महाभारत पर पूर्णतः आधारित नहीं है। विश्व ने दो-दो महायुद्ध देखा है। युद्ध की विभीषिका का प्रभाव मानव पर पड़ा था। महाभारत को दोहराना दिनकर का उद्देश्य नहीं था। दिनकर ने निवेदन में लिखा है कि— “कुरुक्षेत्र की रचना भगवान वेद व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई और न महाभारत को दुहराना ही मेरा उद्देश्य था। मुझे जो कुछ कहना था वह युधिष्ठिर और भीष्म का प्रसंग उठाए बिना भी कहा जा सकता था किन्तु तब यह रचना शायद प्रबंध के रूप में नहीं उतरकर मुक्तक बन कर ही रह गयी होती।”

कुरुक्षेत्र का मुख्य कथानक युद्ध और शांति पर आधारित है। कुरुक्षेत्र की समस्या दिनकर ने जो विचार व्यक्त किये हैं उनके चार पहलू हैं— (1) युद्ध क्यों होता है? (2) युद्ध का दायित्व किस पर है? (3) युद्ध उचित है या अनुचित? (4) युद्ध को कैसे रोका जा सकता है? वस्तुतः इन्ही चार प्रमुख समस्याओं को लेकर कुरुक्षेत्र के कथानक का ताना-बाना बुना गया है। दो पात्रों (भीष्म और युधिष्ठिर) के माध्यम से दिनकर ने कुरुक्षेत्र की सारी कथा कह डाली।

कुरुक्षेत्र की कथा महाभारत के युद्धोपरान्त की गीता है। महाभारत का युद्ध समाप्त हो चुका है। पांडवों की विजय और कौरवों की पराजय हुई है। पीडवों के शिविर में हर्षोल्लास है किन्तु युधिष्ठिर के हृदय में ग्लानि एवं पाश्चाताप परिव्याप्त है। क्योंकि यह विजयश्री लाशों से पटी, आत्मीय जनों के नाश के फलस्वरूप मिली है। यह विजय मानवता के लिए कितनी महंगी पड़ी है। अनेक स्त्रियों के ललाट के सिन्दूर धूल गये हैं। असंख्य माताओं के लाल युद्ध की भेंट चढ़ गये हैं। युधिष्ठिर चिंतामग्न सोचते हैं अगर विनाश की भित्ति पर ही विजय का महल खड़ा होता है तो ऐसी विजय से क्या लाभ? वे

अपने आप से पूछते हैं क्या हमने यह पाप नहीं किया? क्या हम त्याग और बलिदान का परिचय देकर संन्यासी नहीं हो सकते थे। उन्हें ऐसा लगता है कि पांच पांडवों के असंतोष के कारण ही संपूर्ण देश का नाश हो गया। भला रक्त से सनी हुई इस पृथ्वी के राज को जिसमें अभिमन्यु का रक्त भी मिला हुआ है वे कैसे सुख से भोग सकेंगे! —

यह महाभारत निष्फल हुआ

उफ! ज्वलित कितना गरलमय व्यंग्य है?

पांच ही असहिष्णु भर के द्वेष सा

हो गया संहार पूरे देश का।

X X X

रक्त से छाने हुए इस राज्य को

वज्र हो कैसे सकूंगा भोग मैं?

आदमी के खून में यह है सना

और है इसमें लहू अभिमन्यु का।

उनका हृदय व्यथा से भर उठता है और वे दीर्घ निश्वास लेते हुए अर्जुन से कहते हैं कि हे पार्थ! मैं पितामह के पास जा रहा हूँ—

भर गया ऐसा हृदय दुख दर्द से

फेन या बुदबुद नहीं उसमें उठा

खींचकर उच्छवास बोले सिर्फ वे

पार्थ, मैं जाता पितामह पास हूँ।

कुरुक्षेत्र की भूमि में बाणों की शर-शैल्या पर लेटे हुए, भीष्म पितामह के पास व्याकुल हृदय युधिष्ठिर जाकर फूट फूटकर रोने लगते हैं। उन्होंने कहा—पितामह महाभारत निष्फल हुआ क्योंकि दुर्योधन वीरगति पाकर जीवन के उस पार जा चुका है और मानव की रक्त सरिता के तट पर बैठकर बंधु-बांधवों का शवदाह देखने के लिए मैं बचा हुआ हूँ। भला यह मेरी विजय है या दुर्योधन की। अगर मैं महाभारत का यह परिणाम पहले से जानता तो तनबल को छोड़कर अपने मनोबल से ही दुर्योधन के साथ युद्ध करता और तपस्या, संतोष एवं त्याग की भावना से उसके हृदय पर विजय पाने का प्रयत्न करता। अगर दुर्योधन उससे भी नहीं मानता तो मैं अपने भाइयों के साथ भीख मांगकर भले ही जीवन यापन करता लेकिन यह रक्तपात नहीं करता।

जानता कहीं जो परिणाम महाभारत का

तन-बल छोड़ मैं मनोबल से लड़ता।

तप से, सहिष्णुता से, त्याग से सुयोधन को

जीत, नयी नींव इतिहास की मैं धरता।
और कहीं वज्र गलता न मेरी आह से जो,
मेरे तप से नहीं सुयोधन सुधरता।
तो भी हाथ, यह रक्त-पात नहीं करता मैं,
भाइयों के संग कहीं भीख मांग मरता !

युधिष्ठिर की विरक्ति का मूल कारण कुरुक्षेत्र के मैदान
में हुआ मानवीय विनाश है, क्योंकि वे सोचते हैं—

सत्य ही तो मुष्टिगत करना जिसे, चाहता था शत्रुओं
के साथ ही।

उड़ गये वे तत्व मेरे हाथ में व्यंग्य, पाश्चाताप केवल
छोड़कर।

भीष्म पितामह बार-बार उनको समझाते और आश्वस्त
करते हैं पर इसका कोई भी प्रभाव युधिष्ठिर पर नहीं पड़ता है।
पंचम सर्ग में उनका विलाप और भी प्रभावोत्पादक हो गया है।
क्योंकि वे सोचने लगते हैं कि स्वयं की सुख प्राप्ति के लिए समस्त
मानवता को युद्ध की संहारक लपटों में झोंकने का उन्हें क्या
अधिकार था? ऐसे-ऐसे अनेक प्रश्न युधिष्ठिर के मन में उठते हैं
और उनकी विराग भावना को उदीप्त करते हैं। यहां पर युधिष्ठिर
का रूप सामान्य मानव के समान ही चित्रित किया गया है।

आज की तथाकथित सभ्यता में दिनकर का विश्वास
कम है। क्योंकि विज्ञान की दौड़ केवल बुद्धि की दौड़ है। इसमें
हृदय का कोई स्थान नहीं है। मानव कल्याण की भावना के कारण
ही दिनकर ने इतिहास को छाना —

शारदे! विकल संक्रान्ति काल का नर मैं,
कलिकाल-भाल पर चढ़ा हुआ द्वापर मैं,
संतप्त विश्व के लिए खोजते छाया,
आशा में था इतिहास— लोक तक आया।

दिनकर को यहां भी चैन नहीं मिला। उन्होंने भगवान से ही पूछ
डाला—

धर्म का दीपक, दया का दीप
कब जलेगा, कब जलेगा, विश्व में भगवान?
कब सुकोमल ज्योति से अभिसिक्त
हो, सरस होंगे जली-सूखी रसा के प्राण ?

इसके बाद दिनकर मानव का जय-जयकार करने में
भी नहीं चूकते—

जय हो अथ के गहन गर्त में गिरे हुए मानव की।
मनु के सरल अबोध पुत्र की पुरुष ज्योति संभव की।।

सप्तम सर्ग में कवि ने भीष्म द्वारा निवृत्ति मार्ग का खंडन
और प्रवृत्ति मार्ग का मंडन करवा कर कर्म की महता स्थापित की

है। जिसमें सेवा की उदात्त भावना भी है। दिनकर ने जिस मानव
का जय जयकार किया है वह कर्मण्यशील व्यक्ति है—

धर्मराज, कर्मठ मनुष्य का पथ संन्यास नहीं है।
नर जिस पर चलता, वह मिट्टी है, आकाश नहीं है।

X X X

यह अरण्य झुरमुट जो काटे, अपनी राह बना ले,
क्रीत दास यह नहीं किसी का जो चाहे अपना ले।
जीवन उनका नहीं युधिष्ठिर जो उससे डरते हैं।
वह उनका जो चरण रोप निर्भय होकर लड़ते हैं।

षष्ठ सर्ग में कवि ने मनुष्य के श्रेय के प्रश्न उठाया है।
इस प्रश्न पर दिनकर ने बड़ी मार्मिकता से कवित्वपूर्ण शब्दावली
में विचार किया है। संक्षेप में मनुष्य का श्रेय उसके प्राण में बहती
हुई प्राण-वायु है। जिससे प्रेरित होकर वह अपनी आयु मानव के
हेतु अर्पित कर सके। यजन, अर्पण, और आत्मसुख के त्याग में
वह श्रेय निहित है। उसका श्रेय विज्ञान का वह वरदान है जिस
कारण समस्त मानव जाति का कल्याण हो सकता है। इसी प्रकार
मानव का श्रेय समता विधायक ज्ञान भी है—

रसवती भू के मनुज का श्रेय,

यह नहीं विज्ञान कटु आग्नेय।

श्रेय उसका प्राण में बहती प्रणय की वायु,

मानवों के हेतु अर्पित मानवों की आयु।

कुरुक्षेत्र का षष्ठ सर्ग इस काव्य का प्राण है। इस सर्ग
का संदेश संक्षेप में इस प्रकार है — 1. मानव के सब भेद समाप्त
हो,

2. प्राकृतिक सुखों पर सबका समान अधिकार हो,
3. मन और बुद्धि का समन्वय हो,
4. मनुष्य का श्रेय मानव प्रेम और सेवा में निहित है,
5. वैज्ञानिक आविष्कारों का मानव कल्याण में प्रयोग हो,

मानव का सच्चा सुख इन्हीं में निहित है। दिनकर ने
कुरुक्षेत्र में मानवतावाद की प्रतिष्ठा की है। जीवन के लिए धर्म के
व्यापक रूप को दिनकर ने आवश्यक माना है क्योंकि आज का
विज्ञान इसके अभाव में विध्वंसक मात्र बनकर रह गया है। मनुष्य
की अमरता में कवि का विश्वास है और जीवन के प्रति उनका
दृष्टिकोण भी आशावादी है। विराट स्तर पर सभी
विरोधी-अविरोधी तत्वों का समन्वय इस काव्य की विशेषता है
और यही कवि की सफलता भी। संक्षेप में यही कुरुक्षेत्र की
विचारधारा है, जो मानव और मानव जगत् की समस्याओं पर
गहन प्रकाश डालती है। 'आत्मवत सर्वभूतेषु' अर्थात् सर्वभूत
आत्मवत ही है। ऐसे में कौन किसका अकल्याणकारी होगा,
समाज में समता रहे, विषमता का अंत हो, यही कुरुक्षेत्र का

प्रतिपाद्य है; जो मानवतावादी विचारधारा के निकट है। कुछ लोग कुरुक्षेत्र में गांधीवाद और मार्क्सवाद के दर्शन करते हैं। कुरुक्षेत्र के युधिष्ठिर गांधीवादी विचारों के संवाहक हैं जबकि भीष्म पितामह साम्यवादी विचारों के पोषक हैं। मानव जीवन के सम्यक विकास के लिए गांधीवाद और मार्क्सवाद दोनों का समन्वय अपेक्षित है। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कुरुक्षेत्र का प्रतिपाद्य न प्रगतिवादी है न अराजकतावादी बल्कि मानवतावादी है जिस पर भारतीय आदर्शवाद गीता का कर्मयोग, तिलक की राजनीतिक विचारधारा, समाजवाद के व्यापक तत्व, पाश्चात्य दार्शनिकों की विचारधारा तथा गांधीवादी सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ा है। कवि का उद्देश्य किसी भी संकीर्ण मतवाद की स्थापना करना नहीं है बल्कि उसका उद्देश्य मानवीय समस्याओं को मानवतावादी दृष्टिकोण से समझना है। अतः उसका प्रतिपाद्य मानवतावाद ही है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद के शब्दों में— कुरुक्षेत्र 'योगः कर्मषु कौशलम्' की ओजस्वी व्याख्या है जिसमें आशा के प्रदीप को जलाये रखना का शाश्वत संदेश है—

फूलों पर आँसू के मोती, और अश्रु में आशा।
मिट्टी के जीवन की छोटी, नपी-तुली परिभाषा।

X X X

आशा के प्रदीप को जलाये चलो धर्मराज,
एक दिन होगी भूमि रण-भीति से।

भावना मनुष्य की न राग में न रहेगी लिप्त,
सेवित रहेगा नहीं जीवन अनीति इसे।

हार से मनुष्य की न महिमा घटेगी और,
तेज न बढ़ेगा किसी मानव का जीत से।

स्नेह-बलिदान होंगे माप नरता के एक,
धरती मनुष्य की बनेगी स्वर्ग प्रीति से।”

संदर्भ ग्रंथ—

1. दिनकर रचनावली— संपादक डॉ० नंदकिशोर नवल एवं डॉ० तरुण कुमार— राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001
2. दिनकरनामा, डॉ० दिवाकर, दिनकर शोध—संस्थान, बरौनी, बेगुसराय, 2002
3. युगचारण दिनकर, डॉ० सावित्री सिन्हा, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019
4. दिनकर की साहित्य साधना, संपादक डॉ० सतीश कुमार राय, किताब पब्लिकेशन, हाजीपुर, मुजफ्फरपुर, 2008
5. दिनकर चिंतन—अनुचिंतन, संपादक डॉ० सतीश कुमार राय, विद्यावति प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009

6. दिनकर का गद्य साहित्य, डॉ० प्रेमनाथ उपाध्याय, जिज्ञासा प्रकाशन, राजेन्द्र नगर, पटना, 2006
7. दिनकर और उनका कुरुक्षेत्र, आ० शिवबालक राय, अर्चना प्रकाशन, 1956
8. उर्वशी विचार और विश्लेषण, संपादक डॉ० वचनदेव कुमार, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1989
9. दिनकर साहित्य साधना, संपादक डॉ० दिनेश कुमार शर्मा, हिन्दी प्रचारिणी सभा, अलीगढ़, 2021

डॉ० आलोक रंजन

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,

मारवाड़ी कॉलेज, भागलपुर

चलभाष: 9471357089, 7979062977

सारांश

इस नाम रूप संसार में किसी भी ग्रंथ के नामकरण का प्रश्न अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण है। रश्मिरथी राष्ट्रकवि दिनकर का एक महत्वपूर्ण खंडकाव्य है, जिसका प्रकाशन 1952 ई० में हुआ तथा जो महाभारत के उपेक्षित कर्ण के जीवन चरित पर आधारित है। पुस्तक या ग्रंथ का नामकरण कवि या रचनाकार की मानसिक गहराई, विषय की ग्रहणशीलता तथा निपुणता अभिव्यक्त करता है। कवि या रचनाकार अपनी कृति या रचना के मूल भाव या विषय को कितनी समग्रता के साथ समझ या समझा सका है— इसकी जानकारी किसी पुस्तक के नामकरण से ही होती है। विद्वानों की मान्यता है कि किसी भी कृति या रचना का नाम (शीर्षक— Title) संक्षिप्त, स्पष्ट तथा मूल भाव का बोधक होना चाहिए।

आधुनिक हिन्दी कविता के मूर्द्धन्य विद्वान डॉ. नागेश्वर लाल ने नामकरण पर विचार करते हुए लिखा है कि— “साहित्यिक रचना का नाम यों ही नहीं होता और न सार्थकता के लिए उसे इतिहास की ओर देखना पड़ता है। वह बहुत सोच-समझ कर रखा जाता है। उसके लिए सूझ की बाजी लगानी पड़ती है। कहा तो यहां तक जा सकता है कि रचना करने से भी अधिक जोखिम का काम नाम रखने का है। वह एक प्रकार का मूल्य है जो पूरी रचना के बदले थोड़े सार्थक शब्दों में गूँथा जाता है। उसे रचना का संक्षिप्ततम प्रतिनिधि होना चाहिए।”

डॉ० नागेश्वर लाल के उपर्युक्त कथन पर जब हम विचार करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी कृति या रचना का नामकरण रचनाकार के लिए सबसे बड़ा महत्वपूर्ण कार्य होता है। किसी भी कृति या रचना के नामकरण के लिए शास्त्रों में आचार्यों ने मुख्यतः पांच सिद्धान्तों का प्रावधान किया है—

1. कविवाचक— हिन्दी में पहले स्फूट कविताओं के संकलनों के नाम उर्दू की ख्याति रीति पर रख जाते थे। उस परंपरा के अनुसार, कवि नाम काव्य नाम के साथ जुड़ जाता है। यह ठीक उसी प्रकार होता है— जैसे अभी भी कई इलाकों में पितृ नाम का एक अंश पुत्र नाम के साथ जुड़ जाता है। उदाहरण के लिए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के नाम के साथ उनके पिता करमचन्द गांधी का नाम भी जुड़ा हुआ है। हिन्दी में वाल्मीकि रामायण, सूरसागर, सूरसारावली, बिहारी सत सई, मतिराम सत्ताई, वृंद सत्तसई, रसनिधि सत्तराई, विक्रम सत्तसई, भूपति सत्तसई नाम इसी कोटि के हैं।

2. चरितवाचक (चरितमूलक)— जब किसी कृति या रचना में चरित विशेष की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है, तब रचनाकार उस चरित

(पात्र) के नाम पर, रचना का नाम रख देता है। इसके दो पहलू हैं, नायक या नायिका की प्रमुखता। जब किसी रचना में नायक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है और वह पूरी रचना में छाया रहता है तब उसके नाम पर कृतिकार उस कृति का नाम रख देता है। जैसे— जयशंकर प्रसाद के चंद्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, अजातशत्रु तथा ब्रजबल्लभ सहाय के उपन्यास राधाकान्त, शरतचन्द्र का उपन्यास देवदास का नामकरण नायक की प्रधानता के कारण उनके नाम पर कर दिया गया है, लेकिन जब किसी रचना में नायिका की प्रधानता रहती है तब नायिका के नाम पर कृति का नाम रख दिया जाता है। कामायनी, यशोधरा, उर्वशी, कैकेयी, उर्मिला, मांडवी, चित्रलेखा, ध्रुवस्वामिनी, सैरन्धी, विष्णुप्रिया, मधुमालती आदि नाम इसी प्रकार के हैं।

3. घटनावाचक— जब किसी कृति में किसी घटना विशेष का महत्व होता है, तब उस घटना विशेष का मद्देनजर रखते हुए उसका नामकरण कर दिया जाता है। रामवृक्ष बेनीपुरी ने अपने सुप्रसिद्ध नाटक ‘नेत्रदान’ का नामकरण कुणाल के नेत्र दिए जाने की घटना पर किया है। प्रेमचंद ने ‘गबन’ और शरतचंद्र ने ‘गृहदाह’ का नामकरण भी इसी सिद्धान्त पर किया है।

4 विशेषणवाचक— जब किसी कृति या रचना के नायक—नायिका अपा किसी पात्र विशेष में कोई विशेष विशेषता परिलक्षित होती है, तब उस विशेषता अथवा गुण के आधार पर उस कृति का नामकरण कर दिया जाता है जैसे दिनकर की रश्मिरथी, ब्रजनंदन सहाय का सौंदर्योपासक, शिवसागर मिश्र का राजतिलक, वृंदावनलाल वर्मा का मृगनयनी नाम इसी कोटि के हैं।

5. स्थानवाचक— जब रचनाकार की दृष्टि में वह स्थल विशेष महत्वपूर्ण हो जाता है, जहाँ प्रमुख घटनाएँ घटती हैं, तब रचनाकार अपनी रचना उस स्थल विशेष के नाम पर कर देता है। मैथिलीशरण गुप्त ने ‘साकेत’ श्यामनारायण पांडेय ने ‘हल्दीधारी’ और दिनकर ने ‘कुरुक्षेत्र’ नाम स्थल विशेष के नाम पर कर दिया है।

‘रश्मिरथी’ नाम का औचित्य इन सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में विवेचित है। ‘रश्मि’ का अर्थ सूर्यकिरण और ‘रथी’ का अर्थ सवार होना है। रश्मिरथी का अर्थ होगा किरणों के रथ पर सवार होने वाला व्यक्ति। इस पुस्तक में ‘रश्मिरथी’ नाम कर्ण का है। अकेला यही शब्द कर्ण के जीवन और व्यक्तित्व का स्पष्ट करता है। सूर्य और कुंती के संबंध से जन्म लेने के कारण कर्ण ‘सूर्यपुत्र’ कहलाये। सूर्य की किरणों की समस्त विशेषतायें कर्ण चरित की विभूतियाँ बन गई हैं। जिस तरह किरणें दीप्त, तेजोमय, और प्रकाशमय होती हैं, उसी तरह

कर्ण का अंतर एवं बाह्य इन गुणों से विभूषित है। किरणों की तरह कर्ण का हृदय भी निश्छल एवं पवित्र है। जिस तरह सूर्य की किरणें किसी के साथ भेद भाव नहीं करती, उसी तरह कर्ण भी किसी के साथ संबंध की स्पष्टता रखने में जरा भी नहीं हिचकता है।

‘रश्मिरथी’ में कर्ण के व्यक्तित्व की तुलना सूर्य की ज्योति और किरणों से सर्वत्र की गई है। इन्द्र ने भी कर्ण को ज्योति का उज्ज्वल अचल शैल कहा है—

दीख रहा तू मुझे ज्योति के उज्ज्वल शैल अचल—सा,
कोटि—कोटि जन्मों के संचित महापुण्य के फल—सा।
त्रिभुवन में जिन अमित योगियों का प्रकाश जगता है,
उनके पूंजीभूत रूप—सा तू मुझको लगता है। — चतुर्थ सर्ग

जिस तरह पर्वत का शिखर सूर्य के प्रकाश से भर जाने पर शोभायमान दिखाई देता है उसी तरह कर्ण का व्यक्तित्व इन्द्र को दिखाई दिया। दिनकर ने कर्ण के शारीरिक गठन और सौन्दर्य की समता सोने के शैल शिखर और कनक रचित पर्वत से की है—

रंगभूमि से लिए कर्ण को कौरव शंख बजाते,
चले झूमते हुए खुशी में गाते मौज मनाते।
कंचन के युग शैल शिखर सम सुगठित सुघड़, सुवर्ण,
गलबोही दे चले परस्पर दुर्योधन और कर्ण।।

कर्ण की भुजाये केवल सोने जैसी सुघड़ नहीं थी, उसका हृदय भी सोने की तरह स्वच्छ और पवित्र था। जिस सोने में जितनी कम मिलावट होगी उसकी चमक उतनी ही स्वच्छ और पवित्र होगी। कर्ण का चरित्र स्वर्ण की भांति निश्छल था। उसके मन में किसी तरह की कालिमा नहीं थी। कर्ण ने स्वयं कहा है—
“कनक सा ही हमारा स्वच्छ मन है”

कर्ण महत्वाकांक्षी है। वह धरती का सूर्य बन जाना चाहता है। उसने स्वयं कहा है — ‘मही का सूर्य होना चाहता हूँ।’

इस प्रकार देखा जाए तो यदि एक ओर कर्ण के चरित्र और व्यक्तित्व में सूर्य की रश्मियों का तेज और प्रकाश भरा है तो दूसरी ओर कनक की चमक और पावनता विद्यमान है। अतः उसके लिए रश्मिरथी संज्ञा सार्थक एवं सटीक है। चूंकि संपूर्ण पुस्तक में कर्ण की ही प्रमुखता है इसलिए पुस्तक का नाम रश्मिरथी उचित है। ‘रश्मिरथी’ नाम की सार्थकता का एक अन्य कारण यह भी है कि जिस तरह सूर्य की रश्मियां (किरणें) अनादि, शाश्वत, अमर एवं अमिट है उसी प्रकार कर्ण का चरित्र अपने गुण प्रताप एवं सत्कार्यों के कारण अमर एवं अमिट रहेगा। भगवान

इन्द्र ने कुछ इसी तरह का आशीर्वाद कर्ण को दिया था। महापुरुषों की कीर्ति कभी नहीं मरती—

दानवीर! जय हो महिमा का गान सभी जन गायें,
देव और नर, दोनों ही, तेरा चरित्र अपनायें।
दे अमोघ शर—दान सिधारे देवराज अम्बर को
व्रत का अंतिम मोल चुका कर गया कर्ण निज घर को।
—चतुर्थ सर्ग

‘रश्मिरथी’ के नामकरण का एक अन्य आधार इस पुस्तक की मूल घटना कर्ण वध से है। सप्तम सर्ग में युद्ध के दौरान जब कर्ण का रथ चक्र रक्त कीच में फंस गया तो उसने महानिर्वाण का क्षण आते देख सूर्य का देखा और कहा— हे पिता! मैं रश्मिरथ पर सवार होकर आ रहा हूँ। निम्नांकित पंक्तिया इस बात की ओर संकेत करती हैं कि— कर्ण को निर्वाण या मोक्ष मिलकर ही रहेगा, उसे इतना आत्मविश्वास है कि वह भावाकुल होकर बोल उठा—

अहा! आलोक स्यन्दन आन पहुँचा
हमारे पुण्य का क्षण आन पहुँचा।
विभाओं सूर्य की! जय—गान गाओ,
मिलाओ, तार किरणों के मिलाओ।
प्रभा—मण्डल ! भरो झंकार, बोलो !
जगत की ज्योतियों । निज द्वार खोलो!
तपस्या रोचिभूषित ला रहा हूँ।

चढ़ा मैं रश्मिरथ पर आ रहा हूँ। — सप्तम सर्ग

उपर्युक्त विवेचन से यह प्रमाणित होता है कि कर्ण का जीवन जन्म से मृत्युपर्यन्त रश्मियों के ताने—बाने से बना हुआ है। क्या शरीर, क्या व्यक्तित्व, क्या कवच—कुंडल, क्या क्रिया और क्या मरण—तरण— सर्वत्र स्वर्ण और सूर्य की विभूतियां विभाषित हैं। इसलिए भी ‘रश्मिरथी’ नाम सर्वथा उचित है।

किसी भी कृति का शीर्षक दो प्रकार का होता है—मुकुट प्रधान और घूंघट प्रधान। मुकुट किसी राजा के मस्तक पर होता है और वह राजत्व का प्रमाणित करता है; जबकि घूंघट नारी के मुखमंडल के सौन्दर्य को छुपाये रहता है। दर्शक तब तक उस सौन्दर्य का रसास्वादन नहीं कर पाता जब तक वह घूंघट का अनावरण नहीं करता। चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, अजातशत्रु, उर्वशी, यशोधरा, विष्णुप्रिया आदि नाम इसी कोटि के हैं। जबकि गबन, शिवपूजन सहाय की कहानी कुंजी या मुंडमाल, गुलेरी जी की कहानी उसने कहा था नाम घूंघट प्रधान है। ‘रश्मिरथी’ नाम लक्षणा एवं व्यंजनापरक है क्योंकि अभिधा से इसका अर्थ पूर्णतः

स्पष्ट नहीं होता। 'रश्मिरथी' नाम से नायक के प्रति पाठक की जिज्ञासा उदीप्त होती है और तब तक इसका शमन नहीं होता जब तक वह पूरी रश्मिरथी को पढ़कर यह ज्ञात नहीं कर लेता कि 'रश्मिरथी' संज्ञा कर्ण के लिए प्रयुक्त है। दिनकर ने स्वयं 'रश्मिरथी' की भूमिका में रश्मिरथी नाम के औचित्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है— "इस पुस्तक का नाम 'रश्मिरथी' है। जिसका अर्थ होता है वह व्यक्ति जिसका रथ रश्मि अर्थात् पुण्य का हो। इस काव्य में रश्मिरथी नाम कर्ण का है क्योंकि उसका चरित्र अनंत पुण्यमय और प्रोज्ज्वल है।" रश्मिरथी का अर्थ एवं इति कर्ण से है।

जय हो जग में जले नहीं भी नमन पुनीत अनल को,
जिस नर में भी बसे हमारा नमन तेज को बल को।
किसी वृत्त पर खिले विपिन में, पर नमस्य है फूल,
सुधी खोजते नहीं गुणों का आदि शक्ति का मूल।।

यदि अर्थ है तो इति है—

युधिष्ठिर! भूलिये विकराल था वह,

विपक्षी था, हमारा काल था वह।

अहा! वह शील में कितना विनत था!

दया में, धर्म में कैसा निरत था!

समझ कर द्रोण मन में भक्ति भरिए,

पितामह की तरह सम्मान करिये।

मनुजता का नया नेता उठा है,

जगत् से ज्योति का जेता उठा है।

अतः सर्वतोभावेन 'रश्मिरथी' संज्ञा सार्थक, सटीक एवं व्यंजनापरक है।

संदर्भ ग्रंथ—

1. दिनकर रचनावली— संपादक डॉ० नंदकिशोर नवल एवं डॉ० तरुण कुमार— राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001
2. दिनकरनामा, डॉ० दिवाकर, दिनकर शोध—संस्थान, बरौनी, बेगुसराय, 2002
3. युगचारण दिनकर, डॉ० सावित्री सिन्हा, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019
4. दिनकर की साहित्य साधना, संपादक डॉ० सतीश कुमार राय, किताब पब्लिकेशन, हाजीपुर, मुजफ्फरपुर, 2008
5. दिनकर चिंतन—अनुचिंतन, संपादक डॉ० सतीश कुमार राय, विद्यावति प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
6. दिनकर का गद्य साहित्य, डॉ० प्रेमनाथ उपाध्याय, जिज्ञासा प्रकाशन, राजेन्द्र नगर, पटना, 2006

7. दिनकर और उनका कुरुक्षेत्र, आ० शिवबालक राय, अर्चना प्रकाशन, 1956
8. उर्वशी विचार और विश्लेषण, संपादक डॉ० वचनदेव कुमार, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1989
9. दिनकर साहित्य साधना, संपादक डॉ० दिनेश कुमार शर्मा, हिन्दी प्रचारिणी सभा, अलीगढ़, 2021
10. रश्मिरथी समीक्षा, डॉ० वासुदेव नंदन प्रसाद, भारती भवन, पटना, 1971

डॉ० अमृता धीर

सहायक हिन्दी शिक्षिका,

श्री दुर्गा+2 विद्यालय, शिवसागर
रोहतास, सासाराम, बिहार— 821115

चलभाष: 9471846126

सारांश

डॉ. नगेंद्र ने रस-सिद्धांत के प्रतिपादन के पूर्व 'रस' शब्द के अर्थ और उसके प्रभाव के बारे में चिंतन-मनन करना आवश्यक समझा, ताकि वे अपने द्वारा रची जाने वाले रस-सिद्धांत को सुदृढ़ तथा वैज्ञानिक आधार दे पाएँ। उन्होंने रस शब्द के अर्थ को विवेचित करते हुए पाया-साहित्य में 'रस' का तात्पर्य है— जो आत्मानु भूति को प्रेरित करे। उन्होंने पाया कि रस के माध्यम से ही काव्य में सौन्दर्य का प्रस्फुटन होता है, जिसे काव्यास्वाद और काव्यानन्द भी कहा जाता है। भक्ति रस का आधार भिन्न है, लेकिन उसका वही प्रभाव है जो साहित्य के रस का प्रभाव है। इस सन्दर्भ में विवेचना करते हुए डॉ. नगेंद्र ने लिखा है— 'रस का अर्थ है (अ) काव्य सौन्दर्य और (अ) काव्यास्वाद-तथा काव्यानन्द भी, मोक्ष रस या आत्मरस ब्रह्मानन्द अथवा आत्मानन्द का वाचक है। भक्ति रस का अर्थ भी सिद्धांत भेद होने पर भी मूलतः यही है।'¹ डॉ. नगेंद्र ने अपने ग्रन्थ में रस-सिद्धांत में रस का अर्थ स्पष्ट किया और उसकी व्याख्या कर दी और उसके अर्थ को भी स्पष्ट कर दिया। यह कार्य प्रस्तुत: वैसा ही है, जैसे विधि की पुस्तकों में प्रयुक्त अनेक शब्दों का अर्थ भी स्पष्ट किया जाता है ताकि उसे दूसरे किसी ओर अर्थ में प्रयुक्त किया नहीं किया जाए। इस संदर्भ में डॉ. मनोहर काले ने लिखा है— "जहाँ तक 'रस' के शास्त्रीय अर्थ या पारिभाषिक अर्थ-स्थायि संचारिमूलक— रस के —का सम्बंध है, वह डॉ. नगेंद्र ही धारणा में ईसा की चौथी पाचवीं शती पूर्व से लेकर दूसरी-तीसरी शती पूर्व तक निश्चित हुआ होगा। इस मत की पुष्टि में इन्होंने वात्स्यायन के कामसूत्र को स्वरूप प्रस्तुत किया है और 'रस' के अर्थ विकास की गहराईयों में जा कर इन्होंने सी आधार पर सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि 'नाटयशास्त्र' आविर्भव से पूर्व रस का काव्य-शास्त्रीय अर्थ सुनिश्चित हो चुका था।'²

डॉ. नगेंद्र ने शोध के क्रम में पाया कि साहित्य के क्षेत्र में 'रस' के शास्त्रीय अर्थ का आकलन या स्थापना ईसा की चौथी-पांचवीं शताब्दी पूर्व से लेकर दूसरी-तीसरी शताब्दी पूर्व तक निश्चित किया गया होगा। अपनी इस धारणा की संतुष्टि करने हेतु उन्होंने वात्स्यायन के कामसूत्र को आधार रूप में देखते हुए उसे प्रमाण उसकी आत्मा में प्रवेश कर जो शोध किया, उससे उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि साहित्य के क्षेत्र में रस के अर्थ का समुचित विकास भरत मुनि के 'नाटयशास्त्री' के आलेखन के पूर्व ही स्थापित हो चुका था। डॉ. नगेंद्र किसी भी विषय में जाने के लिए उसके इतिहास तक जान का सदैव प्रयास किया है। किसी विषय का

इतिहास उनकी जड़ हासिल हो जाए तो फिर विषय रूपी वृक्ष का सर्वांग अध्ययन का मार्ग मिल जाता है। इस प्रयास के द्वारा उन्होंने 'रस' विषय का सर्वांग और विस्तृत विवेचन किया। यही कारण है कि वे अपने उद्देश्य में सफल रहे।

रस के सम्बंध में डॉ. नगेंद्र ने कई प्रयोग किए जिनमें उनका तीसरा प्रयोग है—

“तीसरा प्रयोग है साहित्य का रस, जहाँ रस का अर्थ है (अ) काव्य सौन्दर्य, और (आ) काव्यासाद-तथा काव्यानन्द भी। मोक्षरस या आत्मरस ब्रह्मानन्द अथवा आत्मानन्द का वाचक है, भक्ति रस का अर्थ भी...सिद्धांत-भेद होने पर भी, मूलतः यही है। रस के उपयुक्त सभी अर्थों में आस्वाद का अंतर्भाव तो स्पष्ट है, चाहे उसको ग्रहण करने का माध्यम ज्ञानेन्द्रिय रसना हो या सूक्ष्म ऐन्द्रिय मन हो, मस्तिष्क हो या आत्माय द्रवत्व और सार अथवा प्राण तत्व का भाव भी प्रायः किसी न किसी रूप में सर्वत्र मिलता है। रस शब्द का पहला अर्थ—अर्थात् पदार्थों का सारभूत द्रव-वेदों में स्पष्ट रूप से मिलता है। वनस्पतियों के रस का वैदिक युग में प्रचुर प्रयोग होता था। मानव सभ्यता के उस प्रभात युग में यह स्वाभाविक ही था।'³

इस उक्ति से डॉ. नगेंद्र ने यह बताने का सफल प्रयास किया है कि साहित्य का सौन्दर्य उसका आस्वादन और उससे आनंद की प्राप्ति साहित्य में उपस्थित रस के कारण ही सम्भव है। अतः रस को काव्य की या साहित्य की आत्मा के रूप में देखना उचित होगा। मानव साहित्य की आत्मा के रूप में देखना उचित होगा। मानव साहित्य क्यों पढ़ें या पढ़ता है? इस पर भी विचार किया जाए तो वह है कि उसके आस्वादन से उस आनंद की प्राप्ति होती है। इस आनंद से पाठक को मिलता क्या है? वह सब कुछ जो उसे समाजहित का प्राणी बनता है यानी नतू न चेतना। उसमें संवेदना का प्रस्फुटन करता है। जब पाठक संवेदना युक्त हो जाता है तो उचित कर्म तथा सत्य की ओर ही प्रवृत्त होता है और यह उसे मोक्ष की ओर ले जाता है। उसे अपने कर्म से आत्मानंद की प्राप्ति होती है। मानव शारीरिक कष्टों को भूल कर उस ब्रह्मानंद के आनंद से उत्प्रेरित होकर वह पाता जो उसका उद्देश्य है। साहित्य के रस को मानव अपने ज्ञान इन्द्रियों से ग्रहण करे या चाहे अपने सूक्ष्म इन्द्रियों से मन के स्तर पर ग्रहण करें, या फिर आत्मा के स्तर पर, वह मनुष्य को उस रस के गुण के अनुरूप प्रतिफल देता है। यह ठीक वैसे ही है, कि अगर आयुर्वेद के वैद्य के द्वारा तैयार जड़ी-बूटी फल-फूल आदि का रस अगर सटीक द्रव सिद्ध हो तो रोगी उस का पान कर स्वस्थ हो उठता है।

फ्रायड के आनंदवादी सिद्धांत से गुजरने के बाद डॉ. नगेंद्र ने उसका भारतीयकरण करने का निश्चय किया। उन्होंने उनकी भी मान्यताओं में उचित संशोधन किया, उसे सर्वर्धित किया और उसके साथ भारतीयता और मानवीयता को युग्म किया। फ्रायड के मनोवैज्ञानिक आधारित भौतिक-वादी 67 सुख-आनंद के चिंतन से डॉ. नगेंद्र कुछ तत्वों को लेकर उसे भारतीय परम्परा के अनुरूप आध्यात्मिकता तत्व में परिणत कर दिया। उन्हें फ्रायड के सिद्धांत में आध्यात्मिकता का अभाव दिखा, और अभाव को उन्होंने अपने विद्धांत में स्थान दे दिये उन्होंने फ्रायड के इस विचार को मानने से सर्वथा अस्वीकार कर दिया कि मानव जीवन का केंद्र है काम-वृत्ति है। डॉ. नगेंद्र ने काम-वृत्ति को जीवन का एक अंश माना, लेकिन मूलधार नहीं। काम-वृत्ति आनंद का एक स्रोत है लेकिन मानव के लिए ब्रह्मानंद जीवन दर्शन का निर्माता है। ब्रह्मानंद जब किसी को प्राप्त होता है तो वह उस आनंद में विभोर हो जाता है कुछ और पाने की इच्छा से दूर हो जाता है।

डॉ. नगेंद्र की सोच स्पष्ट है कि मानव की काम-वृत्ति भारतीय परम्परा में अन्य ऐन्द्रिय प्रक्रियाओं की तरह एक प्रक्रिया मात्र है। काम-वृत्ति मानव, की संस्कृति का लेखन नहीं है, बल्कि संस्कृति का निर्माण एक जटिल व्यक्तगत ज्ञान तथा अनुभव पारिवारिक और सामाजिक परिवेश और परम्पराओं से होता है, वस्तुतः भारतीय संस्कृति की संरचना में जो विशिष्ट मानसिक संरचना है, वह असध्यात्मिकता, सत्य मानवीय, धर्म, ज्ञान, दया, क्षमा, प्रेम, स्नेह, वात्सल्य, ममता, रिस्तों की मर्यादा, विश्वबन्धुत्व आदि से संघटित होता है। वह काम केन्द्रित नहीं है।

डॉ. नगेंद्र ने फ्रायड के सिद्धांत को और संशोधित करने हुए बहुत विनम्रता के साथ यह कार्य किया। आज के परिदृश्य में आलोचना की सबसे बड़ी कमजोरी आलोचकों के मन की दुलभा 'वना है।

डॉ. नगेंद्र ने फ्रायड के मनोविज्ञान, काम-वृत्ति या वासना को लेकर अनेकानेक विचार डॉ. नगेंद्र ने उपस्थित किए। 'देव और उनकी कविति' में उन्हो 'ने वासना के चतुर्दिक मनोविकार की उपस्थित को भी स्वीकार किया है। वासना को संकृत गन्ध में भी मानसिक विकार पैदा करने वाला बताया गया है। इसके लिए किसी मनोविज्ञानिक के पास जाने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन मनोविज्ञान से ऐसे तत्वों की पहचान करना आसान हो जाता है। इसी विकार को उन्होंने शृंगार और रति के रूप में परिभाषित किया है। यह मानव के मिलन की इच्छा ही से जनित है।

“मनोविज्ञान के अनुसार ‘भाव’ किसी वासना (सहज

वृत्ति) के चारों ओर केन्द्रित मनोविकार है। जीवन की एक प्रमुख वासना है—काम मिलनेच्छा।

काम आश्रित मनोविकार ही शृंगार या रति है।”⁴

विरही को अपने प्रिय से दैहिक सम्बंध की इच्छा एक स्वाभाविक इच्छा है, और यह आमतौर से विकृत नहीं होती। वैसे, मिलन की इच्छा अच्छी भावना में भी हो सकती है और विकृत भावना के साथ भी। देह आकर्षण या फिर बलात्कार जनित कामवृत्ति निकृष्टम, होती। इस सम्बंध में भी डॉ. नगेंद्र ने कहा है—

“प्रत्येक विरही को अपने प्रिय से मिलन की अभिलाषा है। वास्तव में यह सबसे प्रधान भावना भी है और अन्य काम दशाओं का जन्म इसी से होता है, अतः इसका स्थान प्रथम है।”⁵ कला का उद्भव स्थल क्या है? इस प्रश्न का उत्तर डॉ. नगेंद्र ने तलाशा और बताया कि यह मानव के अवचेतन मन में जन्म लेता है। इस अवस्था में मानव के अंतर्मन में दमित वासना व्याप्त रहती है। इस अवस्था में मानव कुठित और काम के उद्वेग की अवस्था में रहता है जो कभी भी प्रस्फुटित हो सकता है, जिसका स्वरूप आमतौर से विकृत होता होता है। इस विषय पर, डॉ. नगेंद्र के विचार को डॉ. रवीन्द्र सहाय वर्मा ने स्पष्ट किया है—

“डॉ. नगेंद्र कला का उद्गम अवचेतन ही मानते हैं, जिसमें असामाजिक दमित और अतृप्त काम कटाओ का कामपुन्य वर्तमान में रहता है।”⁶

साहित्य के सौंदर्य को लेकर भी साहित्य में तब बहुत विवाद था। डॉ. नगेंद्र ने साहित्य का सौन्दर्य को व्यष्टिनिष्ठ बताया जबकि मार्क्स वादी सिद्धांत में साहित्य का सौन्दर्य समष्टिगत माना जाता है। डॉ. नगेंद्र के अनुसार अगर सौंदर्य का संचरण व्यष्टिनिष्ठ है तो जीवन दर्शन पर भौतिकता हावी नहीं होगी और जीवन में जो दर्शन आएगा वह आध्यात्मिकता के साथ होगा।

यह सत्य है कि डॉ. नगेंद्र ने फ्रायड के कामवृत्ति का परिमार्जन किया, लेकिन काम को ही आधार मान कर आलोचना का समर्थन वे नहीं कर सकते थे। कामवृत्ति आनंद का एक अंग हो सकता है, लेकिन सर्वांग नहीं हो सकता, इसीलिए इनकी दृष्टि रस सौन्दर्य और आनन्द को महत्व देती रही है। वे सौन्दर्य को व्यष्टिनिष्ठ मानने के पक्षपाती थे। इसलिए उन्होंने मार्क्सवाद की उस दृष्टि को अस्वीकारा, जिसके अनुसार सौन्दर्य समष्टिगत रूप में संचारित होता है। उन्होंने अस्तित्ववादी जीवन दर्शन के रूपवादी समीक्षा को भी स्वीकार किया।”

हिंदी आलोचना के नाभि पुरुष : डॉ. नगेंद्र, नीरज बुक

सेंटर, नई दिल्ली-92, पृष्ठ-.....

डॉ. नगेंद्र ने कला के उद्भव स्थल को प्रस्तुत: मानव के अवचेतन मन अवस्थित पाया है। इस अवस्था में मानव के अंतर्मन में दमित वासना प्राप्त रहती है। इस अवस्था में मनांव कुंठित और काम के उद्वेग की अवस्था में रहता है जो कभी भी प्रस्फुटित हो सकता है, जिसका स्वरूप आमतौर से विकृत होता है। इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि डॉ. नगेंद्र ने रस के हर पक्ष को देखने, समझने और विवेचित करने का सफल प्रयास किया है।

इस प्रकार यह कहना युक्ति संगत है कि डॉ. नगेंद्र ने रस चिंतन में अपने आप को तीस वर्षों तक लिप्त रखा और युगानु रूप रस-सिद्धांत की स्थापना कर हिंदी साहित्य के लिए महत्वपूर्ण योगदान किया।

संदर्भ—

1. डॉ. नगेंद्र रस-सिद्धांत, प्रकाशक-नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1964, दिल्ली, पृष्ठ-3 /
2. सं. डॉ. रणवीर रांग्रा, डॉ. नगेंद्र : परम्परा और परिणति, स्पृति ग्रन्थ, पृष्ठ-169 /
3. डॉ. नगेंद्र रस सिद्धांत, 1964 नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, पृष्ठ-3-4
4. डॉ. नगेंद्र, देव और उनकी कविता, पृष्ठ-81-82
5. डॉ. नगेंद्र साकेत : एक अध्ययन, पृष्ठ-47

डॉ. गौतम कुमार गुप्ता

सहायाक हिन्दी शिक्षक उत्कर्मित उच्च
विद्यालय, नयनपुर, तीसरी गिरिडीह ।

गौतम कुमार गुप्ता,

S/O जवाहर प्रसाद गुप्ता

,ग्राम. पोस्ट चट्टी बरियातू, थाना- करेडारी, जिला-
हजारीबाग, (झारखंड) पिन नंबर 82 5321. मोबाइल नंबर

Mob. 9546277040

प्रस्तावना :

“सन्त विचार—परम्परा का गढ़वाल से विशेष संबंध है। सन मत मूलतः निवृत्ति मार्ग है। उसके सर्वप्रथम आचार्य सनत्कुमार थे। छांदोग्य के अनुसार इस सतमत अथवा अध्यात्म—विद्या को सनत्कुमार से नारद ने सीखा। इन्हीं नारद की प्रचार की हुई भक्ति में कबीर आदि संतों ने भी डुबकी लगायी।”¹

सनत्कुमार ने नारद की वृत्ति को धीरे—धीरे अन्तर्मुख किया। वेद, अन्न, स्मृति, आशा प्राण, सत्य, मति, श्रद्धा भूमा आदि के मार्ग से ले जाते हुए वे नारद को वास्वविक आत्मानुभूति की अवस्था तक पहुँचा देते हैं। महाभारत के नारदोपाख्यान के अनुसार नारद की आध्यात्म मार्ग को सीखने के लिए ऐकांतिकों के पास श्वेतद्वीप गये थे। श्वेतद्वीप सुमेरु से उत्तर दिशा में क्षीरसागर के उत्तर तट पर एक द्वीप था।

बीज शब्द: गढ़वाल, संत, सत्यनाथ, देवलगढ़ आदि।

“थियासफी के योगविदो के अनुसार यह स्थान चीन के गोबी नामक विस्तीर्ण मरु में — जहां पहले क्षीरसागर रहा होगा, अब भी विद्यमान है और इस सृष्टिकाल के सबसे बड़े आचार्य सनत्कुमार अब भी वहां रहते हैं। पण्डित नरदेव शास्त्री तो हिमगिरि को ही श्वेतद्वीप मानते हैं और गढ़वाल को सनत्कुमार का स्थान। महाभारत के अनुसार जिन लोगों से अध्यात्म दृष्टि विद्या सीखने के लिए नारद श्वेतद्वीप गए थे वे ‘नारायण पर’”² और इसमें सदेह नहीं कि समेरु के निकट नारायणीय धर्म के संबंध रखने वाला सबसे प्रसिद्ध स्थान बदरिकाश्रम है जिसका महाभारत काल में भी आजकल ही के समान अत्यन्त आदर था।

बदरीनाथ बदरीनारायण हैं। बदरिकाश्रम नारायणाश्रम है और नारायण के अवतार व्यासजी का भी मूल आश्रय वही है। वहीं उन्होंने अध्यात्मविद्या के आधार ग्रंथ ब्रह्मसूत्र का प्रणयन किया था।

वस्तुतः उत्तराखण्ड का यह प्रदेश सच्ची तपोभूमि है। प्राचीन काल में तपस्या के द्वारा यहीं बड़े—बड़े तपस्वियों को ज्ञान प्राप्त हुआ। अष्टावक्र ऋषि यहीं विदेहावस्था को प्राप्त हुए। व्यासाश्रम (व्यासगुफा), वसिष्ठाश्रम (हिंदाव) परशुरामाश्रम, बालखिल्याश्रम इस बात का प्रचुर साक्ष्य देते हैं कि यह प्राचीन ऋषियों की तपोभूमि है।

‘मध्य—युग के सबसे बड़े महात्मा गोरखनाथ ने भी यहीं अपनी सिद्धि प्राप्त की। शरखालीश (शरीर—रक्षा के) मंत्रों से पता चलता है कि उन्होंने अपनी घोर तपस्या श्मशाना उद्यारीश (धवल गुहा) नामक गुफा में की थी।³

यह स्थान दक्षिण गढ़वाल में अत्यन्त निर्जन और बीहड़ स्थान में है। यहीं वीर राजा काली हरपाल को उसकी माता ने बाल्यावस्था में बड़ी कठिनाइयों का सामना करते हुए पाला था। इस स्थान का इस प्रकार गढ़वाल के इतिहास में ही नहीं संतों के इतिहास में भी बड़ा महत्व है। स्वयं गोरखनाथ ने तप के क्षेत्र में उत्तराखण्ड का बड़ा महत्व माना है।

“दक्षिणी जोगी रंगा चंगा, पुरबी जोगी वादी।

पछिमी जोगी बाला भोला, सिंध जोगी उतराधी।”⁴

(सबदी)

गढ़वाल के मंत्र—साहित्य में गुरु गोरखनाथ का बड़ा प्राधान्य रहा है। जान पड़ता है कि किसी समय में नाथों का भी यहाँ बड़ा प्राधान्य था। अभी भी गढ़वाल में गोरखपंथी नाथ बहुत हैं। ओले, अति वर्षण आदि इंतियों के निवारण के लिए जिन डलियों को शडडवारश (वार्षिक वृत्ति) प्रत्येक गढ़वाली घर से मिलता है, वे नाथ ही हैं। दक्षिण गढ़वाल में बहुत नाथ रहते हैं। श्रीनगर में भी नाथों को एक अलग मुहल्ला है। गढ़वाल में बहुत नाथ रहते हैं। गढ़वाल में गोरखपंथियों का सबसे बड़ा स्थान देवलगढ़ के सत्यनाथ का मंदिर है। मूलतः देवलगढ़ देवी का पवित्र स्थान है। त्रिगर्त (काँगड़ा) के देवल नाम के एक प्राचीन राजा ने इस स्थान पर गौरा देवी का मंदिर स्थापित किया था ऐसा परंपरागत प्रवाद है। देवल राजा ही के नाम से इस स्थान का नाम देवलगढ़ पड़ा है। देवी का यह मंदिर अब तक देवलगढ़ में विद्यमान है और गौरजाश देवी के मंदिर के नाम से प्रख्यात है। गढ़वाल के पंवार राज्यवंश का स्थापित किया हुआ राज राजेश्वरी का मंदिर भी यहीं है, परन्तु संतमत की दृष्टि से सत्यनाथ का मंदिर बड़ा महत्वपूर्ण है। इसके पीछे एक ऐतिहासिक परंपरा है जो एक बड़े ऐतिहासिक तथ्य की ओर संकेत करती है। कहा जाता है कि राजा अजयपाल को भैरवनाथ ने सत्यनाथ योगी के रूप में यही दर्शन दिये और उन्हें कंधे पर चढ़ा कर अपना आकार बढ़ते हुए कहा कि जहा तक तुम्हारी दृष्टि जाती है, वहा तक तुम्हारा राज्य फैल जाएगा। सत्यनाथ ने अपना आकार इतना बढ़ाया कि महाराजा अजयपाल डर गया और उसने सत्यनाथ से प्रार्थना की कि अब अपना आकार न बढ़ाए। राजा की दृष्टि हिमालय से लेकर शिवालिक (सपाद लक्ष) पर्वत श्रेणी तक पहुँची और वहाँ तक उसका राज्य फैल गया।

किसी समय उत्तर भारत में नाथों का खूब बोलबाला रहा है। वे केवल

निरीह साधु ही नहीं रहे हैं "नवीन राज्यों की स्थापना करने वाले और राज्य-शक्ति का परिचालन करने वाले भी रहे हैं। इसमें तो संदेह नहीं कि गोरखा राजा का नाम गोरखनाथ के नाम से पड़ा है। गोरखा राजा अपने आपको केवल दीवान मानते हैं, गद्दी का वास्वविक स्वामी तो गोरखनाथ माना जाता है। जान पड़ता है कि शिशोदियों की जो शाखा १४ वीं शताब्दी के लगभग गोरख और पीछे नेपाल राज्य में अधिष्ठित हुई। उसको वहां लाने के कारण गोरखनाथी ही थे।" 5

जोधपुर में १७ वीं १८ शताब्दी के नाथ लोगों के ही हाथ में प्रायः सारे राज्य की बागडोर रही है। गढ़वाल में पँवार वंश को गहरी नींव देने में भी जान पड़ता है कि नाथों का कुछ साहाय्य रहा है, यह ऊपर के परंपरागत जनवाद से स्पष्ट है और कई प्रकार से इसकी पुष्टि होती है। गढ़वाल के गाँव-गाँव में सिद्धों के स्थानों का होना इस बात का सूचक है कि गोरक्ष आदि सिद्धों को यहाँ बड़ा मान था। सिद्धों ने गढ़वाल में ग्राम-देवताओं का स्थान ग्रहण कर लिया है और भैरव तथा देवी के साथ-साथ उनकी भी पूजा होती है। बल्कि भैरव और देवी की तो कभी-कभी याद आती है, सिद्धि का स्मरण पद-पद पर किया जाता है। गढ़वाल के मंत्र-साहित्य में गोरखनाथ, सत्यनाथ, मछिंद्रनाथ, गरीबनाथ, कबीरनाथ, आदि सिद्धों की आर्पण पड़ती हैं।

देवलगढ़ में सत्यनाथ के मन्दिर की स्थापना संवत् १६८३ में आषाढ़ १८ गते को हुई। उससे पहले वह केवल गुफा मात्र रही होगी। मन्दिर रूप में बन जाने पर पहले पीर हंसनाथ जी थे जिनका नाम मंदिर में संवत् के साथ लिखा हुआ है। किसी प्रभावशाली व्यक्ति प्रभातनाथ ने सम्भवतः उसी समय एक बड़ा भारी भंडारा भी किया था। इसका भी उल्लेख शिलालेख में है। यह भी सम्भव है कि मन्दिर की स्थापना हंसनाथजी ने बहुत प्राचीन काल में की हो और प्रभातनाथजी ने संवत् १६८३ में मन्दिर की केवल मरम्मत और भंडारा किया हो। स्वर्गीय वजीर पं० हरीकृष्णजी रतूड़ी का मत है कि राजा अजयपाल ने राज-राजेश्वरी और सत्यनाथ दोनों मन्दिरों की स्थापना संवत् १५१२ के लगभग की जब राजधानी चाँदपुर से हटा कर देवलगढ़ में स्थापित हुई।

यह अजयपाल राजा वही हैं जिन्होंने गढ़वाल में बहुत कुछ शांति स्थापित की। इनके समय का चला हुआ देवलिया पाथा (पात्र भर कर अन्न नापने का एक परिणाम द्यूल्या पाथो देवलीय प्रस्थ) अब तक गढ़वाल में प्रचलित है। इसके प्रचार संबंधी शिलालेख भी अब तक देवलगढ़ में विद्यमान हैं।

जान पड़ता है कि नाथों का जो मान अजयपाल ने

किया उसके कारण स्वयं वे भी महात्मों को श्रेणी में आ गये हैं। नाथों या सिद्धों में केवल, अजयपाल भरथरी और गोपीचन्द ही ऐसे हैं जिनके नाम से आगे नाथ या पाव (पादश- श्पाश भी यही है) नहीं आये हैं। इससे पता चलता है कि गोपीचन्द और भरथरी के समान सिद्ध अजयपाल भी राजा था।

कबीर का संत-मत से घनिष्ठ संबंध है। वह भी गढ़वाल में सिद्ध माना जाता है। कहीं-कहीं पर उसको कबीरनाथ भी कहा है। गढ़वाल में कबीर के मत का भी प्रचार हुआ था। गढ़वाल के डोम जो निंकार (निराकार) को पूजा चढ़ाया करते हैं, वस्तुतः कबीर के ही अनुयायी हैं। निंकार की पूजा में कबीर की श्जागर लगती है। यद्यपि कबीर अहिंसावादी थे फिर भी डोम निंकार की पूजा में बड़ी निर्दयता से सुअरों का बलिदान करते हैं। किन्तु इस बलिदान को भी उन्होंने विलक्षण रूप से कबीर के साथ जोड़ दिया है।

जागर के अनुसार कबीर ने निंकार को एक टोकरी अन्न और दो नारियल अग्याल (मनौती की अग्रिम भेंट) के रूप में चढ़ाये थे। कबीर जब कहीं बाहर गये हुए थे तब निंकार स्वयं एक लंगड़े मँगता के वेश में कबीर के घर आया और उसकी स्त्री से भीख माँगने लगा। कबीर की स्त्री ने कहा कि घर में निंकार की अग्याल के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। मँगता ने उसी में से अपने छोटे खप्पर को भर कर भीख मिल जाने का आग्रह किया। कबीर की स्त्री यह आग्रह न टाल सकी। किंतु नँगता का खप्पर तब जाकर भरा जब सारी अग्याल उसमें डाल दी गई।

कबीर की स्त्री अपने किये पर पछताती हुई खाली पात्र रखने के लिए भीतर गयी तो उसने सारा कमरा अन्न से भरा हुआ पाया। अब उसे सूझा कि हो न हो यह भिखमंगा स्वयं निंकार ही था। परन्तु इससे पहले कि वह बाहर निकल कर उसके चरणों पर पड़े और अनुनय-विनय करे वह लंगड़ाता हुआ भाग खड़ा हुआ। भागने में उसके खप्पर में से दोनों नारियल एक मैले स्थान पर गिर गये और सुअर के रूप में परिवर्तित हो गये। तब से निंकार के लिए सुअरों की बलि दी जाती है। एक प्रकार से सुअर सुअर नहीं, नारियल हैं और उनको चढ़ाने से अहिंसा का विरोध नहीं होता।

मैं तो समझता हूँ कि मुसलमान कुल में पैदा हुए गुरु के चेलों को जब लोग मुसलमान ही गिनने लगे तब उनमें से कुछ को अपना मुसलमान न होना सिद्ध करने के लिए शूकर-वध का यह उपाय काम में लाना पड़ा।

गुरु-महिमा नामक एक कबीर-पंथी ग्रंथ में तो कबीर का गढ़वाल में आना भी कहा गया है। इस ग्रन्थ के अनुसार उस

समय श्रीनगर (गढ़वाल) में राय मोहन नाम का राजा राज्य करता था।

राजा मोहन अपनी रानी के साथ बदरीनाथ की यात्रा पर जा रहा था। कबीर भी गुप्त रूप से उनके साथ हो लिया। बदरीनाथ में श्रमतिमा पदश को कबीर ने सोने में बदल दिया। जब राजा को पता लगा कि यह कबीर के चमत्कार का फल है तो वह पुत्र-कलत्र और प्रजा सहित उनका अनुयायी हो गया। यह ग्रंथ विक्रम की अठारहवीं शताब्दी के मध्य का लिखा जान पड़ता है। इससे पहले ही गढ़वाल में कबीर-मत के प्रचार का प्रयत्न हुआ होगा। जिसको नगण्य सफलता मिली। राजा के कबीर का अनुयायी होने की बात पंथ का महत्त्व बढ़ाने के लिए गढ़ी गयी है, तथ्य नहीं है। लेखक ने यह कथा सत्ययुग की बतायी है।

यह कहा जा चुका है कि व्यासजी ने ब्रह्मसूत्र की रचना बदरिकाश्रम में ही की थी। हिन्दी का भी थोड़ा-सा आध्यात्मिक साहित्य गढ़वाल में लिखा हुआ मिलता है।

मोलाराम का नाम चित्रकारी के लिए प्रसिद्ध है। उसने चित्रकारी के साथ-साथ कविता भी की थी।

मोलाराम ने नाना विषयों पर लिखा है। मोलाराम ने जो कुछ लिखा है उसका काव्य की दृष्टि से विशेष महत्त्व नहीं परन्तु अन्य दृष्टियों से उसका बहुत महत्त्व है। गढ़वाल के तत्कालीन इतिहास पर उनकी कविताओं से अच्छी तरह प्रकाश पड़ता है। थोड़ा बहुत अध्यात्म विद्या पर भी उन्होंने लिखा है। साधना पंथ के मनोविज्ञान की दृष्टि से इन कविताओं का बड़ा महत्त्व है।

कुछ मनस्तत्ववेत्ताओं का मत है कि मनुष्य के सब भावों का मूल्य प्रेरक श्रृंगार ही है। यही एक भाव नाना रूप धारण कर मनुष्य के विविध क्रिया-कलापों में प्रकट होता है। जान पड़ता है कि मोलाराम के विषय में गढ़वाल में भी एक साधना-पंथ ऐसा था जिसके आचार्यों को इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का ज्ञान था और उसी पर उन्होंने इस पंथ की नींव डाली थी। इस पंथ का नाम मोलाराम के अनुसार मनमथ-पंथ था। यह पंथ शक्ति का उपासक था। इस पंथ के अनुसार आदि शक्ति ही सर्वोपरि और सृष्टि का मूल है। अकल रूप में वह सदाशिव है, निर्गुण है। सकल या सगुण रूप धारण कर वही सृष्टि रचती है।

“आदि शक्ति रचना जब रची या विश्व माहिं

मन मथि कै ध्यान धर्यो मनमथ हुलासा है।

मनमथ, सौं इच्छा भई भोग और विलास हूँ की

ताके हेत ब्रह्मा हरि रुद्र कौं प्रकासा है।”6

एक से दो होने का कारण यही श्रृंगार-भावना है, उसी से सारी

भौतिक सृष्टि की रचना भी हुई है:

“शक्ति सौं मनमथ भयौ, मनमथ सौं मिथुन,

मिथुन मथन करि रचना रचाई है।”7

संसार में जितने क्रियाकलाप हैं, वह इसी मूल मनरु शक्ति का प्रवृत्ति के नानाविध मंथन से ही उत्पन्न हुए हैं :

“आदि शक्ति मन मथ्यो किये ब्रह्मा और हरिहर।

भई सावित्री आफ लक्ष्मी गिरजा वपुधर।

मिथुन सौं जग रची सकल ही सृष्टि बनाई।

तदिन की मरजाद आजलौं चलि आई है।”8

इस प्रकार मोलाराम के अनुसार आध्यात्मिक साधना धर्मनीति, समाजनीति, राजनीति, साहित्य, संगीत, कला, वाणिज्य-व्यवसाय सब क्षेत्रों में एक ही मूल प्रवृत्ति नाना रूपों में काम करती है। मनमथ, कामदेव आदि शब्दों के व्यवहार से यह नहीं समझना चाहिए कि जिस पंथ का वर्णन मोलाराम ने किया है, वह व्यभिचार फैलाने वाला पंथ है। मोलाराम ने स्पष्ट शब्दों में कुमार का त्याग दया दाक्षिण्य मुक्त गृहस्थ धर्म को पालना, मन को साधना और अंतर्मुख जीवन बिताना आवश्यक बतलाया है:

“है तुहू अन्दर बैठ निरंतर लेख्यो लिलाट कही नहीं जावें।

छाड़ि कुमारग मारग मैं रहौ, धृस्य कौं मूल दया हितरावै।।

साधन तें मन साधले आपनों मोलाराम महा सुष पावै।

है तुहू अन्दर दुइत मन्दर क्यों जग बन्दर सौं भरमावै।”9

वस्तुतः इस पंथ ने मनुष्य की वास्तविक प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया है और अपनी साधना को दृढ़ आधारशिला पर रखा है, जिससे साधक धोखे में न पड़े। जैसा श्यतः प्रवृत्ति प्रसृता पुराणीय से पता चलता है। गीता भी मानती है कि फैलाव जितना है प्रवृत्ति का है। इसलिए वही पंथ जो इस प्रवृत्ति को ध्यान में रख कर चलता है, वस्तुतः लाभदायक हो सकता है। अतएव मोलाराम ने जीव से सीव (शिव-ब्रह्मा) होने को एक मात्र उपाय बताया है। इन मनःशक्ति को उपयुक्त रूप में मंथन कर उसे नाना दिशाओं में दौड़ने से रोक कर एक ही स्थान में लाना यही सारी साधना का सार है, इसी का दूसरा नाम निवृत्ति तथा योग है।

“मनमथ पंथी होय अपनो मन समझावों।

ठौर-ठौर सौं मेट एक ही ठौर में लावौं।”10

मन के साथ – साथ जोब-जबर से काम नहीं चलता। उसे बलात

एक स्थान पर सिमटाना असम्भव है। इसीलिए मन को समझाने का उपदेश है।

जितने योग के साधन हैं, सबका उद्देश्य मन को समझा-बुझा कर एक ठिकाने पर लाना है। जप, तप, षट्चक्र-वेध नादानुसंधान, ज्योति दर्शन सबका मनमथ पंथ में मोलाराम के अनुसार उचित स्थान है। यहाँ पर इतना स्थान नहीं है कि मोलाराम के इस संबंध के पूरे उद्धरण दें। परन्तु इतना तो सपष्ट हो गया है कि मोलाराम का यह मनमथ पंथ मनस्तत्त्व और दर्शन के उच्च सिद्धांतों पर टिका हुआ एक शुद्ध साधना मार्ग है। इसमें प्राचीन परम्परा से आती हुई उन बातों का मोलाराम ने सिद्धांत रूप से सम्वत् १८५० के लगभग उल्लेख किया था जिनको मनस्तत्त्व के क्षेत्र में बड़े-बड़े विद्वान् समझ रहे हैं कि हम ही पहले पहल आविष्कार कर रहे हैं। इन्हीं बातों के कारण मोलाराम के अनुसार यह पंथ अमृत का सार है। जो उसे जानते हैं उन्हें ब्रह्मानन्द लाभ होता है।

“मनमथ को पंथ ऐसो, इमृत को सार जैसो।

जानत हैं सोई संत ब्रह्म को बिलासा है।।”¹¹

ये बड़ी पहुँच के ज्ञानी थे। जीवन मुक्त होकर इसी शरीर से वे उस ब्रह्म पर को प्राप्त हो गये थे, जहाँ ब्रह्म की सृष्टि और विष्णु के अवतारों की पहुँच नहीं।

“ब्रह्मा न रचे जहां विष्णु को नहि अवतार।

ऐसो सहर में सदा करै सब बसि बजार।।”¹² (दोहावली)

इस पद तक पहुँचने का उन्होंने जो मार्ग बतलाया है उसमें भी मन की शक्तियों का भली-भाँति ध्यान रखा गया है। उन्होंने कहा है कि ब्रह्म-लीन होने के लिए ब्रह्म-बोध होना आवश्यक है और ब्रह्म-बोध तब तक नहीं हो सकता जब मन को बोध विषय की प्रतीति नहीं होती।

उपसंहार:

गढ़वाल में संत-साहित्य का मिलना कोई आश्चर्य की बात नहीं। तितिक्षा और वैराग्य का पाठ पढ़ने युग-युगान्तर से साधक लोग इस तपोभूमि में आते रहे हैं। ब्रह्म विद्या का तो इसे घर होना चाहिए। मैंने जो कुछ यहां लिखा है वह तो लेशमात्र है जो मुझे आसानी से प्राप्त हो गया। गढ़वाल ही नहीं समस्त पर्वतीय देशों में अध्यात्म विद्या के ही नहीं किसी प्रकार के साहित्य का भी अभी तक अच्छी तरह से अन्वेषण नहीं हुआ है। उन्मेषशील युवक समाज से आशा की जाती है कि वह उत्साहपूर्वक इस काम

को अपने हाथ में लेगा। हमारे वयोवृद्ध उन्हें साहित्य के कल्याण-मार्ग पर सत्प्रेरणा दें और श्रीमंत उनकी कठिन साधना से प्राप्त सामग्री को प्रकाश में लाने के साधन सुलभ करें जिससे एक परिश्रम का साफल्य उत्तरोत्तर और परिश्रमों तथा प्रयत्नों की प्रेरणा करता रहे।

सन्दर्भ सूची:

1. भक्ति नारदी मगन सरीरा। इहि विधि भवतरि कहै कबीरा। (कबीर ग्रन्थावली), पृष्ठ – १६८३२४
2. क्षीरोदधेरुत्तरतः श्वेतद्वीपो महाप्रभः । तत्र नारायण परा मानवाश्चंदवर्चसः ।।
3. उत्तर दिसा मां घौली भागीरथी का स्नान छ हे बैणी, हे माता, बदरी केदार की यात्रा छ.. हे माता धउला उद्यारी गुरु गोरखनाथ को बासो छ है बैणी।दूरखाली
4. गुरु गोरखनाथ की वाणी, सबदी, पृष्ठ रु५०
5. गौरजा शब्द में गौराश और गिरिजाश का प्रमादजन्य मिश्रण है। इसका प्रयोग पर्वतीय क्षेत्रों में पार्वती के लिए किया जाता है।
6. मोलाराम द्वारा रचित, मनमथ पंथ, पृष्ठ रु ८७
7. वही, पृष्ठ – २८३
8. वही, पृष्ठ – ६४५
9. वही, पृष्ठ – ४५४४६
10. वही, पृष्ठ – ६७
11. वही, पृष्ठ – ६७२
12. दोहावली, संवत् १८८२, स्वामी शशिधर

प्रोफेसर पुष्पा रानी

हिन्दी – विभाग

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

मो. नं: 9896206889

सारांश

डॉ० नगेंद्र ने अपना लेखकीय जीवन एक प्रकार छायावादी कवि के रूप में प्रारंभ किया और वे अन्य कवियों के छायावादी कविताओं से प्रभावित रहे। ऐसे में उन्होंने कविता के रस का भरपूर आस्वादन किया। उनका अनुभव उनकी मन-आत्मा को प्रभावित कर गया। उन्होंने 'रस' और काव्यानन्द के संबंध में नतून अन्वेषण की दृष्टि से दुनियाभर की अनेक भाषाओं में लिखित काव्यशास्त्रों का तीस वर्षों तक गहन अध्ययन किया। आधुनिक हिंदी साहित्य और आधुनिक समाज के लिए कए समेकित और सहज रह सिद्धांत की स्थापना करने के लिए वे कृतसंकल्प हुए और रस-सिद्धांत को नूतन भारत के लिए सृजित किया। इसी क्रम में उनकी कृति 'रस-सिद्धांत' उनकी लम्बी साहित्य साधना की एक प्रमुख और बड़ी उपलब्धि है। 'रस-सिद्धांत' के सम्बन्ध में डॉ० नगेंद्र ने लिखा है—

“अनेक कारणों से मैं इसे अपनी साहित्य साधना की परिणति मानता हूँ। पिछले तीस वर्षों में काव्य के मनन और चिंतन से मेरे मन में जो अन्तः संस्कार बनते रहे हैं उनकी संहति रस-सिद्धांत में ही हो सकती है। मूलतः साधुकाव्य-निशेवण के द्वारा ही की है-शास्त्र के अनुचितन से तो उसका पोषण मात्र हुआ है।”¹

डॉ. नगेंद्र ने इस पुस्तक के माध्यम से 'रस-ज्ञान' की नूतन स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया और आलोचना की एक नई प्रणाली दी। उन्होंने देश-काल को ध्यान में रखते हुए अपने द्वारा उपस्थित रस-सिद्धांत को आधुनिक स्वरूप दिया। उसे सहज ग्राह्य बनाया। इसे तात्त्विक सत्य-तर्क के साथ उपस्थित किया ताकि कहीं कोई द्विविधा न रह जाए। उनकी कष्ट साधना इस पुस्तक के प्रकाशन के साथ ही पूर्ण हो गयी। इस पुस्तक के सम्बंध में सन्दर्भ में डॉ. अरुणा राजेन्द्र शुक्ल ने लिखा है—

“डॉ. नगेंद्र ने साहित्य के सम्बन्ध में उनकी धारणाओं का पूल आधार अग्रणी साहित्य के कवियों और आलोचकों की मान्यताओं से प्रेरित है...

..संस्कृत के आचार्यों भट्टनायक और अभिनव गुप्त से वे विशेष रूप से प्रभावित हुए। हिंदी में नगेंद्र जी को सर्वाधिक प्रभावित करने वाले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हैं।”²

डॉ. नगेंद्र हिंदी साहित्य में आने के पूर्व अंग्रेजी साहित्य से गहराई से परिचित थे। फिर जब उन्होंने हिंदी साहित्य की ओर देखा तो उन्होंने संस्कृत और हिंदी के एक हजार वर्ष के साहित्य का गहन अध्ययन किया साथ ही उन्होंने देखा कि देश की अन्य भाषाओं के

साहित्य को भी पढ़ना आवश्यक है ताकि उनका रस सिद्धांत भारत की सभी भाषाओं में भी स्वीकृति पाए। इस अध्ययन के बाद उन्होंने व्यापक स्तर पर रस सम्बंधी विवेचन किया। गहराई से परिचित होने का प्रयास शुरू कर दिया। इस कार्य में उन्हें तीस वर्ष लगे। डॉ. नगेंद्र ने अपनी इस साधना के संबंध में लिखा है—

“आरम्भ में ही आचार्य शुक्ल के प्रभाववश मेरे मन में भारतीय रस सिद्धांत के प्रति गहरी आस्था हो गयी। शुक्ल जी का मेरे मन पर विचित्र आतंक और प्रभाव रहा। मेरे अपने संस्कार शुक्ल जी के मेरा साहित्यक संस्कार छायावादी युग में हुआ था। शुक्ल जी सुधार युग की विभूति थे। उनके निष्कर्षों को मानने के लिए मैं बिलकुल तैयार नहीं था, परन्तु उनके प्रौढ़, तर्क और अनिवार्य शैली मेरे ऊपर बुरी तरह हावी हो जाते थे और मैं यह मानने को विवश हो जाता था कि इस व्यक्ति की काव्य दृष्टि चाहे संकुचित हो, लेकिन फिर भी अपनी सीमा में यह महारथी अजेय है।”³

डॉ. नगेंद्र ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी का रस सिद्धांत पढ़ा तो उनको लगा कि रस-सिद्धांत की ऐसी विवेचना कोई और कर ही नहीं सकता है। वे आचार्य शुक्ल से बहुत प्रभावित हुए। डॉ. नगेंद्र जिससे प्रभावित होते थे उनको अपना गुरु मान कर उनके ज्ञान का गुरु-शिष्य परम्परा में विकास करने का मन बना लेते थे। और, आचार्य शुक्ल की परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने अपनी अध्ययन-साधना में तत्पर हो गए। उन्होंने रस-सिद्धांत के सम्बंध में अपने ज्ञान के वर्धन के लिए देशी-विदेशी साहित्य-सागर का गभीर मंथन किया और तत्पश्चात् स्वयं एक आधुनिक, वैज्ञानिक और सरलीकृत रस-सिद्धांत का परिमार्जन कर सकता हैं तब उन्होंने लिखा—“जो मुझे प्रभावित करते हैं, जिनकी गरिमा मेरे मन को आंदोलित करती है, उनसे फिर मौजूझने लगता हूँ। अत्युत गहन अध्ययन, चिंतन और विष्लेषण तो पहला कदम है। विचारों की युक्ति-युक्ति खंडन, असंगतियों (अथवा मुझे प्रतीत होने वाली असंगतियों) में संगति स्थापना उनकी सीमाओं का विस्तार और समग्रता उनकी परम्पराओं का विकास करने की स्पृहा मेरे मन में बराबर बनी रहती है। इस प्रकार मैं अनेक महान प्रतिभाओं की बड़ी शक्ति के साथ अपनी छोटी शक्ति से तौलता रहता हूँ। जिस व्यक्ति परीक्षा भी मैंने सबसे की है। आचार्य शुक्ल इसके प्रमाण हैं।”⁴

इस प्रकार डॉ. नगेंद्र ने गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वाह करते हुए 'रस-सिद्धांत' की स्थापना की। इस क्रम में उन्होंने आचार्य शुक्ल की स्थापना करने से विवेचन किया और पाया कि वे इसका परिमार्जन कर सकते हैं और इसे पूर्णता प्रदान कर सकते हैं। उन्होंने

आचार्य 4 शुक्ल की स्थापना की युक्ति—खण्डन के लिए गहन शोध का मार्ग अपनाया ताकि वे सर्वमान्य एक नूतन और सर्वमान्य रस—सिद्धांत का प्रतिपादन कर सकें। फिर शोध के उपरांत डॉ. नगेंद्र का ने जो रस सिद्धांत स्थापित किया वह सर्वांग व्याख्यायित है। तर्कपूर्ण है। सरल है।

आचार्य शुक्ल और डॉ. नगेंद्र के कार्यों की विवेचना पर डॉ. मनोहर काले ने खिला है— “हिंदी में सर्वप्रथम रामचंद्र शुक्ल ने इस दिशा में अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किया था। परन्तु परिस्थितियों युग सीमाओं और साधनों के आभाव में उनका अध्ययन काव्य के शास्त्र के क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक व्यापक और सर्वांगपूर्ण नहीं हो सका था। फिर भी रस और समालोचना के क्षेत्र में उनके मौलिक चिंतन से हिंदी काव्य शास्त्र गौरवान्वित हो गया है। शुक्ल जी के उपरान्त डॉ. नगेंद्र के अत्यंत संतुलि और वैज्ञानिक पद्धतों की व्यापक धरातल पर मीमांसा आकर के उनके पुनराख्यान और पुनर्मूल्यांकन का प्रयत्न किया है।”⁵

यह ध्यान देने की बात है कि आचार्य शुक्ल ने साधनों के अभाव के बावजूद जो रस—सिद्धांत उपस्थित किया, वह बहुत गम्भीरता के साथ किया और उपलब्ध सामग्री का उन्होंने विद्वतापूर्ण प्रयोग किया। लेकिन वे उसे विस्तार में व्याख्यायित नहीं कर पाए और साथ ही उसमें पूर्णता का अभाव रहा। अतः डॉ. नगेंद्र का लक्ष्य था एक ऐसा रस—सिद्धांत के निरूपण का जो सम्पूर्ण हो, भाषाओं के रस—सिद्धांत के निचोड़ से निर्मित हो, साथ ही, आधुनिक भी हो।

आचार्य शुक्ल के कार्य को आधार बना कर डॉ. नगेंद्र ने उसके सिद्धांत को देश और काल के अनुरूप किया, समुचित साधनों का प्रयोग कर उसे अपेक्षित रूप से विस्तार दिया और उसे पूर्णता भी प्रदान की। उन्होंने भारतीय काव्य शास्त्र के रस, रीति, अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति, औचित्य आदि को व्यापकता प्रदान की और उसे पुनः विवेचित कर उनका फिर से मूल्यांकन किया और नूतन साहित्य के लिए रस—सिद्धांत का प्रतिपादन किया डॉ० नगेंद्र ने भारतीय काव्यशास्त्री की सौन्दर्य कल्पना और पश्चिम के आधुनिक शैली में लेकर अपने रस—सिद्धांत का प्रतिपादन किया। काव्य का अनिवार्य तत्त्व है, उसका सौन्दर्य जो धर्म को स्पर्श करता है। रस कवि की आत्मानुभूति से प्रस्फुटित काव्य—कृति को ‘पाठक की आत्मा’ में प्रतिस्थापित करता है। यानी काव्य लेखन के समय जो कवि की आत्मानुभूति के भाव होते हैं, पाठक भी उस काव्य के अंदर जाकर उसी की भी भूमि पर चला जाता है और काव्य का रसपान करता है, उसके सौन्दर्य से वह आनंद का भी अनुभव करता है।

डॉ० नगेंद्र ने अपनी पुस्तक ‘रस—सिद्धांत’ के प्रारम्भ में ही लिखा है—

“भारतीय सौन्दर्य दर्शन का मूल आधार है काव्य शास्त्र। यद्यपि दर्शन में भी विशेश कर आनंदवादी आगम ग्रंथों में आत्मतत्त्व के व्याख्यान के अंतर्गत सौन्दर्य की अनुभूति के विषय में प्रचुर उल्लेख मिलते हैं फिर भी सौन्दर्य के आस्वाद और स्वरूप का व्यवस्थित विवेचन काव्य शास्त्र में ही मिलता है। आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से सौन्दर्य चेतना की मिश्र—वृत्ति है। इसके योजक तत्त्व हैं—1 प्रीति अर्थात् आनंद, 2. विस्मय।

भारतीय काव्यशास्त्री इस रहस्य से आरम्भ से ही अवगत शुरू उसके प्रतिनिधि सिद्धांत रस और अलंकार क्रमशः प्रति और विस्मय के ही शास्त्रीय विकास है। सौन्दर्य के आस्वाद में निहित प्रीति तत्त्व का प्राधान्य रस—सिद्धांत में प्रस्फुटित और विकसित हुआ, और उधर विस्मय तत्त्व की प्रमुखता ने विक्रता, अतिशय आदि के माध्यम से अलंकारवाद का रूप धारण किया। इन दोनों में रस—सिद्धांत केवल कालक्रम की दृष्टि से ही नहीं, वरन प्रभाव और प्रसार की दृष्टि से भी अधिक महत्वपूर्ण है—वास्तव में भारतीय काव्य शास्त्र की आधारशीला यही है।”⁶

डॉ० नगेंद्र ने गहन शोध के क्रम में यह ध्यान दिलाया कि साहित्य के सौन्दर्य दर्शन का मूल आधार है काव्य शास्त्र। डॉ० नगेंद्र को अध्ययन और शोध के क्रम में यह ज्ञान हो गया कि आनंदवादी आगम ग्रंथों में सौन्दर्यानुभूति का विस्तृत वर्णन है, किन्तु सौन्दर्य व्यवस्थित रूप में संस्कृत के काव्य शास्त्र में ही उपलब्ध है। उन्होंने पाश्चात्य जगत के विभिन्न विद्वानों के द्वारा उपस्थित किए गए वैज्ञानिक मनोविज्ञान को रस—सिद्धांत के साथ युग्म करने का निश्चय किया, ताकि काव्य की आत्मा में जाता जा सके। और इस दिशा में सफल भी रहे। मनोविज्ञान कहता है कि सौन्दर्य की चेतना या अनुभूति मानव की चैतन्यता की मिश्र—वृत्ति है। उन्होंने इसके योजक तत्त्वों को भी आलेखित किया। उन्होंने रस अलंकार आदि की भी विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की।

इस प्रकार उन्होंने लम्बी साधना के बाद रस—सिद्धांत का प्रतिपादन किया और अपने योगदान से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया।

संदर्भ—

1. रस—सिद्धांत, डॉ. नगेंद्र प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1964, दिल्ली, पृष्ठ—निवेदन,
2. हिंदी आलोचना के नामि पुरुष डॉ० नगेंद्र सम्पादक डॉ. शैलजा

माहेश्वरी, नीरज बुक सेंटर दिल्ली, 92 पृष्ठ—110

3. रणवीर रागा डॉ0 नगेंद्र : व्यक्तित्व और कृतित्व पृष्ठ—2
4. डॉ रणवीर रागा डॉ0 नगेंद्र : व्यक्तित्व और कृतित्व, 1964, पृष्ठ—2
5. सं डॉ0 रणवीर रागा, डॉ नगेंद्र : परम्परा और परिणति, स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ—169
6. डॉ0 नगेंद्र , रस—सिद्धांत, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1984, दिल्ली, पृष्ठ —3

समपर्क—

गौतम, कुमार गुप्ता, शोधार्थी,
हिंदी विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची

डॉ. गौतम कुमार गुप्ता
सहायक हिन्दी शिक्षक उत्क्रमित उच्च
विद्यालय, नयनपुर, तीसरी गिरिडीह ।

गौतम कुमार गुप्ता,
S/O जवाहर प्रसाद गुप्ता
,ग्राम. पोस्ट चट्टी बरियातू, थाना— केरेडारी ,जिला—
हजारीबाग,(झारखंड) पिन नंबर 82 5321. मोबाइल नंबर
Mob. 9546277040

सारांश

सहकारी समितियाँ, स्वयं सहायता समूह, एवं सूक्ष्म वित्त ये समूह केवल ऋण संग्रह ही नहीं करते हैं, बल्कि ये समान एकजुटता और धरातल स्तर पर शासन के मंच हैं। हम सभी जानते हैं कि हमारा देश भारत एक कृषि प्रधान देश है। जिसकी लगभग 70: जनसंख्या गाँवों में निवास करती है और इनकी आय प्राप्त करने का मुख्य स्रोत कृषि ही है। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति कृषि से सीधे नहीं जुड़े हुए हैं, वह भी अप्रत्यक्ष रूप से किसी न किसी रूप में कृषिगत उपज पर ही निर्भर करते हैं अर्थात् यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि हमारे देश की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर ही आधारित है। सामूहिक प्रयासों से समाज में फैली कुप्रथाओं जैसे— दहेजप्रथा, बाल विवाह तथा लैंगिंग भेदभाव में कमी आती है। जिससे समानता और समान संस्कृति को बढ़ावा मिलता है एवं स्वयं सहायता समूह की सामुदायिक बैठकों में भाग लेने से महिलाओं की घरेलू और ग्रामीण प्रशासन में भूमिका ओर अच्छी होती जाती है। इन समूहों के द्वारा महिलाओं को कोई भी सूक्ष्म उद्यम शुरू करने के लिए आसानी से पूंजी प्राप्त करके अपना उद्यम चला सकती हैं। सूक्ष्मवित्त और स्वयं सहायता समूह को मजबूत करने का अर्थ है समाज की अंतिम पंक्ति में खड़े वंचित वर्ग और महिलाओं को सशक्त तथा आत्मनिर्भर बनाना। सहकारी समितियाँ, स्वयं सहायता समूह एवं सूक्ष्म वित्त का सही से पालन करने से भारत को आत्मनिर्भर और सतत विकास के उद्देश्य को साकार करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे।

मुख्य बिंदु— ऋण संग्रह, आर्थिक विकास, सशक्तिकरण, समावेशी विकास, आत्मनिर्भरता

प्रस्तावना

हमारे विकासशील देश भारत को विकसित करने के लिए कृषि से जुड़ी छोटी-छोटी इकाइयों को विकसित करना होगा। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि हमारा देश भारत एक कृषि प्रधान देश है। जिसकी लगभग 70: जनसंख्या गाँवों में निवास करती है और इनकी आय प्राप्त करने का मुख्य स्रोत कृषि ही है। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति कृषि से सीधे नहीं जुड़े हुए हैं, वह भी अप्रत्यक्ष रूप से किसी न किसी रूप में कृषिगत उपज पर ही निर्भर करते हैं अर्थात् यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि हमारे देश की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर ही आधारित है। अतः सहकारी समितियों, स्वयं सहायता समूह एवं सूक्ष्म वित्त के सहयोग से ग्रामीण क्षेत्रवासियों की आर्थिक स्थिति को सुधारा जा

सकता है। ये देश को विकास के मार्ग पर ले जाने में सहयोग प्रदान करेंगे। सहकारी समितियाँ, स्वयं सहायता समूह एवं सूक्ष्म वित्त विशेष रूप से धरातल स्तर की संस्थाएँ हैं जो भारत में सामाजिक और आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। आपसी सहयोग, सामूहिक प्रयास तथा लोकतांत्रिक कार्य प्रणाली के सिद्धांतों पर आधारित ये संस्थाएँ समाज के ऐसे वर्गों पर विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र एवं अर्ध- शहरी क्षेत्रों को सशक्त बनाने का प्रयास करती हैं। ये समुदाय आधारित संस्थाएँ आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देना एवं बचत को प्रोत्साहित करने का कार्य करती हैं तथा साथ ही ऋण उपलब्ध कराने में सहयोग करती हैं। जिनको अपनाकर व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति तथा रहन-सहन के स्तर को सुधारने का स्वयं प्रयास कर सके। भारत एक विकासशील देश एवं कृषि पर निर्भर होने के कारण यहाँ की मुख्य समस्याएँ गरीबी, बेरोजगारी, शिक्षा का अभाव, कौशल का अभाव आदि हैं। सहकारी समितियाँ, स्वयं सहायता समूह एवं सूक्ष्म वित्त के माध्यम से इन समस्याओं का निवारण किया जा सकता है।

सहकारी समितियाँ, स्वयं सहायता समूह एवं सूक्ष्म वित्त विशेष रूप से धरातल स्तर की संस्थाएँ हैं जो भारत में सामाजिक और आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। आपसी सहयोग, सामूहिक प्रयास तथा लोकतांत्रिक कार्य प्रणाली के सिद्धांतों पर आधारित ये संस्थाएँ समाज के ऐसे वर्गों पर विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र, महिलाएं एवं अर्ध — शहरी क्षेत्रों को सशक्त बनाने का प्रयास करती हैं। ये समुदाय आधारित संस्थाएँ आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देना एवं बचत को प्रोत्साहित करने का कार्य करती हैं तथा साथ ही ऋण उपलब्ध कराने में सहयोग करती हैं। जिनको अपनाकर व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति तथा रहन-सहन के स्तर को सुधारने का स्वयं प्रयास कर सकता है। भारत एक विकासशील देश एवं कृषि पर निर्भर होने के कारण यहाँ की मुख्य समस्याएँ गरीबी, बेरोजगारी, शिक्षा का अभाव, कौशल का अभाव आदि हैं। सहकारी समितियाँ, स्वयं सहायता समूह एवं सूक्ष्म वित्त के माध्यम से इन समस्याओं का निवारण किया जा सकता है और देश को विकास के मार्ग पर ले जाने के लिए इन संस्थाओं का महत्वपूर्ण योगदान साबित होगा।

सहकारी समितियाँ

सहकारी समितियाँ एक स्वैच्छिक संगठन है। ये संगठन आपसी सहयोग, समानता और सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांतों पर आधारित होते हैं। अंतर्राष्ट्रीय सहकारी गठबंधन के अनुसार, “

सहकारी समितियाँ व्यक्तियों का एक स्वायत्त संघ है जो स्वेच्छा से एक साथ संगठित होकर एक संयुक्त स्वामित्व वाले एवं लोकतांत्रिक रूप से नियंत्रित उद्यम के माध्यम से अपनी साझा आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को पूर्ण करते हैं। " सहकारी समितियाँ सतत एवं समावेशी विकास प्राप्त करने के लिए सशक्त माध्यम है। जिसमें विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्र तथा कमजोर समुदायों को सशक्त बनाने के साथ ही इनमें आत्मनिर्भरता को बढ़ाने का प्रयास करती हैं और आवश्यक सेवाओं को अंतिम छोर तक पहुँच को आसान बनाती हैं जिससे समाज में बढ़ी असमानतायें कम होती हैं।

भारत में सहकारी समितियों का ऐतिहासिक विकास

भारत में सर्वप्रथम 1904 में अंग्रेजों द्वारा ग्रामीण ऋणग्रस्तता को दूर करने के लिए सहकारी ऋण समिति अधिनियम लागू किया गया और 1912 में सहकारी समिति अधिनियम ने गैर-ऋण गतिविधियों के दायरे को ओर विस्तृत रूप में परिवर्तित किया।

सहकारी समिति का स्वतंत्रता के बाद का युग

□ सहकारी समितियाँ पंचवर्षीय योजनाओं का अभिन्न अंग बन गई।

□ योजना आयोग ने 1951 में ग्रामीण क्षेत्र में परिवर्तन लाने के लिए सहकारी समितियों को उपकरण के रूप में बढ़ावा दिया।

□ श्वेत क्रांति (1970 का दशक) वर्गीज क्यूरियन के नेतृत्व में अमूल डेयरी सहकारी समितियों के लिए आदर्श बन गई।

□ 1991 में आर्थिक सुधार के लिए आत्मनिर्भरता को मुख्य बिंदु माना गया किंतु सहकारी समितियों को अकुशलता और राजनीतिकरण के कारण संघर्ष का सामना करना पड़ा।

□ 2011 में सहकारी समितियों को संवैधानिक दर्जा दिया गया।

□ 2021 में सहकारी समितियों को मजबूत करने के लिए अलग से सहकारिता मंत्रालय का गठन भी किया गया है और साथ ही सहकारी बैंकों का डिजिटलीकरण, पैक्स में सुधार एवं बहु-राज्यीय सहकारी कानून पर कार्य चल रहा है।

सहकारिता का समावेशी विकास में भूमिका

सहकारी समितियाँ सतत एवं समावेशी विकास प्राप्त करने के लिए, विशेष रूप से भारत के ग्रामीण क्षेत्र में यह एक सशक्त माध्यम है। ये समितियाँ कमजोर वर्ग के समुदायों को सशक्त बनाने तथा आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास करती हैं तथा आवश्यक

सेवाओं को अंतिम सिरे तक पहुँच को आसान बनाती हैं तथा समुदायों में फैली असमानता को कम करने में सहयोग देती हैं।

1. आजीविका में वृद्धि करना— कारीगरों, छोटे किसानों तथा श्रमिकों को रोजगार उपलब्ध कराना, ऋण की व्यवस्था, प्रशिक्षण तथा सामूहिक सौदेबाजी मुख्य रूप से कृषि, डेयरी, मत्स्य पालन और हथकरघा क्षेत्रों में उपलब्ध कराना।

2. धरातल पर लोकतंत्र को मजबूत करना— सहकारी समितियाँ लोकतंत्र को मजबूत बनाती हैं। ये समितियाँ "एक सदस्य एक वोट" के सिद्धांत पर कार्य करती हैं। जिसके द्वारा भागीदारपूर्ण निर्णय लेने एवं स्थानीय लोगों के मध्य नेतृत्व को बढ़ाने के लिए प्रयास किया जाता है।

3. उत्तम वित्तीय समावेशन — सहकारी समितियाँ वंचित आबादी को कम ब्याज दर पर ऋण की सुविधा देती हैं। जिससे अनौपचारिक ऋण स्रोतों पर निर्भरता कम हो जाती है अर्थात् व्यक्ति अपने आप को शोषण होने से बचा लेता है।

4. सामाजिक समानता में वृद्धि— सहकारी समितियाँ समाज की आर्थिक असमानताओं को कम करती हैं। ये समितियाँ पारस्परिक सहायता, विश्वास और सामुदायिक एक जूता की संस्कृति को बढ़ावा देती हैं।

5. समावेशी विकास— सहकारी समितियाँ सामाजिक कल्याण के साथ-साथ आर्थिक उद्देश्यों को संतुलित करके सतत विकास उद्देश्य और आत्मनिर्भरता के गाँधीवादी आदर्शों के साथ संरेखित होती हैं।

स्वयं सहायता समूह (एसएचजी)

स्वयं सहायता समूह एक जैसी आर्थिक स्थिति वाले व्यक्तियों आमतौर पर महिलाओं के अनौपचारिक संगठन होते हैं जो सामूहिक बचत, ऋण तथा समूह द्वारा आधारित कार्यविधियों के माध्यम से अपने रहन-सहन के स्तर को सुधारने के लिए एक साथ आते हैं। एसएचजी ग्रुप वित्तीय समावेशन को आसान बनाते हैं। ये महिलाओं को आर्थिक एवं सामाजिक रूप से सशक्त बनाते हैं और साथ ही सहभागी विकास को बढ़ावा देते हैं। स्वयं सहायता ग्रुप दशकों से भारत में समुदाय-आधारित विकास और सूक्ष्म वित्त के महत्वपूर्ण साधन बन गये हैं।

स्वयं सहायता समूह की अवधारणा

देश का सतत विकास तब संभव होता है जब समाज के सभी कम आय वाले अर्थात् अवसरहीन वर्गों जैसे— निधनों, कम भूमि कृषकों, भूमिहीन मजदूरों, दस्तकारों, महिलाओं आदि का समाज की मुख्य धारा के साथ विकास हो। इस सबके लिए इनकी

आर्थिक स्थिति में सुधार करने की आवश्यकता है और यह तब संभव है जब इनके पास आय के नियमित स्रोत हों। जिसके लिए उन्हें स्वरोजगार व्यापार एवं अन्य आर्थिक क्रियाकलापों के लिए आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाये तथा इन गतिविधियों के लिए जरूरी पूंजी हेतु कम औपचारिक पर आसानी से और समय से पूंजी की व्यवस्था की जा सके। स्वयं सहायता समूह 10 से 20 व्यक्तियों का संगठन होता है, जो गाँव, मोहल्ला या पड़ोस में रहते हैं। यह संगठन एक परिवार की तरह समान भावना से सदस्यों के हित और आर्थिक विकास के लिए कार्य करते हैं। समूह के स्तर पर निश्चित रकम नियमित रूप से एकत्रित करते हैं जिसे स्वयं सहायता समूह की पूंजी का निर्माण होता है। समूह के सदस्यों की दैनिक आवश्यकता, उपभोक्ता एवं उत्पादन की पूर्ति के लिए इस पूंजी से ऋण की व्यवस्था की जाती है। यह समूह स्थानीय बैंकों से भी अपना संबंध स्थापित करते हैं जिसके द्वारा सदस्यों को बैंक से आसानी से ऋण उपलब्ध हो जाता है।

स्वयं सहायता समूह के उद्देश्य

स्वयं सहायता समूह के मुख्य उद्देश्य आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के सदस्यों तथा विशेष कर महिलाओं के मध्य वित्तीय समावेशन तथा आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देना है। इस समूह के द्वारा बचत, ऋण सुलभता और कौशल निर्माण के द्वारा गरीबी को कम करना है।

□ ऋण उपलब्ध होने में सुलभता – स्वयं सहायता समूह की अपनी निधि से सरल विधि और समय से ऋण उपलब्ध हो जाता है। आसानी से ऋण उपलब्ध होने से शोषक साहूकारों पर निर्भरता समाप्त हो जाती है। जिससे ऋण – योग्यता एवं आय सृजन गतिविधियों में वृद्धि होती है।

□ महिला सशक्तिकरण– एचसीजी ग्रुप महिलाओं में निर्णय लेने की क्षमता, आत्मविश्वास, निर्णय लेने की क्षमता एवं नेतृत्व क्षमता में वृद्धि होती है। महिलाएं वित्तीय एवं पारिवारिक मामलों पर नियंत्रण प्राप्त करती है। इससे पारंपरिक लैंगिक भूमिकाओं को चुनौती मिलती है और सामान्य में वृद्धि होती है।

□ बचत और वित्तीय अनुशासन में वृद्धि – स्वयं सहायता समूह के द्वारा गरीब व्यक्तियों में नियमित बचत की आदत डालते हैं। समूह के द्वारा सदस्य मितव्ययिता, बजट बनाना एवं वित्तीय प्रबंधन करना सिखाते हैं, जिससे आर्थिक लचीलापन एवं भविष्य की सुरक्षा का निर्माण होता है।

□ सामाजिक जागरूकता तथा सामुदायिक कार्यवाही – स्वयं सहायता समूह व्यक्तियों को शिक्षा, अधिकारों, स्वास्थ्य और शासन के बारे में जागरूक करते हैं। यह स्वच्छता एवं घरेलू हिंसा

जैसे स्थानीय मुद्दों पर सामूहिक कार्यवाही करते हैं।

□ कौशल विकास तथा आजीविका – स्वयं सहायता समूह उद्यमिता, व्यावसायिक प्रशिक्षण और लघु व्यवसाय को सरल बनाते हैं। कुछ महिलाएं स्वयं सहायता समूह के सहयोग से आय उत्पादक गतिविधियां आरंभ करती हैं। जिससे स्वराज रोजगार तथा गरीबी उन्मूलन को बढ़ावा मिलता है।

□ संस्थाओं एवं सरकारी योजनाओं से जोड़ना– स्वयं सहायता समूह विकास योजनाओं एवं ग्रामीण गरीबी के मध्य एक सेतु का कार्य करते हैं। एचसीजी ग्रुप राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (एनआरएलएम), प्रधानमंत्री स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण (पीएमएफएमई) तथा स्वास्थ्य मिशन जैसे कार्यक्रमों से जुड़े हुए होते हैं।

महिला सशक्तिकरण एवं पूंजी निर्माण में योगदान

स्वयं सहायता समूह ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर बनाते हैं और साथ ही सामाजिक रूप से जागरूक बनाकर उनके जीवन में परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। सरल ऋण उपलब्ध कराने के साथ-साथ स्वयं सहायता समूह एकजुटता, नेतृत्व एवं सामूहिक पहचान बनाने में सहायता करते हैं। ये सहयोग, साझा और जिम्मेदारी के नेटवर्क को मजबूत करके सामाजिक पूंजी का निर्माण करते हैं। स्वयं सहायता समूह महिलाओं के लिए अपना अनुभव बताने और अपनी समस्याओं के समाधान के लिए एक सुरक्षित स्थान देते हैं। ये समूह के सभी सदस्यों का सहयोग, एकजुटता एवं भावात्मकता तौर पर मजबूत बनाते हैं। महिलाओं को स्वयं सहायता समूह के द्वारा सूक्ष्म उद्यम शुरू करने का अवसर मिलता है। जिससे इनकी आय, बचत और आर्थिक स्थिति में सुधार होता है और दूसरों पर निर्भरता कम होती है एवं आत्मविश्वास बढ़ता है। स्वयं सहायता समूह के द्वारा बारी-बारी से नेतृत्व महिलाओं को सार्वजनिक भाषण एवं प्रबंधन का प्रशिक्षण मिलता है। प्रशिक्षण और बैठकों के द्वारा महिलाएं कानूनी अधिकारों, योजनाओं और सेवाओं के बारे में जानपाती हैं तथा घरेलू हिंसा, भूमि और शिक्षा मुद्दों पर अपने अधिकारों को भी समझपाती हैं, जो सामाजिक न्याय दिलाने में सहायक होते हैं। सामूहिक प्रयासों से समाज में फैली कुप्रथाओं जैसे- दहेजप्रथा, बाल विवाह तथा लैंगिक भेदभाव में कमी आती है। जिससे समानता और सम्मान की संस्कृति को बढ़ावा मिलता है एवं स्वयं सहायता समूह की सामुदायिक बैठकों में भाग लेने से महिलाओं की घरेलू और ग्रामीण प्रशासन में भूमिका और अच्छी होती जाती है। स्वयं सहायता समूह के द्वारा महिलाओं को कोई भी सूक्ष्म उद्यम शुरू करने के लिए आसानी से पूंजी प्राप्त करके

अपना उद्यम चला सकती हैं।

स्वयं सहायता समूह स्वयं की समस्या

1. वित्तीय साक्षरता में कमी – कुछ स्वयं सहायता समूह को बुनियादी लेखांकन, बजट और बैंकिंग प्रक्रियाओं में परेशानी आती है। इसके अतिरिक्त ऋण और पारदर्शिता की तैयारी में कमी होती है। इनकी स्थिरता को बनाये रखने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम कराना आवश्यक है।

2. सरकारी योजनाओं पर निर्भर – अधिकतर स्वयं सहायता समूह मुख्यतः सब्सिडी तथा ऋण प्राप्त करने के लिए अस्तित्व में हैं, आत्मनिर्भर बनने के लिए नहीं। जबकि स्वयं सहायता समूह के माध्यम से प्राप्त पूंजी को सशक्तिकरण तथा उद्यम पर लगाने की आवश्यकता है।

3. बाजार संपर्कों का कम होना – स्वयं सहायता समूह के उत्पाद खराब ब्रांडिंग और कम बाजार संपर्क के कारण अक्सर स्थानीय ही रह जाते हैं। जिसके कारण मापनीयता की संभावना सीमित हो जाती है। डिजिटल, खुदरा नेटवर्किंग तथा पैकेजिंग में सहायता की आवश्यकता है।

4. कौशल का अभाव – आजीविका गतिविधियों में लगातार कौशल विकास में कमी समूह की प्रभावशीलता को कम करता है। बाजार संबंधी प्रशिक्षण के अभाव में स्वयं सहायता समूह विस्तार करने में असफल हो जाते हैं।

5. तकनीक का कम प्रयोग – अधिकतर स्वयं सहायता समूह प्रशिक्षण, वहीखाता तथा विपणन के लिए बहुत ही कम तकनीक (डिजिटल उपकरण) का प्रयोग करते हैं। जिसके कारण दक्षता एवं पहुंच सीमित हो जाती है।

सूक्ष्म वित्त की अवधारणा

सूक्ष्म वित्त वित्तीय सेवाएं प्रदान करने के लिए एक दृष्टि है जो गरीब और वंचित लोगों को लक्षित करता है अर्थात् वंचित आबादी को छोटे मूल्य के ऋण, बचत, बीमा और अन्य सेवाएं प्रदान करते हैं। ये वित्त भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्था में महिला सशक्तिकरण, गरीबी उन्मूलन और उद्यमिता को बढ़ाने के लिए एक परिवर्तनकारी योगदान देते हैं।

सूक्ष्म वित्त के उद्देश्य

- ☐ वंचित और गरीब वर्गों को वित्तीय सेवाएं प्रदान करना
- ☐ गरीब और वंचित वर्गों की आर्थिक स्थिति अर्थात् रहन-सहन के स्तर में सुधार करना
- ☐ गरीब और वंचित वर्गों को सशक्त बनाना

सूक्ष्म वित्त भारतीय अर्थव्यवस्था विकास के मार्ग पर ले जाने के लिए महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। सूक्ष्म वित्त के द्वारा गरीब और

वंचित वर्ग के लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार किया जा सकता है और साथ ही इनको सशक्त बनाने में सहायता करते हैं। यदि इन्हें सही तरीके से लागू किया जाये तो जरूरतमंद लोगों के लिए शक्तिशाली उपकरण बन सकते हैं।

सुझाव

सहकारी समितियां, स्वयं सहायता समूह एवं सूक्ष्म वित्त ने महिला सशक्तिकरण, समावेशन एवं धरातल स्तर पर विकास के वाहक के रूप में अपनी योग्यता सिद्ध की है। इनके के प्रभाव को बढ़ाने और बनाये रखने के लिए के लिए इनमें नवाचार अत्यंत आवश्यक है।

☐ व्यापक और विभिन्न ऋण तक पहुंच होनी चाहिए। स्वयं सहायता समूह को सूक्ष्म ऋण के साथ उद्यम विस्तार के लिए उच्च मूल्य वाले ऋणों से भी जोड़ा जाना चाहिए। बैंकों को सरल और लचीले सहायक मापदंड अपनाने चाहिए तथा ऋण गारंटी तंत्र को मजबूत किया जाना चाहिए।

☐ ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल आधारिक रूपरेखा, मोबाइल कनेक्टिविटी और उपकरणों तक पहुंच का विस्तार करना। एसएचजी ऐप्स, एमआईएस एवं डिजिटल बाजारों के उपयोग में बढ़ावा तथा साथ ही साइबर सुरक्षा की जागरूकता भी बढ़ानी होगी।

☐ कौशल विकास और क्षमता वृद्धि में डिजिटल उपकरण, वित्तीय साक्षरता एवं उद्यम प्रबंधन में नियमित रूप से प्रशिक्षण को संस्थागत रूप दिया जाना चाहिए। जिससे स्वयं सहायता समूहों स्थिरता एवं सदस्यों के आत्मविश्वास में वृद्धि होगी। कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व और गैर सरकारी संगठनों के साथ साझेदारी इसमें सहायक होगी है।

☐ स्वयं सहायता समूह को पापड़ बनाने और सिलाई करने जैसी पारंपरिक गतिविधियों से आगे बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। हस्तशिल्प, पर्यावरण- पर्यटन तथा खाद्य प्रसंस्करण में वृद्धि की जाये तथा साथ ही ब्रांडिंग एवं पैकेजिंग का प्रशिक्षण दिलाना अत्यंत आवश्यक है।

☐ स्वयं सहायता समूह को सरकारी योजनाओं से भी जोड़ना आवश्यक है। समूहों को डीएवाई- एनआरएलएम, पीएमएफएमई एवं पीएमकेवीवाई जैसी योजनाओं के साथ रणनीतिक रूप से सम्मिलित किया जाना चाहिए। जिससे सही वित्तपोषण, कौशल विकास एवं बैकवर्ड – फॉरवर्ड संबंध सुनिश्चित होंगे तथा पंचायती राज संस्थाएं इस समन्वय को आसान बना सकती हैं।

☐ संघ संरचनाओं को भी सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता

है। पैमाने की अर्थव्यवस्थाओं के लिए क्लस्टर ब्लॉक और जिला स्तरों पर सहकारी समितियाँ, एचसीजी ग्रुपों एवं सूक्ष्म वित्त को बढ़ावा देना चाहिए। ये संघ सामान्य सुविधाओं विपणन और खरीद का प्रबंधन कर सकते हैं।

निष्कर्ष

सहकारी समितियाँ स्वयं सहायता समूह, एवं सूक्ष्म वित्त ये समूह केवल ऋण संग्रह नहीं हैं, बल्कि ये समान एकजुटता और धरातल स्तर पर शासन के मंच हैं। ये समूह वित्तीय, तकनीकी और संस्थागत के द्वारा समर्थित होने पर, स्वयं सहायता समूह केवल ऋण संग्रह नहीं करते हैं बल्कि वित्तीय, तकनीकी और संस्थागत नवाचारों के माध्यम से समर्थित होने पर, ये समूह सतत अर्थात् समावेशी विकास के प्रमुख प्रेरक बन सकते हैं। सूक्ष्मवित्त और स्वयं सहायता समूह को मजबूत करने का मतलब है समाज की अंतिम पंक्ति में खड़े वंचित वर्ग और महिलाओं को सशक्त तथा आत्मनिर्भर बनाना। सहकारी समितियाँ, स्वयं सहायता समूह एवं सूक्ष्म वित्त का सही से पालन करने से भारतीय अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर और सतत विकास के उद्देश्य के विजन को साकार करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे।

संदर्भ सूची

1. के.एन. सिंह तथा के. के.सिंह(1986). ग्रामीण विकास में कुटीर उद्योग की भूमिका, कुरुक्षेत्र अक्टूबर
2. एस.सी. दुबे. इंडियाज चेंजिंग विलेज्स
3. अभिजीत शर्मा (2006). गरीबों के लिए उम्मीद की किरण, लघु वित्त योजना नई दिल्ली
4. पीसी जैन. भारत की आधुनिक प्रगति। पृष्ठ 44—45
5. स्वयं सहायता समूह अभिज्ञान एसिड नई दिल्ली
6. रहीम सिंह (2007) लघुवित्त भारतीय एवं वैश्विक परिप्रेक्ष्य योजना वर्ष 52 अंक 1 जनवरी
7. नाबार्ड (2002) एन.ए.बी.ए.आर.डी. एंड माइक्रो फाइनेंस मुंबई
8. इंटरनेट एंड न्यूजपेपर

डॉ. प्रिया सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर

अर्थशास्त्र विभाग

वाई.एम.एस. पी.जी. कॉलेज, अमरोहा

ईमेल: dr.priyasingh202@gmail-com

डॉ. प्रिया सिंह

W/O श्री लोकेन्द्र सिंह

नारंगपुर, पोस्ट —जोया, जिला —अमरोहा

पिन —244222, उत्तर प्रदेश

मोबाइल नंबर —7088879440

सारांश:-

प्राकृतिक और मानव का गहरा अटूट सम्बन्ध रहा है। प्राकृतिक वातावरण में रहते हुये, प्राकृतिक वातावरण को अपना आदर्श बनाया। आदिमानव काल में प्राकृतिक प्रतीको को देवी-देवता के समान माना, ये उनके लिए पूजनीय थे। सिन्धु घाटी सम्यता, अजन्ता व लघुचित्रों अनेक शैलियों में प्रयुक्त प्राकृतिक चित्रण को सुन्दर अलंकारिक रूप, बादलो पर चमकती बिजली व हरे-भरे कदली वृक्षों को चित्रांकन किया। जो अर्न्तमन को छूता है। भारतीय समकालीन प्राकृतिक चित्रांकन में अनेक कलाकारों ने अति सुन्दर कार्य किया है, जैसे पूर्वी बंगाल के अवीन्द्रनाथ टैगोर, गोपाल घोश वहा के वातावरण से प्रभावित होकर, वहाँ के गाँव, नदियाँ, पेड़-पौधे, लहराते खेत तथा वनस्पतियों का चित्रण किया।

राजस्थान के क्षेत्रों में कला को विकसित रूप देने में अनेक कलाकारों ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, जिसमें रामजैसवाल, रामगोपाल विजयवर्गीय, परमानन्द चोपल, देवकी नन्दन शर्मा, किरण मुर्झिया, भूरसिंह शेखावत आदि।

राम जैसवाल

किसी कलाकार की सृजनयात्रा को समझने के लिए सर्वप्रथम उसकी कला की मूल संवेदना को आत्मसात करना अति आवश्यक है। क्योंकि वह अपने सृजनयात्रा में कई कृतियों का सृजन करता है। उस सृजन प्रक्रिया को वह एक कला रूप में प्रस्तुत करता है।

राम जैसवाल की जन्म भूमि उत्तर प्रदेश की मथुरा रही है। लखनऊ कला विद्यालय से कला शिक्षा प्राप्त कर राजस्थान में प्रमुख जलरंग चित्तेरे के रूप अपने को स्थापित किया। इन्होंने अपनी अभिव्यक्ति को संवेदनशीलता से सृजन कार्य में लगाया।

राम जैसवाल का जन्म 05 सितम्बर 1937 ई० को उत्तर प्रदेश के मथुरा जनपद के छोटे कस्बे सादाबाद में एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। ये परिवार सनातनी धार्मिक एवं वैष्णवी था। परिवार का वातावरण धार्मिक प्रवृत्ति का था। इसका प्रभाव राम जैसवाल पर बाल्यकाल से ही पडा। पिता से साहित्य और बड़े भाई से कला के संस्कार विरासत में मिले। राम जैसवाल की रुचि कलात्मक कार्य में प्रारम्भ से ही थी। इस रुचि को परिपक्व करने के लिए, उन्होंने लखनऊ फाइन आर्ट कॉलेज में कला अध्ययन हेतु प्रवेश लिया। जब वे कला विभाग में प्रवेश करते हैं, तो कम्पोजिशन का विभाग उनको प्रभावित कर गया अपनी अभिव्यक्ति को स्वतंत्रता पूर्व विस्तृत आकार देने लगे।

लखनऊ आर्ट कॉलेज में ही बंगाल शैली के कलाकारों से परिचय, असित कुमार हाल्दार, श्रीधर महामात्र, सुधीर रंजन खास्तगीर, एच०राय चौधरी से हुआ, साथ ही वॉश शैली में कार्य करना प्रारम्भ किया। इसके अलावा जल माध्यम में अपनी अभिव्यक्ति को दक्षापूर्णक रूप से सृजन किया। कृतियों को देखकर ऐसा जान पडता है कि कवि कविता का सृजन रंगों के माध्यम से कर रहा है, जब अभिव्यक्ति प्रतिबिम्बित संवेदनाएँ रूप और रंग माध्यम से चित्रतल पर उतरती है, तो एक आनन्द की अनुभूति होती है। चित्रतल पर दृष्टि पडने से आँखों के माध्यम से मन की गहराई तक जाती है।

कलाकार अपने आप से मुक्त होकर जीवन से जुडता है और अनुभव व संस्कारों के माध्यम से जीवन को आत्मसात करता है। चित्रकार आपनी अभिव्यक्ति को कला जगत में उतार कर परिष्कृत स्वरूप देकर अनुभूतियों में भिगोकर, अपनी सृजन धर्मिता से अभिव्यंजित रचना करता है और जन-जन तक अपनी अभिव्यक्ति को पहुँचाता है, आत्मदर्शन करता है।

जीवन के हर पहलुओं का अध्ययन कर वह सौन्दर्यपूर्ण सृजन कर, प्रणय की अनुभूतियाँ करता है, प्रणय में युगल अभिव्यक्ति के चित्र कम वियोग और अकेलापन की अनुभूति के चित्र अधिक है। उनका कहना है, कि एकाकीपन में दोनों सम्मिलित है, एक मूर्त दूसरा अमूर्त और यह पक्ष चित्र को अधिक संवेदनापूर्ण बनाता है। जल रंग में बनाये गये चित्र व्यक्ति चित्र, दृष्य चित्र, कस्बे में सुबह, व्यक्ति चित्रों में कुछ चित्र जयशंकर प्रसाद के आँसू पर आधारित थे। जल चित्रों में अधिक कोमलता व पारदर्शिता है।

इस माध्यम से व्यक्ति चित्र व दृष्य चित्रण में कोमलता पूर्वक चित्रों का सृजन किया। शान्ति-निकेतन से जब लखनऊ कॉलेज ऑ आर्ट्स की संवेदनीय धरा बनी, तो एक नए कला संवेदनाओं का विकास व विस्तार हुआ। बंगाल की कमनीयता तो थी साथ ही लखनऊ का नाजुकी और शायराना मिजाज का स्पर्श मिला। बंगाल शैली के चित्रकार पौराणिक, ऐतिहासिक, काव्यात्मक और दैनिक जीवन में संवेदनीय पक्ष भी चित्रित किये जाने लगे।

राम जैसवाल को राजस्थान जाने का अवसर मिला और वहाँ की माटी की सोंधी महक, रंगों की चटकीलापन दूर-दूर तक फैली अरावली पर्वत माला को अपने चित्रों में स्थान दिया। यहाँ की कोमल रेत, अरावली के छोटे और बड़े आकारों को देखना, रेत में बनी धाराये, वर्षा का अनुभाव करती है। वर्ष भर मौसमी झीले, वर्षा जल से सजती है। उनको चित्रों में उतारने को मन उतावला और ये

जब जल रंगीय दृष्टि चित्रण के विषय बने, यहाँ की हवा, उड़ती सोनल—रेत, गोधूलि वर्षा, कोहरे की चादर तान कर सोये पहाड और पहाडियों पहरूओ से जागते एक दो उनीदे पेड। इन सब को आने सृजन कार्य में शामिल दृश्य चित्रों में भावानुभूति के साथ जलरंग की दमकती पारदर्शिता, स्वाभाविक, बहते हुए, तुलिकाघाट जिससे प्रकृति पूर्णरूपेण जलमय हो गयी है।

चित्रों में प्रभाववाद की झलक दिखाई पड़ती है। पेड—पौधे पशुओ मानवाकृतियों या नगर, गाँव, मेला, भीड भरी गलिया या बाजार हो, तुलिकाघाट, चित्रों में प्रभावपूर्ण लगाये गये हैं। जल चित्र इनके बहुमुखी प्रतिभा के हिस्सा रहा, क्योंकि जल चित्रण लखनऊ में आर्ट कॉलेज का मिजाज रहा है। इन्होंने प्राकृतिक सौन्दर्य को अपने चित्रों में दर्शाया है और अपनी पहचान बनाने में सफल हुये।

निष्कर्ष:-

समकालीन प्राकृतिक चित्रण में राम जैसवाल ने अपनी बहुप्रतिभा को दर्शाया है। प्राकृतिक में उपस्थित पेड—पौधे, उमड़ते हुए बादल, सौन्दर्यपूर्ण जंगली वनस्पतियाँ व रेगिस्तान अरावली पर छाये धुँध, झीले और भीड भरी गलियों को अपने चित्रों में दर्शाया है।

प्रस्तुत शोध के माध्यम से प्राकृतिक सौन्दर्य और अन्तर्भूत के बीच जो गहरा सामंजस्य स्थापित किया। वह अति सौन्दर्यपूर्ण, हृदयात्मागत है।

सन्दर्भ:-

- 1— भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास डॉ० रीता प्रताप, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2012
- 2— डा० अवधेश मिश्र, लखनऊ समकालीन कला की आधारभूत प्रवृत्तियाँ, कला दीर्घा—ललित कला अकादमी, अंक 20 वर्ष 2010
- 3— <https://www.csirs.org>
- 4— <https://www.exoticindiart.com>

पता:-

प्रियंका पत्नि डॉ० सुनील वालिया
एकता विहार कॉलोनी, रूडकी रोड,
मुजफ्फरनगर (उ०प्र०) पिन— 251002
मो०— 8433293136

प्रो० ज्योत्सना

कला विभाग, कनोहर लाल
महिला स्नातकोत्तर, महाद्यालय (मेरठ)

सारांश:-

हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाने में महिला साहित्यकारों का योगदान अतुलनीय है। गद्य एवं पद्य की प्रत्येक विधा में साहित्य सृजन कर रही हैं। अपनी लेखनी से उपन्यास, काव्य, कहानी, नाटक, निबंध, आत्मकथा, संस्मरण, डायरी, रेखाचित्र एवं आलोचनात्मक लेखन में भी काफी सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। आज महिला लेखिकाओं की एक लंबी शृंखला है, जो किसी पहचान के मोहताज नहीं हैं। बल्कि अपनी लेखनी से इन महिला साहित्यकारों ने सागर की अथाह गहराई में एक-एक रत्न की भाँति हैं। जिन्होंने अपनी रचनाओं से समाज को एक नई राह दिखाने का कार्य किया है। जिससे आज की स्त्रियाँ हर प्रकार की कंटकाकीर्ण समस्याओं से लड़ती हैं, और अपनी राह बनाते हुए मंजिल तक पहुँचती हैं। समाज एवं देश विदेश में आज अपनी एक अदभूत पहचान बना रही हैं, सफलता की नई ऊँचाई को छू रही हैं। मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, उषा प्रियंवदा, चित्रा मुद्गल, अनामिका, ममता कालिया, मृदुला गर्ग, गीताश्री आदि अनेकों महिला लेखिकाएँ अपनी साहित्य साधना के द्वारा हिंदी साहित्य को गौरवमयी बना रही हैं। अपनी रचनाओं के द्वारा हिंदी साहित्य लेखन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं।

बीज शब्द: साहित्य, योगदान, चित्रण, प्रमुखता, बेबाकी, समस्या

भूमिका : हम सभी इस बात से परिचित हैं कि भक्ति आन्दोलन का प्रारंभ दक्षिण भारत से हुआ है जिसमें आलवार भक्तों का अपार योगदान है। “आण्डाल की भक्तिपरक रचनाएँ ‘तिरुप्पावै’ और ‘नाच्चियार तिरुमोली’ लोकप्रिय बन गयी हैं। ‘तिरुप्पावै’ में ‘मार्गशी नोन्पु’ अथवा कात्यायनी व्रत का वर्णन है। यह व्रत रखते वक्त मार्गशीर्ष महीने में रोज प्रातः महिलाएँ स्नान करती हैं जो ‘पौश स्नान’ के नाम से मसहूर है। ‘तिरुप्पावै’ के पदों में आद्यंत कृष्ण प्रेम में लीन आण्डाल की छवि दर्शनीय है। आण्डाल खूद अपने को गोपी मानती हैं। श्री विल्लिपुत्तूर उसके लिए ब्रजभूमि है। वहाँ रहने वाली सारी भक्त महिलाएँ गोपियाँ हैं। वटपत्रशायी भगवान के मंदिर को श्रीकृष्ण का राजमहल मानती हैं। तिरुप्पावै के प्रथम पद में गोपियों के द्वारा मार्गशीर्ष व्रत रखने के इच्छुक युवतियों को जगाने का वर्णन मिलता है।”¹ इसी तरह कृष्णभक्ति शाखा की प्रमुख कवयित्री मीराबाई हैं जिनका जन्म ऐसे समय और ऐसे समाज में हुआ था जब देश में महिलाओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी उस समय महिलाओं को घर से बाहर निकलने की अनुमति नहीं थी। राजपरिवारों में उस समय महिलाओं को सूर्य की किरणों तक नहीं

देख पाती थी फिर भी मीराबाई सभी प्रकार के सामाजिक रुढ़ियों और परम्पराओं को तोड़ते हुए घर से बाहर निकलती हैं भक्ति भावना के “गीत गाते-गाते न जाने मीरा को कब और कैसे यह आभास हुआ कि उनके नटवर नागर तो कभी के वृंदावन छोड़ कर द्वारका जा विराजे हैं। यह आभास होते ही मीरा वहाँ से द्वारका चली गयीं। वहीं रणछोड़ जी के मंदिर में भगवान की मूर्ति के सम्मुख एकाग्र भाव से भजन-कीर्तन करते हुए मीरा ने शेष जीवन व्यतीत किया।”² आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपनी पुस्तक हिन्दी साहित्य का इतिहास में मीराबाई के चार ग्रंथों का उल्लेख करते हैं- “इनके बनाए चार ग्रंथ कहे जाते हैं-नरसी जी का मायरा, गीत गोविंद टीका, राग गोविंद, राग सोरठा के पद।”³ इसी तरह हिन्दी साहित्य की गौरवशाली रचनाकार महादेवी वर्मा का पादुभाव ऐसे समय में होता है जब देश गुलामी के जंजीरों में जकड़ा हुआ था देश में आजादी के लिए संघर्ष चल रहा था जिसमें पुरुष अपना योगदान दे रहे थे तो उस समय महिलाएँ भी कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ती हैं। ऐसे में महादेवी वर्मा एक नयी चेतना लेकर महिलाओं की अधिकार की बात करती हैं। एक लेखिका के रूप में, एक समाज सेविका के रूप में हिन्दी साहित्य में उपस्थित होती हैं। वर्तमान समय में जो भी महिला रचनाकार आगे बढ़ी हैं कविता, कहानी, उपन्यास आदि के लेखन में तो उनका मूल प्रेरणा महादेवी वर्मा रही हैं। महादेवी वर्मा साहित्य के माध्यम से राष्ट्र सेवा, समाज कल्याण का संकल्प लिए हुए पद्य और गद्य दोनों ही क्षेत्रों में अपनी विशेष पहचान बनायी हैं। इनकी कविताओं में हमें करुणा और वेदना की अभिव्यक्ति मिलती है। इन्होंने गद्य की अनेक विधाओं में अपनी लेखनी का लोहा मनवाया। जैसे-कहानी, निबंध, रेखाचित्र तथा संस्मरण आदि। ‘अतीत के चल चित्र’ ‘मेरा परिवार’, ‘पथ के साथी’, ‘शृंखला की कड़ियाँ’ आदि इनकी प्रमुख गद्य रचनाएँ हैं। ‘मेरा परिवार’ तथा ‘पथ की साथी’ इनकी ऐसी रचनाएँ हैं जिसमें महिलाओं को समाज में उचित स्थान दिलाने के लिए विचार और व्यवहार दोनों स्तरों पर निरन्तर प्रयत्नशील रही हैं। साहित्य के माध्यम से महिलाओं की दुःख दर्द एवं शोषण की यथार्थ अभिव्यक्ति इनकी रचनाओं में हमें देखने को मिलता है। इस प्रकार से महिलाओं को साहित्य सृजन के लिए प्रेरित करनेवाली प्रथम महिला के रूप में इनका विशेष योगदान है। इनकी काव्य संग्रह ‘यामा’ को सन् 1982 ई० में ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। इस प्रकार महादेवी वर्मा हिन्दी साहित्य में ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित प्रथम महिला रचनाकार हैं।

महिला रचनाओं में सुभद्रा कुमारी चौहान का भी अहम

योगदान है। इनकी रचनाओं में राष्ट्रप्रेम का भाव दिखाई पड़ता है। “इनकी कहानियाँ सामाजिक-पारिवारिक जीवन के व्यावहारिक चित्रण के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं। ‘बिखरे मोती’ (1932) और ‘उन्मादिनी’ (1934) में संगृहीत कहानियों में उन्होंने अधिकतर भारतीय नारी की परिस्थितियों, समस्याओं तथा भावनाओं का सजग चित्रण किया है। उनकी ‘पापी पेट’ शीर्षक से प्रसिद्ध कहानी भी इसी अवधि की रचना है।”⁴

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महिलाओं को भले ही राजनीतिक रूप से स्वतंत्रता मिल गई हो परन्तु मानसिक रूप से वे तब भी शोषित और पीड़ित ही थी ऐसे में महिला कथाकारों ने आगे बढ़कर अपनी लेखनी से समाज को एक नई दिशा प्रदान करती हैं जिसकी झलक हमें साठोत्तरी कथाकारों में प्रमुखता से मिलती है। “साठोत्तरी लेखिकाओं ने भी जीवन के विराट परिवर्तन को अपनी कहानियों से अभिव्यक्ति दी है। नारी जीवन और उससे संबंधित समस्याएँ ही इन कथाकारों का प्रमुख विषय है। मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग जैसी लेखिकाओं ने नारी के अधुनातन एवं पुरातन रूपों को अपनी लेखनी में प्रतिष्ठित किया है। इन लेखिकाओं ने एक ओर परम्परागत नारी-सुलभ आदर्शों को सराहा है तो दूसरी ओर नारी को अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रखने के लिए प्रेरित भी किया।”⁵ मैनेजर पाण्डेय ने महिला कथाकारों के योगदान पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—“सन् 1980 के आस पास ही हिन्दी साहित्य में स्त्री लेखन की प्रवृत्ति बड़े पैमाने पर निर्मित और विकसित हुई जिसने हिन्दी साहित्य की दिशा और धारा दोनों को बदला। ऐसी लेखिकाओं में कुछ पुरानी पीढ़ी की थी तो कुछ नयी पीढ़ी की। एक ओर कृष्ण सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा जैसी लेखिकाएँ थी तो दूसरी ओर नई पीढ़ी की लेखिकाओं में चित्रा मुद्गल, मृदुला गर्ग, नासिरा शर्मा, राजी सेठ, ममता कालिया आदि।”⁶ इस तरह से हिन्दी साहित्य में मैत्रेयी पुष्पा, मंजुल भगत, अनामिका, महेरुनिशा परवेज, सूर्य बाला, प्रभाखेतान, चंद्रकांता, निरूपमा सेवती समेत सौ से भी अधिक महिला लेखिका हैं जो अपना योगदान दे रही हैं जिसमें कुछ बहुत ही प्रमुख कथाकारों की कथा साहित्य पर प्रकाश डाला गया है —

मन्नू भंडारी : स्वतंत्रोत्तर महिला कथाकारों में इनका नाम बड़े ही सम्मान पूर्वक लिया जाता है। मन्नू भंडारी की कहानियाँ हिन्दी की बहुत सी पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही। उनकी लिखी कहानी ‘यही सच है’ पर ‘रजनीगंधा’ नामक फिल्म भी बनी है। “मन्नू ने बड़ी ही ईमानदारी के साथ नारी के मन में उठने वाले भावों, स्थिति विशेष में पुरुष के मन में जगने वाली

शंकाओं, ईश्याओं आदि को अपनी कहानियों में चित्रित किया है।”⁷ मन्नू भंडारी की कहानियों में नारी के बदलते स्वरूप और उनमें जागृत हो रही नयी चेतना की ओर विशेष ध्यान दिया है। इनकी कहानी संग्रह है :— ‘मैं हार गई’ (1957), ‘यही सच है’ (1966), ‘एक प्लेट सैलाब’ (1968), ‘तीन निगाहों की एक तस्वीर’ (1968), ‘त्रिशंकू’ (1978), ‘नायक खलनायक विदूषक’ (2002) आदि प्रकाशित हुए। इनके उपन्यास हैं—‘आपका बंटी’ (1971), ‘महाभोज’ (1979), ‘एक इंच मुस्कान’ नामक उपन्यास को राजेन्द्र यादव के साथ मिलकर लिखी हैं। मन्नू भंडारी का ‘आपका बंटी’ तालाक शुदा दाम्पति का चित्रण है जिसमें माता-पिता के अलग होने पर बच्चे पर बाल मनोविज्ञान पर पड़ने वाले प्रभाव का चित्रण मिलता है। मन्नू भंडारी की कहानियों का केन्द्र नारी मन का वह द्वन्द्व है जो परम्परा और आधुनिकता की टकराहट से उत्पन्न हुआ है। इनकी कहानी ‘आते-जाते यायावर’ में एक बेवफा प्रेमी की दगाबाजी की कथा है। वहीं इनकी कहानी ‘यही सच है’ में एक प्रेमिका और दो प्रेमियों के बीच उलझी कथा है जिससे कथाकार ने प्रेम के तिकोन को नये ढंग से प्रस्तुत किया है। वहीं इनकी कहानियों में नारी की अकेलेपन के बोध को बड़ी तल्लीनता के साथ उभरा गया है।

कृष्णा सोबती : हिन्दी कथा साहित्य में कृष्णा सोबती का अहम योगदान है। उनके साहित्य में विभाजन की त्रासदी, प्रेम और जीवनमूल्यों के बदलते स्थिति का चित्रण मिलता है। इनकी कहानी संग्रह—‘बादलो के घेरे’ (1980) नाम से प्रकाशित हुई है जिसमें चौबीस कहानियाँ संग्रहीत हैं। ‘लामा’, ‘सिक्का बदल गया’, एक लम्बी कहानी हैं। इनके उपन्यास— ‘मित्रो मरजानी’ (1967) ‘सूरजमुखी अँधेरे के’ (1972), ‘जिन्दगीनामा’ (1979), ‘दिलोदानिश’ (1993) ‘समय सरगम’ (2002) में प्रकाशित हुई। ‘सिक्का बदल गया’ कृष्णा सोबती के भारत विभाजन पर आधारित एक महत्वपूर्ण रचना है जिसमें शाहनी के द्वारा अपनी जड़ों से उजड़ने की कथा है। साथ ही इस कहानी में यह भी दिखया गया है कि जो लोग अलग-अलग सम्प्रदाय से संबंध रखते थे वह विभाजन से पहले मिलजुल कर एक साथ रहते थे एक दूसरे के दुःख-सुख में साथ देते थे। वहीं आज एक दूसरे सम्प्रदायों के लिए मारने काटने पर उतारू हो जाते हैं इसका बहुत ही मार्मिक चित्रण इस कहानी में हमें देखने को मिलती है। ‘जिन्दगीनामा’ कृष्णा सोबती का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपन्यास है, यह उपन्यास बीसवीं सदी के हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस उपन्यास में विभाजन पूर्व पंजाब के जन-जीवन और संस्कृति का अद्भूत रूप का सृजन किया है। ‘जिन्दगीनामा’

एक सांस्कृतिक-ऐतिहासिक औपन्यासिक रचना हैं। इस में व्यक्ति कथा कम, संस्कृति-कथा अधिक चित्रित हुई है। ज़िन्दगीनामा उपन्यास के लिए कृष्णा सोबती को सन् 1980 में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया। कृष्णा सोबती हिन्दी साहित्य की प्रथम महिला लेखिका हैं जिन्हें हिन्दी साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। इस प्रकार कृष्णा सोबती महिला कथाकारों के लिए प्रेरणा स्रोत रही हैं।

उषा प्रियंवदा : उषा प्रियंवदा स्वतंत्रोत्तर कथाकारों में अपना एक विशेष स्थान रखती हैं इनकी कहानियों में आधुनिक प्रेम के बदलते स्वरूप का चित्रण मिलता है। इनका कहानी संग्रह—‘ज़िन्दगी और गुलाब के फूल’ (1961), ‘फिर बसंत आया’ (1961), ‘एक कोई दूसरा’ (1966), ‘कितना बड़ा झूठ’ (1972), ‘बनवास’ (2010), इनके उपन्यास—‘पंचपन खम्भे लाल दीवारे’ (1961) ‘रूकोगी नहीं राधिका’ (1967), ‘शेषयात्रा’ (1984), ‘अन्तर्वशी’ (2000), ‘भए कबीर उदास’ (2007), ‘नदी’, ‘अल्पविराम’(2013) में प्रकाशित हुई। इनकी कहानी ‘जिन्दगी और गुलाब’ में लेखिका ने पैसे के अभाव में प्रेम के टूटने का सार्थक चित्रण करती हैं। जिसमें सुबोध की प्रेमिका शोभा अपने प्रेमी के घुटन भरे जीवन को देखकर उदास हो जाती है तथा सुबोध के जीवन से दूर हो जाती है।

ममता कालिया : ममता कालिया साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में अपना लेखनी चलाने वाली महिला कथाकारों में अपना विशिष्ट पहचान रखती हैं साथ ही महिलाओं की समस्याएँ इनकी कथा-साहित्य में प्रमुखता से देखने को मिलती हैं। इनकी कहानी संग्रह —‘छुटकारा’ (1969), ‘सीट नं०-6’ (1978), ‘एक अदद औरत’ (1979), ‘प्रतिदिन’ (1989), ‘उसका यौवन’ (1985), बोलने वाली औरत (1988), ‘मुखौटा’ (2003), ‘निर्मोही’ (2004), ‘ममता कालिया की कहानियाँ’ (2005), ‘दस प्रतिनिधि कहानियाँ’ (2005), ‘जाँच अभी जारी हैं’ (1997), आदि है। इनके उपन्यास ‘बेघर’ (1971), ‘नरक दर नरक’ (1975), ‘प्रेम कहानी’ (1980), ‘साथी’, लड़कियाँ, ‘एक पत्नी के नोट्स’ (1997), ‘दुखम-सुखम’ है। इनके संस्मरण ‘अन्दाज़-ए-बयाँ उर्फ रवि कथा’ और ‘जीते जी इलाहाबाद’ है। ममता कालिया स्वयं एक जगह अपनी पुस्तक में लिखती हैं —‘मैंने कभी इसकी चिन्ता नहीं की कि मुझे नारीवादी माना जाता है या नहीं। मुझे नारी के नाम पर मिलने वाली छूट का लाभ बिल्कुल पसन्द नहीं। कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा की रचनाओं से मुझे ऊर्जा मिलती है तो इसलिए कि वे अच्छी रचनाकार हैं, इसलिए नहीं कि वे अच्छी स्त्री कथाकार हैं। सृजन के संसार में आरक्षण कि माँग

बिल्कुल नहीं चलती किन्तु स्वयं को, समाज को और समस्त जीवन-संघर्ष को देखने वाली आँख जरूर अलग होती हैं।”⁸ ममता कालिया को उनका योगदान के लिए उ० प्र० हिन्दी संस्थान का महादेवी स्मृति पुरस्कार एवं यशपाल स्मृति सम्मान, अभिनव भारती कलकत्ता का रचना सम्मान, सावित्री बाई फूले सम्मान। हिन्दी साहित्य परिशद सम्मान, हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अमृत सम्मान से सम्मानित हो चुकी हैं।

चित्रा मुद्गल : समकालीन महिला कथाकारों में इनका नाम बहुत ही आदर पूर्वक लिया जाता है। इनकी कथाओं में स्त्री पर हो रही अन्याय, अत्याचार, शोषण केन्द्र में रहती है। इनका कहानी संग्रह ‘जहर ठहरा हुआ’ (1980), ‘लाक्षागृह’ (1982), ‘अपनी वापसी’ (1983), ‘ इस हमाम में’ (1987), ‘ ग्यारह लंबी कहानियाँ’ (1987), ‘ जगदम्बा बाबू गाँव आ रहे हैं’ (1992), ‘चर्चित कहानियाँ’ (1994), ‘मामला आगे बढ़ेगा अभी’ (1994), ‘जिनावर’ (1996), ‘केचुल’ (2001), ‘भूख’ (2001), ‘लपटे’ (2003), ‘बयान’ (2004), तथा ‘दस प्रतिनिधि कहानियाँ’ (2006), ‘प्रकाशित हैं। उनकी सम्पूर्ण कहानियाँ ‘आदि-अनादी’ के तीन भागों में संग्रहित हैं। इनकी प्रथम कहानी ‘सफेद सेनारा’ नवभारत टाइम्स की कहानी प्रतियोगिता में पुरस्कृत होकर 25 अक्टूबर 1964 में ‘रविवारीय’ में प्रकाशित हुई। अब तक की इनकी सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है— ‘आवां’, ‘एक जमीन अपनी’ ‘पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा’ तथा ‘गिलिगडू’ है। चित्रा मुद्गल की सबसे चर्चित उपन्यास आवां है जिसके लिए उन्हें 2003 में के० के० बिड़ला फाउण्डेशन का ‘व्यास सम्मान’ से सम्मानित किया गया है। चित्रा मुद्गल का पांचवां उपन्यास ‘नकटौरा’ है।

मैत्रेयी पुष्पा : अंचल विशेष को लेकर लिखने वाली एक सशक्त लेखिका हैं मैत्रेयी पुष्पा। इनकी तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं—‘चिन्हार’ (1991), ‘ललमनियाँ’ (1996), ‘गोमा हंसती है’ (1998), इनके उपन्यास—‘स्मृति दंश’ (1990), ‘बेतवा बहती रही’ (1990), ‘फरिश्ते निकले’ (2015), ‘इदन्नमम’ (1994), ‘चाक’ (1997), ‘झूलानट’ (1999), ‘आत्मा कबूतरी’ (2000), ‘कहे इंसुरी फाग’ (2004), ‘त्रियाहट’ (2005), ‘गुनाह बेगुनाह’, ‘अगनपाखी’, ‘विजन’, ‘नमस्ते समथर’(2021) आदि है। आंचलिक उपन्यासों में इनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है ‘इदन्नमम’। ‘अप्यदेवोभव’ में राजेन्द्र यादव ने इनकी उपन्यासों पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—‘मंदा की लड़ाई दुहरी है। औरत होने की और वंचितों के अधिकारों की। कहा जाता है समय के सच को ‘बेतवा बहती रही’ में उकेरा गया है लेकिन इसका व्यापक विस्तृत एवं विराट यथार्थ ‘इदन्नमम’ में अधिक है। यदि ‘बेतवा बहती रही’ विंध्यप्रदेश का

मैला आँचल है तो 'इदन्नमम' उसकी परती परिकथा है।⁹

नासिरा शर्मा : नासिरा शर्मा प्रगतिशील विचारों की सशक्त लेखिका हैं जो मानवता को धर्म सम्प्रदाय या विचारधारा से ऊपर मानती हैं। “नासिरा शर्मा ने कहानी के क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बनायी हैं। कहानी लिखने के कला के बारे में खुद कहती हैं—मैं जब तीसरी कक्षा में पढ़ती थी तो हमीदिया गर्ल्स कॉलेज में कहानी—लेखन में मैंने पुरस्कार पाया। पर उस कहानी का नाम अब याद नहीं है। मैं जब सातवीं कक्षा में पढ़ती थी तो मेरी कहानी 'राजा भैया' पत्रिका में प्रकाशित हुई ... 1975 में सारिका के नवलेखन अंक में मेरी कहानी 'बुतखाना' और मनोरमा पत्रिका में 'तकाज' प्रकाशित हुई।¹⁰ इनकी कहानी संग्रह—'शामी कागज', 'पत्थर गली' (1986), 'संगसार' (1993), 'इब्ने मरयिम' (1994), 'सबीना के चालीस चोर' (1997), 'खुदा की वापसी' (1998), 'इनसानी नस्ल' (2001), 'दूसरा ताजमहल' (2002) आदि है। इनके उपन्यास—'सात नदियाँ एक समुन्दर' (1984), 'शाल्मली' (1987), 'ठीकरे की मँगनी' (1989), 'जिन्दा मुहावरे' (1993), 'अक्षयवट' (2003), 'कुइयाँजान' (2005), 'जीरो रोड' (2008), 'अजनबी जरीरा' (2012), 'बहिस्ते जहरा' आदि है। 'कुइयाँजान' उपन्यास एक सामाजिक सत्य पर आधारित है साथ ही इस उपन्यास में पानी का सदुपयोग को भी इसमें दिखाया गया है। 'पारिजात' इनका बहुत ही प्रतिष्ठित उपन्यास है जिसे 2016 में साहित्य अकादमी से पुरस्कृत किया गया है।

मृदुला गर्ग : मृदुला गर्ग समकालीन हिन्दी साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती हैं। इन्होंने अपनी कथाओं में आधुनिक नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व को स्थापित करने का प्रयत्न किया है। इनकी कहानी संग्रह—'कितने कैदे' (1975), 'टुकड़ा—टुकड़ा आदमी' (1977), 'डेफोडिल जल रहे हैं' (1978), 'ग्लेशियर से' (1980), 'उर्फ सैम' (1986), 'शहर के नाम' (1990), 'समागम' (1996), 'मेरे देश की मिट्टी अहा' (2001), 'संगति—विसंगति' (दो खंडों में संपूर्ण कहानियों) (2004),। इनके उपन्यास—'उसके हिस्से की धूप' (1975), 'वंशज' (1976), 'चित्तकोबरा' (1979), 'अनित्य', 'मैं और मैं' (1984), 'कठगुलाब' (1996), 'मिलजुल मन' मृदुला गर्ग का एक प्रसिद्ध उपन्यास है जिसे 2013 में हिन्दी साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। 'वे नायाब औरतें' (2023) संस्मरणात्मक कृति है। “मृदुला गर्ग की कहानियों को यदि गहराई से अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट है कि जिस शिद्दत से उन्होंने नारी के अंतर्संघर्ष को उसकी पीड़ा को वाणी दी हैं वह कोई महिला कहानीकार ही कर सकती है। नारी मनोविज्ञान का ऐसा सूक्ष्म अंकन अन्य कहीं नारी के जीवन—चित्र

इतने सशक्त रूप में उपलब्ध नहीं है।¹¹

प्रभा खेतान : स्त्री चिंतन पर व्यापक रूप से लिखने वाली लेखिका में प्रसिद्ध हुई हैं प्रभा खेतान। प्रभा खेतान की स्त्री पात्र प्रायः विद्रोह भाव से भरे हुए हैं। इनका उपन्यास — 'आओ पेपे घर चले' (1990), 'तालाबंदी' (1991), 'छिन्नमस्ता' (1993), 'अपने—अपने चेहरे' (1991), पीली आँधी (1996) है। इनका उपन्यास 'छिन्नमस्ता' स्त्री के संघर्ष की कथा कहती है। इस उपन्यास की पात्र प्रिया बचपन से ही अपनों लोगों द्वारा शोषित होती है। प्रिया इस तरह के शोषण से टुटती जरूर है लेकिन हार नहीं मानती है। इस उपन्यास में प्रिया एक सशक्त स्त्री पात्र के रूप में उभरकर सामने आती है। 'आओ पेपे घर चले' प्रभा खेतान का अमेरिकी स्त्री का चित्रण करती है जो यह बताती है कि कर्मों वेश सभी जगह की स्त्रियों की एक जैसी ही स्थिति है।

गीताश्री : हिंदी कथा—साहित्य में गीताश्री का अहम योगदान है। उनके साहित्य में उनकी बेबाकी की और बुलंद आवाज की हुंकार साफ सुनाई देती है। इनकी कहानी संग्रह हैं— 'प्रार्थना के बाहर और अन्य कहानियाँ' (2013), 'स्वप्न साजिश और स्त्री' (2015), 'डाउनलोड होते हैं सपने' (2017), 'लेडिज सर्किल' (2018), 'भूत—खेला' (2019), 'बलम कोलकाता' (2021), 'मन बसंत तन जेठ' (2021), 'लिट्टी—चोखा और अन्य कहानियाँ', (2022) तथा 'मत्स्यगंध', (2022) आदि है। उनके उपन्यास 'हसीनाबाद' (2017), 'राजनटनी' (2020), 'वाया मीडिया एक रोमिंग कॉरस्पाडेट की डायरी' (2020), 'अम्बपाली एक उत्तर गाथा' (2022), 'कैद बाहर' (2023) तथा 'सामा—चकवा' (2024) में प्रकाशित हुआ है। 'अम्बपाली एक उत्तर गाथा' उपन्यास में लेखिका ने अम्बपाली के माध्यम से आधुनिक नारी चेतना को एक नयी दृष्टिकोण प्रदान की है। साहित्यिक योगदान के लिए इन्हें कई सम्मान और पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। वर्ष 2015 में साहित्य में योगदान के लिए 'बिहार सरकार गौरव सम्मान' से सम्मानित किया गया है।

निष्कर्ष : महिला साहित्यकारों ने अपने साहित्य में नारी की हर प्रकार की समस्याओं को बड़ी ही बेबाकी के साथ प्रस्तुत किया है। इसका सजीव चित्रण ममता कालिया के उपन्यासों में देखने को मिलता है। इन्होंने अपनी पुस्तक 'भविष्य का स्त्री विमर्श' में स्त्री जीवन के सामाजिक संघर्षों जैसे—भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, यौन हिंसा, नारी उत्पीड़न, दहेज प्रथा, लिंग भेद, धर्म, जातिवाद की समस्याओं पर कठोर प्रहार करती है। महिला साहित्यकारों ने न केवल निम्न और मध्यवर्ग के लाचारी एवं तंगहाली को व्यक्त करती हैं। बल्कि उससे उत्पन्न पंगु मानसिकता से व्यक्ति सदा—सदा के लिए कुचल दिया जाता है। उसे बड़ी ही स्पष्टता

से अपने साहित्य में सृजन करती हैं। महिला साहित्यकार हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाने में बढ़-चढ़ कर अपना योगदान दे रहीं हैं।

संदर्भ सूची :-

1. मालती, डॉ० के० एम०, 'स्त्री विमर्श: भारतीय परिप्रेक्ष्य', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2017, पृ० 13
2. डॉ० नगेन्द्र डॉ० हरदयाल, 'हिंदी साहित्य का इतिहास', मयूर बुक्स, नयी दिल्ली, 2021, पृ० 221
3. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', सुधा पब्लिकेशंस, जयपुर, पृ० 126
4. डॉ० नगेन्द्र, डॉ० हरदयाल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', मयूर बुक्स, नयी दिल्ली, 2021, पृ० 569
5. बालकृष्णन, डॉ० सुधा, 'नारी: अस्तित्व की पहचान', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019, पृ० 37
6. पाण्डेय, मैनेजर, 'योजना', अंक 64, फरवरी 2021, प्रकाशन विभाग, नयी दिल्ली, पृ० 21
7. डॉ० नगेन्द्र, डॉ० हरदयाल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', मयूर बुक्स, नयी दिल्ली, 2021, पृ० 732
8. कालिया, ममता, 'भविष्य का स्त्री विमर्श', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2017, पृ० 8
9. बालकृष्णन, डॉ० सुधा, 'नारी: अस्तित्व की पहचान', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019, पृ० 51
10. वही पृ० 57
11. प्रकाश, अलका, 'नारी चेतना के आयाम', लोकभारती, इलाहाबाद, 2013, पृ० 33

रश्मि सिंह

शोधार्थी,

विश्वविद्यालय हिंदी विभाग,

राँची विश्वविद्यालय,

मोरहाबादी, राँची-834008 (झारखंड)

मो०-8434600606

rashmianku1986@gmail.com

डॉ० सुनीता कुमारी

सहायक प्राध्यापक,

विश्वविद्यालय हिंदी विभाग,

राँची विश्वविद्यालय,

मोरहाबादी, राँची-834008 (झारखंड)

मो०-9470368260

dr.sunita71@gmail.com

पता :- रश्मि सिंह

फ्लैट न०-TC2, कृष्णा वाटिका ,

जोरार, नामकुम ,

राँची-834010 (झारखण्ड)

मो०-8434600606

सारांशः

विश्व के लगभग सभी समाजों में स्त्री और पुरुष दो लिंगों को सार्वभौमिक रूप से मान्यता प्राप्त है। इन दोनों को ही सृष्टि की मूलभूत इकाई माना जाता है। इन दोनों के अतिरिक्त एक ऐसी इकाई भी है जिसे न तो पूर्ण रूपेण स्त्री कहा जा सकता है न पुरुष। ये तृतीय लिंगी हैं जिन्हें सामान्य भाषा में 'हिजड़ा', 'छक्का', 'मोंगा', 'किन्नर' आदि कहा जाता है। 'हिजड़ा' शब्द आते ही हमारी आंखों के सामने एक ऐसे व्यक्ति की छवि उभर आती है जिसकी एक खास भाव भंगिमा है, रहन-सहन एवं आचार – व्यवहार है। वे अपनी खास तरह की ताली से जाने और पहचाने जाते हैं। आमतौर पर यह शब्द गाली की तरह या भेद मजाक की तरह प्रयोग किया जाता है। इन्हें ही परिमार्जित भाषा में किन्नर कहा जाता है "सुनने में किन्नर शब्द भले ही गाली न लगे मगर अपने निहितार्थ में वह उतना ही क्रूर और मर्मन्तक है, जितना हिजड़ा। किन्नर की सफेदपोशी में लिपटा चला आता है, उसकी ध्वन्यात्मकता में रचा-बसा।" 1 भाषाई परिमार्जन हमारी सोच का परिमार्जन नहीं है। नाम बदल देने से उस समुदाय के प्रति हमारी सोच और व्यवहार में परिवर्तन नहीं होता है।

शोध सारः लब्धप्रतिष्ठ लेखिका चित्रा मुद्गल का उपन्यास पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा हिंदी साहित्य की एक अनुपम और मर्मस्पर्शी कृति है, जो किन्नर समुदाय के जीवन की वास्तविकता की सूक्ष्मतम प्रतिध्वनि है। इसका प्रकाशन 2016 में हुआ तथा 2018 में यह साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित हुआ, जो इसकी साहित्यिक और सामाजिक महत्ता को रेखांकित करता है। पत्रात्मक शैली में लिखा गया यह उपन्यास न केवल किन्नरों की पीड़ा, संघर्ष और सामाजिक बहिष्कार को चित्रित करता है, बल्कि समाज की रूढ़ियों और मानवीय संवेदनाओं के बीच टकराव को भी उजागर करता है। इस उपन्यास में चित्रित किन्नर जीवन के यथार्थ को विभिन्न आयामों—सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, और सांस्कृतिक संदर्भ में विश्लेषित किया गया है।

पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा की कथावस्तु मुंबई के नाला सोपारा और कालबा देवी रोड के बीच विन्यस्त है। उपन्यास का नायक विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली के नाम से हर पत्र के अंत में दिख जाता है। ध्यातव्य है कि एक ही व्यक्ति के इतने नाम हैं और नामों में स्त्रीलिंग और पुल्लिंग दोनों शामिल हैं। अब प्रश्न यह है कि क्या एक ही व्यक्ति एक साथ स्त्री और पुरुष हो सकता है? यह उपन्यास इन दो समाज स्वीकृत लिंगों से इतर थर्ड जेंडर अर्थात् तृतीय लिंग की बात करता है। विनोद की कहानी यह दर्शाती है कि

किन्नर न तो पूर्ण रूप से पुरुष हैं और न ही स्त्री, बल्कि उनकी पहचान इस द्वैत से परे है। फिर भी, समाज उन्हें इस द्वैत में बाँधने की निरर्थक कोशिश करता है, जिससे उनकी पीड़ा और बढ़ जाती है। समाज उन्हें अपने नियत ढांचे या टाइप में बंधना चाहता है। अज्ञेय ने 'शेखररू एक जीवनी' में समाज के इस दोहरे चरित्र का संकेत किया है "क्योंकि संसार का 'आदर्श व्यक्ति' व्यक्ति नहीं है एक 'टाइप' है और संसार चाहता है कि सर्वप्रथम अवसर पर ही प्रत्येक व्यक्ति को ठोक-पीटकर उसका व्यक्तित्व कुचलकर उसे उस टाइप में शामिल कर लिया जाए, उसे मूल रचना न रहने देकर एक प्रतिलिपि मात्र बना दिया जाए..." 2 किन्नर के रूप में पैदा होने मात्र से ही समाज उस बच्चे को उपेक्षित और अभिशप्त जीवन जीने के लिये छोड़ देता है। वे समाज के उस 'टाइप' के अंतर्गत नहीं आते जिसे समाज आदर्श मानता है। समाज में विकलांगों या दिव्यंगों के लिये दया तथा सहानुभूति तो दिखती है पर यौन विकलांगता पर यही समाज संवेदना शून्य बन जाता है। दया और सहानुभूति तो बहुत दूर की बात है उनके हिस्से आती है – गाली, नफरत, दुर्भावना, तिरस्कार, बहिष्कार, उपहास।

कथावस्तु पत्रात्मक शैली में प्रस्तुत की गई है। पत्र वह माध्यम है जिसमें अनकही बातें भी कही जा सकती हैं। पत्र बेहद मार्मिक हैं। विनोद द्वारा पत्रों को बार-बार पढ़ना इसे और मार्मिक बना देता है। पत्र ही वह जरिया था जिसके द्वारा विनोद अपनी मां वंदना बेन के साथ बात कर पाता था कुछ अपनी सुनाता कुछ मां की सुन पाता था। वह बेसब्री से अपनी मां की चिट्ठी का इंतजार करता था क्योंकि पत्र ही वह आखरी सूत्र था जो उसे परिवार से जोड़े रखता था। उसकी मां को छोड़कर घर में और किसी भी सदस्य को उसकी परवाह नहीं थी पर विनोद सब की परवाह करता था – मां, पिताजी, बड़ा भाई सिद्धार्थ, भाभी सेजल यहां तक कि भाभी के होने वाले बच्चे के विषय में भी अपनी चिंता व्यक्त करता था। वह इतना संवेदनशील था कि पत्र लिखती अपनी मां की तकलीफ को देख कर पाता था। पत्र लिखते वक्त मां की आंखों से गिरे आंसुओं की नमी वह महसूस कर पाता है उसकी पीड़ा को अनुभव कर पाता था। विनोद के पत्रों में निजी क्षणों का प्रबल भावोद्रेक है। वह न सिर्फ अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करता है बल्कि अपनी मां से शिकायत भी करता है क्योंकि व्यक्ति उससे ही शिकायत कर सकता है, उसके सामने ही हृदय खोल सकता है जो उसका अपना हो, जो उसे सुन और समझ सकता हो और अब उसके जीवन में मां ही इन सबका एकमात्र आश्रय थी वह अपनी मां की छत्रछाया से निकल

कर एक ऐसे नरक में जा पहुंचा था जहां सिर्फ और सिर्फ अंधेरा था, ग्लानि थी, छटपटाहट थी “जिस नरक में तूने और पप्पा ने धकेला है मुझे, वह एक अंधा कुआँ है जिसमें सिर्फ साँप-बिच्छू रहते हैं। साँप-बिच्छू बन कर वह पैदा नहीं हुए होंगे बस इस कुएं ने उन्हें आदमी नहीं रहने दिया।”³ इन पत्रों के माध्यम से उसका जीवन, उसकी पीड़ा, और समाज के प्रति उसका आक्रोश व्यक्त होता है। मनुष्य के रूप में जन्म लेने के बाद भी उनका जीवन घुप्प अंधेरे में अमानवीय स्थिति में बीत रहा है। ‘नरक’, ‘अंधा कुआँ’ जैसे उपमान जीवन की भयावहता को दर्शाते हैं। यह शैली कहानी को एक आत्मीय और व्यक्तिगत आयाम देती है, जो पाठक को किन्नर जीवन की जटिलताओं और संवेदनाओं से सीधे जोड़ती है।

भारतीय समाज में किन्नर या ट्रांसजेंडर समुदाय का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। पौराणिक ग्रंथों से लेकर मध्यकालीन दरबारों तक इन्हें सम्मान प्राप्त था, किंतु आधुनिक समाज में ये हाशिये पर धकेल दिए गए हैं। आज भी किन्नरों का जीवन संघर्ष, तिरस्कार और बहिष्कार से भरा हुआ है। उपन्यास में किन्नर समुदाय के सामाजिक बहिष्कार को गहराई से चित्रित किया गया है। किन्नरों को समाज में न केवल हाशिए पर धकेल दिया जाता है, बल्कि उन्हें मानवीय गरिमा से भी वंचित रखा जाता है। घर में किन्नर बच्चे का जन्म लेना किसी अभिशाप या अपशकुन से कम नहीं। कई बार तो है किन्नर सीधे अस्पताल आकर बच्चे को ले जाते हैं तथा कई बार वे सूचना मिलने पर घर से भी बच्चों को ले जाते हैं। उनकी भी अपनी मजबूरियाँ हैं। वे जानते हैं कि किन्नर बच्चे को परिवार भले ही स्वीकार कर ले किंतु समाज कभी भी स्वीकार नहीं करेगा यदि गलती से कोई बच्चा परिवार में रह जाए तो उसके साथ के बच्चे उसका उपहास करेंगे क्योंकि बच्चों को लड़का-लड़की से इतर किसी भी अन्य लिंग के विषय में बताया ही नहीं जाता। उनके लिए किन्नर बच्चे किसी एलियन से कम नहीं क्योंकि परिवार किन्नर समुदाय की कोई चर्चा नहीं करना चाहता जबकि ऐसा नहीं है कि समाज में कोई किन्नर बच्चा नहीं है या फिर किन्नरों की संख्या बहुत कम है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में किन्नरों की संख्या लगभग 4,88,000 है। इतनी बड़ी संख्या होने के बावजूद वे हमें नजर क्यों नहीं आते? यह कहना गलत होगा कि नजर नहीं आते, नजर तो आते हैं—रेल के डब्बों में विशेष ताली और गाली के साथ पैसे मांगते, सड़क के किनारे पैसे मांगते, बच्चों के जन्म के अवसर पर उसको आशीर्वाद देते, कई होटलों एवं शराबखानों में नाच-गान करते। यहां भी ध्यातव्य यह है कि नजर आने वाले किन्नरों की उम्र

20–35 वर्ष की होती है। उनका बचपना और बुढ़ापा हमारी आंखों से बिल्कुल गायब है ऐसे में यह सवाल लाजिमी है कि उनके घर कहां हैं? वे कहां रहते हैं? जो बच्चे किन्नर के रूप में जन्म लेते हैं वे आखिर पलते कहां हैं? कहीं तो रहते होंगे। हमारी बस्तियों से दूर कहीं तो इनका ठिकाना होगा। वे इतने अनजान और अजूबे क्यों हैं कि जब भी कोई किन्नर व्यक्ति हमारे आसपास होता है तो हम बार-बार उसे अजनबी की तरह घूरते रहते हैं यहां तक कि फिल्मों में भी कॉमेडी या फूहड़पन के रूप में किन्नर चरित्र का उपयोग किया जाता है। देश की आधी आबादी को किन्नरों के विषय में ठीक-ठाक जानकारी नहीं है। उनके मन में उनको लेकर कई तरह के सवाल हैं कुछ अच्छे और कुछ भदे। उनकी एक विशेष ताली होती है जो कभी-कभी जन सामान्य द्वारा भी मजाक उड़ाने के लिए बजायी जाती है। यदि साफ शब्दों में कहें तो समाज को यह लगता है कि किन्नर स्वेच्छा से धारण किया गया एक पेशा है किंतु ऐसा नहीं है। किन्नरों को मोटे तौर पर चार शाखाओं में विभक्त किया जाता है—बुचरा, नीलिमा, मंसा और हंसा। बुचरा जन्मजात (यौन विकलांगता) किन्नर होते हैं। नीलिमा किसी कारणवश स्वयं किन्नर बन जाते हैं। मनसा स्वेच्छा से किन्नर समुदाय में शामिल हो जाते हैं तथा हंसा शारीरिक कमी के कारण किन्नर बनते हैं। विनोद के पत्रों में यह स्पष्ट होता है कि समाज की मानसिकता किन्नरों को “असामाजिक” या “अवांछित” मानती है। वह कहता है “मनुष्य होकर भी वे मनुष्य कर्म और सामाजिकता से बहिष्कृत हैं। अपशकुन है... उनका जन्म कलंक है।”⁴ आगे वह कहता है “... गालियों की गाली। किन्नर कह देने भर से नासूर छटक जाएंगे देह से?”⁵ यह कथन समाज की सतही सहानुभूति और वास्तविक स्वीकृति के अभाव को उजागर करता है। सतही सहानुभूति रखकर हम कभी उन्हें मुख्य धारा में शामिल नहीं कर पाएंगे। यदि हम देश का विकास चाहते हैं तो हमें किसी भी इंसान को उसकी जाति, धर्म लिंग से पहले एक अदद व्यक्ति के रूप में स्वीकार करना होगा।

किन्नरों को अक्सर उनके परिवार के द्वारा भी त्याग दिया जाता है। विनोद का अपने परिवार से छिटककर नाला सोपारा की संकरी गलियों में एक नारकीय जीवन जीने को मजबूर होना इसका उदाहरण है। विनोद का बड़ा भाई सिद्धार्थ उससे घृणा करता था। वह उसकी तरवीर तक घर में रखने के खिलाफ था। उसे किन्नरों के हवाले कर के सब निवृत्त हो गए थे। उपन्यास में यह दिखाया गया है कि किन्नरों के लिए सामाजिक और पारिवारिक स्वीकृति एक दूर का सपना है। वंदना

बेन लोकलाज के भय और सामाजिक प्रतिष्ठा के दबाव में न चाहते हुए भी अपने छोटे से बच्चे को अनजानों के पास भेजने को विवश थी। वह उसे अपने पास रखना चाहती थी किंतु परिवार के सामने नतमस्तक हो जाती है। वह विनोद से पत्र व्यवहार करती है किंतु सबकी नजरों से बच कर। बचपन में पहली बार जब किन्नर उसे लेने आये थे तो उसने अपने दूसरे बेटे मंजुल को सामने कर दिया था पर अकेले वह कहाँ तक साथ दे पाती। अंततः हृदय को कड़ा करके उसे अपने बेटे को दूर करने का फैसला करना पड़ा। वह चाहती तो प्रतिकार कर सकती थी। जो माफीनामा वह उपन्यास के अंत में भेजती है वह हिम्मत बटोरकर पहले भी भेज सकती थी। यहाँ यह उपन्यास स्त्री विमर्श के आयाम से भी जुड़ा है जहाँ स्त्री अब भी पितृसत्ता के समक्ष बेबस दिखाई देती है "औरतें अपनी हिम्मत का इस्तेमाल नहीं करतीं। उनकी अपनी आँखें नहीं होतीं। वे अपनी आँखों को आँखों के कोटरों से स्वयं अपने हाथों से निकालकर अपने पति और बच्चों की जेबों में सरका देती हैं।" 6

विनोद एक प्रगतिशील और शिक्षित किन्नर है, जो सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती देता है। "पढ़ाई ही हमारी मुक्ति का रास्ता है। कोई रास्ता ही नहीं छोड़ा गया है हमारे लिये।" 7 वह न तो भिक्षावृत्ति अपनाता है और न ही नाच-गाने जैसे पारंपरिक पेशों को स्वीकार करता है। इसके बजाय, वह गाड़ियाँ धोकर और शारीरिक श्रम करके आत्मसम्मान के साथ जीने की कोशिश करता है। विनोद का आत्मसम्मान के साथ जीने का प्रयास उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पहलू है। वह अपने समुदाय के पारंपरिक पेशों/कृषिसे भिक्षावृत्ति या नाच-गान को अपनाने से इनकार करता है और मेहनत करके अपना जीवनयापन करता है। वह अपने साथी किन्नरों को भी आत्मसम्मान के साथ जीने की प्रेरणा देता है, कहता है, "...अवमानना को झेलने से इंकार कीजिये। कुली बनिए। मिस्त्री बनिए, ईंट गारा ढोइए, जो चाहे सो कीजिये, पाएंगे मेहनत के कौर की तृप्ति।" 8 यह दृष्टिकोण किन्नर समुदाय के लिए एक नए परिवर्तन की आकांक्षा को दर्शाता है।

ऐसे न जाने कितने किन्नर हैं जो पढ़ना चाहते हैं, नौकरी करना चाहते हैं जिन्होंने अपने लिये मुकम्मल जिदगी के सपने देखे हैं पर कितने इन सपनों को जी पाए हैं। इसी तरह विनोद का चरित्र सम्पूर्ण किन्नर समुदाय के लिए एक प्रेरणा स्रोत है, प्रकाश पुंज है। "दलितों के लिये अम्बेडकर पैदा हो सकते हैं तो किन्नरों के लिए विनोद क्यों पैदा नहीं हो सकता!" 9 वह शिक्षा को अपनी मुक्ति का रास्ता मानता है और इग्नू के

माध्यम से पढ़ाई करने की कोशिश करता है। लेकिन यहाँ भी उसे व्यवस्थागत बाधाओं का सामना करना पड़ता है, जैसे कि स्कूल-कॉलेज के फॉर्म में तृतीय लिंग के लिए कोई कॉलम न होना। वह अपनी माँ को लिखता है मेल, फीमेल के खाने में तो मेल ही टिक करूंगा बा। सरकार भी अजीब है ना बा। यह कथन व्यवस्था की उदासीनता और किन्नरों के प्रति संवेदनशीलता की कमी को दर्शाता है। वर्तमान समय में लम्बे संघर्ष के बाद 15 अप्रैल, 2014 को भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने एक ऐतिहासिक फैसले में किन्नरों और ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को कानूनी तौर पर 'तृतीय लिंग' या थर्ड जेंडर के रूप में मान्यता दी। संघर्ष का सफर अभी लम्बा है यह तभी सफल माना जा सकता है जब समाज बिना किसी भेदभाव के खुले मन से तृतीय लिंग को अपना लें। हमारे सामने कई ऐसे उदाहरण हैं जिन्होंने वर्तमान समय में शिक्षा प्राप्त कर समाज में अपनी पहचान बनाई है – मानवी बंद्योपाध्याय (भारत की पहली ट्रांसजेंडर कॉलेज प्रिंसिपल), पद्मिनी प्रकाश (भारत की पहली ट्रांसजेंडर न्यूज एंकर), जाँयिता मंडल(पश्चिम बंगाल के लोको अदालत की पहली ट्रांसजेंडर जज), प्रिथिका यशिनी(तमिलनाडु पुलिस की पहली ट्रांसजेंडर सब-इंस्पेक्टर), जिया दास(भारत की पहली ट्रांसजेंडर ऑपरेशन थिएटर टेक्नीशियन), मधु किन्नर(छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिले की पहली ट्रांसजेंडर मेयर)आदि कुछ नाम हैं हालांकि इनकी संख्या काफी कम है अभी इस दिशा में बहुत और पुरजोर कोशिश करनी होगी।

किन्नर लगातार पहचान के संकट से गुजरते हैं। सामाजिक तिरस्कार, अपमान और उपेक्षा उन्हें मानसिक अवसाद की ओर धकेलता है। परिवार से त्याग दिए जाने के बाद उनका अपना समुदाय ही उनका सहारा बनता है, जो उन्हें भावनात्मक सुरक्षा देता है। उपन्यास केवल समाज की क्रूरता को ही नहीं, बल्कि किन्नर समुदाय के भीतर की कमियों को भी उजागर करता है। विनोद अपने समुदाय के गुरुओं और सरदारों की गद्दी की लालसा और निरंकुश व्यवहार की आलोचना करता है। "असामाजिक तत्वों के हाथ की कठपुतली बनने में जितनी भूमिका किन्नरों के संदर्भ में सामाजिक बहिष्कार-तिरस्कार की रही है, उससे कम उनके पथभ्रष्ट निरंकुश सरदारों और गुरुओं की नहीं।" 10 यह कथन किन्नर समुदाय के भीतर की शक्ति संरचनाओं और शोषण को उजागर करता है, जो उनके विकास में बाधक हैं। विनोद का अपने समुदाय को ललकारना और आत्मनिरीक्षण के लिए प्रेरित करना उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पहलू है। वह मानता है कि किन्नर समुदाय को अपनी स्थिति

बदलने के लिए स्वयं को संगठित करना होगा और सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने की कोशिश करनी होगी।

उपन्यास में किन्नर समुदाय के राजनीतिक शोषण को भी दर्शाया गया है। विनोद की कार्यकुशलता को देखते हुए एक स्थानीय विधायक द्वारा अपने राजनीतिक हितों के लिए उपयोग करने की कोशिश की जाती है, उसे पंजाब भेजा जाता है ताकि वह अपने प्रभावी भाषण द्वारा उनके लिए वोट बटोर सके क्योंकि राजनेताओं के लिए किन्नर समुदाय सिर्फ वोट बैंक हैं उनकी वास्तविक समस्याओं से उनका कोई वास्ता नहीं होता। एक और घटना को भी लेखिका ने बड़ी ही जीवंतता से पाठकों के समक्ष रखा है – विधायक के भतीजे बल्लू और उसके चार मित्रों के द्वारा पूनम जोशी के साथ किया गया निर्मम दुष्कर्म इस बात का उदहारण है कि उन्हें उनकी कोई परवाह नहीं है क्योंकि विधायक जिसे गलती समझते हैं वह गलती नहीं बल्कि दरिंदगी थी। यदि वाकई उन्हें किन्नर समुदाय की चिंता होती तो वह इस अन्याय के खिलाफ लड़ते, आवाज उठाते हैं। वास्तविकता यह है की राजनीति को लोगों के विकास से कोई लेना देना नहीं होता इस बात को विनोद भली भांति जनता था। जहाँ एक ओर वह विधायक आरक्षण को मुद्दा बनाकर वोट बैंक बनाने की कोशिश करता है वहीं विनोद की सोच इन सब से कहीं आगे थी। वह जमीनी स्तर पर सुधार चाहता था। किन्नरों की पारिवारिक स्वीकृति उनकी मूलभूत आवश्यकता है। वह इसी बुनियादी आवश्यकता की माँग करता है। विनोद चाहता तो विधायक के साथ साठ-गाँठ करके एक अच्छे पद और सुख सुविधाओं के साथ आराम का जीवन जी सकता था पर राजनितिक रोटियां सेकना उसका ध्येय नहीं था। वह वास्तव में अपने समुदाय का विकास चाहता था, उनकी उन्नति चाहता था, उनको सामाजिक-राजनीतिक अपंगता से मुक्त करना चाहता था। वह जनता था कि “आरक्षण निदान नहीं है। आत्मचेतना बुनियादी अधिकारों की माँग पहला पायदान है।”¹¹ वह चाहता था कि सरकार “लिंग दोषी बिरादरी की घर वापसी सुनिश्चित करे। कानून बनाए। बाध्य करे अभिभावकों को। घर से बहिष्कृत बच्चों को जिस भी उम्र के पड़ाव में हों, अपने साथ रखें।”¹² राजनीति असल में स्वार्थ नीति है जो सिर्फ अपने लाभ के लिए कार्य करती है आम जन मानस की वास्तविक उन्नति से व्यवस्था को कोई लेना देना नहीं होता। यदि होता तो आज के लोकतान्त्रिक भारत में किन्नर समुदाय को नारकीय माहौल में जीना न पड़ता और जब विनोद उनके उन्नयन की कोशिश करता है तथा उनमें चेतना लाने की कोशिश करता है तब विडंबना

देखिये उसकी न्यायप्रियता और साहस उसे खतरे में डाल देती है और अंत में उसकी हत्या कर दी जाती है। उसका क्या कसूर था? बस इतना ही कि वह अपने समुदाय का उत्थान चाहता था। यदि वह जिंदा होता तो वह पूनम जोशी के लिए आवाज उठाता, किन्नर समुदाय को संगठित करता तथा साथ मिलकर अपने समुदाय के हक की लड़ाई लड़ता। किंतु उसकी आवाज को दबा दिया गया। विनोद की लाश नदी में मिलती है वहीं दूसरी तरफ पूनम जोशी अस्पताल में जिंदगी और मौत से लड़ रही थी। यह त्रासद अंत संकेत देता है कि समाज और व्यवस्था किन्नर समुदाय की आवाज को दबाने के लिए कितना क्रूर हो सकती है। भले ही हम तथाकथित सभ्य समाज के आदर्श मनुष्य खुद को मनुष्य कहते हैं किन्तु ये घटनाएँ हमारी पाशविक वृत्ति का बोधक हैं।

चित्रा मुद्गल का यह उपन्यास हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श को मुख्यधारा में लाने का एक साहसी प्रयास है। यह उपन्यास समाज के उस तबके की आवाज बनता है, जिसे लंबे समय तक अनदेखा किया गया। लेखिका ने किन्नर जीवन की संवेदनाओं को इतनी गहराई से व्यक्त किया है कि पाठक स्वयं उनकी पीड़ा और संघर्ष को महसूस करने लगता है। उपन्यास का त्रासद अंत पाठक को न केवल झकझोरता है, बल्कि समाज की रूढ़ियों और क्रूरता पर सवाल उठाने के लिए प्रेरित करता है। “जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है लेकिन इतना बड़ा भी नहीं है कि तुम मान लो कि तुम धड़ का मात्र वही निचला हिस्सा भर हो। मस्तिष्क नहीं हो, दिल नहीं हो, धड़कन नहीं हो, आँख नहीं हो। तुम्हारे हाथ पैर नहीं हैं। हैं, हैं, सब वैसा ही है, जैसे औरों के हैं।”¹³

निष्कर्ष :

पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा किन्नर समुदाय के जीवन की यथार्थवादी और मार्मिक प्रस्तुति है। यह उपन्यास समाज की रूढ़ियों, किन्नर समुदाय के सामाजिक बहिष्कार और उनकी आंतरिक चुनौतियों को उजागर करता है। विनोद उर्फ बिन्नी का चरित्र एक प्रगतिशील और साहसी किन्नर के रूप में उभरता है, जो शिक्षा और आत्मसम्मान के माध्यम से अपने समुदाय के लिए एक नया रास्ता दिखाता है। हालांकि, उसका त्रासद अंत समाज एवं राजनीति के दोहरे चरित्र को रेखांकित करता है जहाँ विनोद की निर्मम हत्या कर दी जाती है और पूनम जिंदगी और मौत बीच अस्पताल में अपनी शारीरिक एवं मानसिक पीड़ा से जूझ रही है। अंत में विनोद की माँ द्वारा अखबार में छपवाये गये माफीनामे का जिक्र भी है किन्तु अब बहुत देर हो

चुकी है। उपन्यास में भले ही पाठक विनोद को न बचा पाया हो किन्तु एक सजग एवं संवेदनशील पाठकीय दायित्व का निर्वहन करते हुए हम किन्नर समुदाय के साथ होने वाले अन्याय को रोक सकते हैं। उनका आत्मसम्मान एवं सामाजिक स्वीकृति जिस दिन हमारी प्रतिबद्धता बनेगी उस दिन वे हमारे साथ विद्यालय जाएँगे, हमारे पड़ोस में रहेंगे, हमारे साथ काम करेंगे और हमारे बीच उनका भी परिवार होगा, घर होगा। चित्रा मुद्गल ने इस उपन्यास के माध्यम से न केवल किन्नर समुदाय की पीड़ा की मुखर अभिव्यक्ति की है, बल्कि समाज को उसकी संवेदनहीनता एवं मानवीय मूल्यों के पतन का आईना भी दिखाया है। यह उपन्यास हिंदी साहित्य में एक मील का पत्थर है, जो सामाजिक परिवर्तन और मानवीय संवेदनाओं की वकालत करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाश, 2020, पृ सं.42
2. शेखर एक जीवनी, पहला भाग, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, 2016, पृ सं.76
3. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाश, 2020, पृ सं.11
4. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाश, 2020, पृ सं.185
5. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाश, 2020, पृ सं.42
6. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाश, 2020, पृ सं.33
7. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाश, 2020, पृ सं.110
8. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाश, 2020, पृ सं.187
9. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाश, 2020, पृ सं.157
10. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाश, 2020, पृ सं.86
11. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाश, 2020, पृ सं.187
12. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाश, 2020, पृ सं.186
13. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाश, 2020, पृ सं.50

कोमल खलखो

शोधार्थी, राँची विश्वविद्यालय, राँची

मो0- 9155343338

कोमल खलको

पता- मकान सं. 34115, रोड नं 6, गितिलपी मानगो,

आजादनगर, जवाहरनगर, जमशेदपुर, पूर्वी सिंहभूम,

पिन-832110, झारखंड

सारांश:

वैदिक सभ्यता पर्यावरण के प्रति संवेदनशील थी। वैदिक सभ्यता ने पर्यावरण की उपस्थिति और गुणवत्ता को हमेशा महत्व दिया। वैदिक सभ्यता प्रकृति और पर्यावरण के प्रति सजग थी। जानवरों, पक्षियों, पेड़ों और भौगोलिक संस्थानों को देवी देवीताओं का दर्जा दिया जाता था। और इन सबकी पूजा के साथ साथ इनके संरक्षण का भी ध्यान रखते थे। पीपल का पेड़ अधिक आक्सीजन छोड़ता है। वैदिक परंपरा में इसे पवित्र घोषित किया गया साथ ही इसका अस्तित्व सुनिश्चित करके पर्यावरण संरक्षण प्रदान किया गया। वेद शब्द ज्ञानार्थक विद् धातु “विद् ज्ञाने” से घञ् “अ” प्रत्यय करने पर बनता है। इसका आशय है ज्ञान। अतः वेद शब्द का अर्थ होता है— ज्ञान का संग्रह—ग्रंथ। प्राचीन ऋषियों ने जो ज्ञान अपनी आर्श दृष्टि से प्राप्त किया था, उसका संग्रह वेदों में है। भारतीय ऋषियों ने ‘वसुदेव कुटुम्बकम्’ के रूप में इस विश्व को एक पारिभाषिक इकाई के रूप में देखा है। हमारे संतो की दृष्टि में पर्यावरण और शांति का चरित्र ‘वैश्विक’ था। और इसलिए उनके मुख से माता भूमि: पुत्रोहं पृथिव्या” का गान फूट पड़ा था। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य, त्रुतिकी श्रेणी में आता है। रामायण भगवद्गीता, समेत महाभारत तथा उपनिषद् जैसी रचनाएँ स्मृति परंपरा के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं।

मुख्य बीज—वैश्विक, औद्योगिककरण, चैतन्यता, साम्यावस्था, परिदृश्य, प्रतिपादित, संवेदनशील, अनुकूलतम, संरक्षण

प्रस्तावना

वैदिक सभ्यता पर्यावरण के प्रति संवेदनशील थी। इस सभ्यता ने पर्यावरण की उपस्थिति और गुणवत्ता को हमेशा महत्व दिया। वैदिक सभ्यता प्रकृति और पर्यावरण के प्रति सजग थी। जानवरों, पक्षियों, पेड़ों और भौगोलिक संस्थानों को देवी देवीताओं का दर्जा दिया जाता था। और इन सबकी पूजा के साथ साथ इनके संरक्षण का भी ध्यान रखते थे। पीपल का पेड़ अधिक आक्सीजन छोड़ता है। वैदिक परंपरा में इसे पवित्र घोषित किया गया साथ ही इसका अस्तित्व सुनिश्चित करके पर्यावरण संरक्षण प्रदान किया गया।

वेद शब्द ज्ञानार्थक विद् धातु “विद् ज्ञाने” से घञ् “अ” प्रत्यय करने पर बनता है। इसका आशय है ज्ञान। अतः वेद शब्द का अर्थ होता है— ज्ञान का संग्रह—ग्रंथ। प्राचीन ऋषियों ने जो ज्ञान अपनी आर्श दृष्टि से प्राप्त किया था, उसका संग्रह वेदों में है।

पर्यावरण शब्द परि+आवरण से बना है। इसका अर्थ है—हमारे चारों तरफ का वातावरण जिससे हम ढके हुए हैं। जे. एस.

रॉस के अनुसार : पर्यावरण एक बाह्य शक्ति है जो हमें प्रभावित करती है। पर्यावरण मानव को चारों ओर से घेरे हुए होता है। तथा पर्यावरण मनुष्य के जीवन और क्रियाओं पर भी प्रभाव डालता है। इसमें दिशाएँ सम्मिलित हैं, जो मानव के जीवन को प्रभावित करता है। एच फिटिंग के अनुसार जीवों की परिस्थितिकि (Ecological) कारकों का योग पर्यावरण है।

भारतीय ऋषियों ने ‘वसुदेव कुटुम्बकम्’ के रूप में इस विश्व को एक पारिभाषिक इकाई के रूप में देखा है। हमारे संतो की दृष्टि में पर्यावरण और शांति का चरित्र ‘वैश्विक’ था। और इसलिए उनके मुख से माता भूमि: पुत्रोहं पृथिव्या” का गान फूट पड़ा था। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य, त्रुतिकी श्रेणी में आता है। रामायण, भगवद्गीता, समेत महाभारत तथा उपनिषद् जैसी रचनाएँ स्मृति परंपरा के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। इस समय सम्पूर्ण विश्व पर्यावरण प्रदूषण समस्याओं के जाल में घिरा है। वर्तमान में पर्यावरण विषय सिर्फ स्थानीय न होकर सम्पूर्ण भूमण्डल पर चर्चा का विषय बना हुआ है। भारतीय संस्कृति में पर्यावरण को वैदिक काल से ही अत्यधिक महत्व दिया गया है। वेदों में कहा गया है कि मनुष्य शरीर पृथ्वी, जल, अंतरिक्ष अग्नि और वायु जैसे पंच तत्वों से निर्मित है यदि इनमें एक भी तत्व दूषित है तो इसका प्रभाव मानव जीवन पर अवश्य पड़ेगा। यही कारण है कि प्राचीन काल से ही हमारे पूर्वजों ने प्रकृति को देवी-देवताओं का स्थान दिया है। सूर्य, चंद्रमा अग्नि, व नदियों को देवी देवताओं के रूप में पूजा जाता था। पेड़ों जैसे पीपल वट वृक्ष व केला को आज भी पूजा जाता है।

पर्यावरण जीवन जगत का आधार अर्थात् जीवनयापन का स्त्रोत है जो पृथ्वी पर अनादिकाल से मानव, जीव-जन्तु और वनस्पति को आधार प्रदान कर रहा है। प्राचीन समय में पर्यावरण अध्ययन और अध्ययन का गौण पक्ष रहा है। प्रकृति से उनका सामंजस्य था तथा उस समय प्राकृतिक संसाधनों का सन्तुलित चक्र बना हुआ था परन्तु आज भौतिकतावादिता की अंधी दौड़ ने और औद्योगिककरण ने मानव को स्वार्थी बना दिया है। मानव ने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए अधिकाधिक संसाधनों का दोहन, नवीनत तकनीकों का उपयोग नगरीकरण आदि से पर्यावरणीय संकट की स्थिति उत्पन्न कर ली है। वेदों में वृक्ष, वनस्पति औशधि लता आदि का भी सम्मान पूर्वक उल्लेख मिलता है।

वैदिक ऋषि पर्यावरण की दृष्टि से इनका महत्व स्वीकारते

हुए “नमो वृक्षेभ्यः” कहकर इन्हे श्रद्धापूर्वक नमस्कार करते हैं। इतना ही नहीं वृक्ष वन औशधियों का संरक्षण करने वालों को वह “वनानां पत्ये नमः” तथा “औशधीना पतये नमः” कहकर नमन करते हैं।

1 यजुर्वेद, 16.17

2 तदेव 16.18

3 तदेव 16.19

प्रकृति के साथ सद्भाव में रहना हमारे लिए नया नहीं है। प्रकृति के साथ सामंजस्य भारत की परंपरा और संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। भारतीय दर्शन में है कि “सम्पूर्ण प्राकृतिक संसार सद्भाव में रहे”। जो संस्कृत के प्रसिद्ध वाक्यांश “वसुदेव कुटुम्बकम्” में परिलक्षित होता है। जिसका अर्थ है “सम्पूर्ण पृथ्वी एक परिवार है। वाक्यांश का उल्लेख महाउपनिषद् में मिलता है। जो अथर्ववेद का कोई हिस्सा हैं हमारा प्राचीन साहित्य ऐसे उदाहरणों से भरा है। जहाँ मूल्य और प्रकृति के प्रति मनुष्य संवेदनशीलता की महिमा और सिद्धांत की स्थिरता अपने सबसे अच्छे रूप में स्थापित की गई थी वैदिक काल के दौरान जंगल वनस्पति के उत्पादक व साथ ही सुरक्षात्मक पहलू दोनों पर बल दिया गया। यह वह समय था जब पवित्र जंगलों व गुफाओं, पवित्र गलियारों व विभिन्न प्रकार की जातीय-वानिकी प्रथाओं जैसी सांस्कृतिक परिदृश्य की अवधारणाएँ विकसित हुई।

वैदिक ग्रंथों में पर्यावरण के वृहद स्वरूप, उसके संरक्षण तथा चैतन्यता पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला गया है। इसमें पर्यावरण को प्रचलित संकल्पना के स्थान पर इसके सम्पूर्ण सचेतन एवं विशद स्वरूप का वर्णन है। तथा पर्यावरण संरक्षण के लिए लोगों की जिम्मेदारी भी तय की गई है। पर्यावरण का संतुलन पृथ्वी के अस्तित्व व जीवन से सीधा जुड़ा हुआ है। इसलिए पृथ्वी की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए वैदिक ऋषियों ने प्राणी और पृथ्वी के सम्बन्ध को अत्यंत संवेदनशील घोषित किया और कहा कि “माता भूमि पूत्रोऽहं पृथिव्याम्” अर्थात् पृथ्वी मेरी माता है। और मैं उसका पुत्र हूँ।

4. अथर्ववेद 12.01.12

वैदिक काल में यद्यपि सृष्टि साम्यावस्था में थी जीवन यापन की अनुकूलतम अवस्थाएँ थी, या यूँ कहो कि तत्कालीन वातावरण पूर्ण व्यवस्थित था और पर्यावरण प्रदूषण जैसी समस्या नहीं थी

तथापि मानव स्वभाव को जानने वाले क्रान्तदर्शी ऋषियों ने पर्यावरण प्रदूषण की समस्या के प्रति मानव को पहले ही सचेत कर दिया था। “ईशावास्यं इदं सर्वं” अर्थात् जगत के कण कण में ईश्वर है। ईश्वर ही इस सारे जग की संचालन शक्ति उर्जा का रूप है प्रकृति के कण कण में उसका वास है। अतः यहाँ इस संसार को त्यागते हुए भोगों यानि उतना ही लो जितना तुम्हारे जीने के लिए आवश्यक है।

5 यजुर्वेद, 1.40

निष्कर्ष:

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि नैतिक मूल्यों में विघटन, बेहताशा उपभोग और व्यर्थ का उत्पादन पर्यावरण प्रदूषण का मुख्य कारण है। काफी पहले प्रदूषण की समस्या इतनी बड़ी समस्या नहीं थी। सारा का सारा वैदिक और पौराणिक साहित्य कभी नदियों, पर्वतों, झीलों, वृक्षों, जीव-जन्तुओं और मेघों आदि की पूजा करता था। नई सदी में जब विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का त्वरित परादुभाव हुआ तो वह भौतिक उन्नति के साथ साथ मानव की सोच में एक युगांतकारी परिवर्तन भी लेकर आया, सदियों तक प्रकृति का साधक रहने वाला अब उसका उपभोक्ता बन गया है। उसके लिए अब प्रकृति साध्य के बजाए एक साधन मात्र ही बन कर रह गई है। बहुत कुछ मिला परंतु उससे भी अधिक कहीं कुछ खो गया है। ओ३म द्यो शांति अंतरिक्ष शांतिः पृथ्वी शांतिराप शांति औशधयः शांति वनस्पतयः शांति सामा शांतिरेधि का पाठ पढ़ने वाला मानव शांति की खोज में भटकने लगा है। वेद मंत्रों के अनुसार जो पर्यावरण देव अग्नि वायु जल आकाश पृथ्वी से आच्छादित है तथा जो औशधियों एवं वनस्पतियों में भी विद्यमान है। वे पर्यावरण देव अब हमें डराने लगे हैं। प्राचीन संस्कृति का मूलधार प्रकृति के साथ तारतम्य रखना था। आज हम लोगों को आत्मावलोकन और आत्म सुधार करने अर्थात् अपनी मानसिक दुर्बलताओं को दूर करने की आवश्यकता है हमें जीव मातृ एवं प्रकृति के साथ भी मानवपूर्ण संबंध स्थापित करने होंगे। पर्यावरण से संबंधित मुद्दों पर हमें अधिक संवेदनशील होकर कार्य करना होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. कपिल देव द्विवेदी, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, अष्टम संस्करण, 2021, प्रकाशक विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ संख्या 1 अध्याय 1
2. डॉ. कपिल देव द्विवेदी, वेदों में विज्ञान, द्वितीय संस्करण 2004,

प्रकाशक विश्वभारती अनुसंधान परिषद, अध्याय 10, पृष्ठ संख्या 352

- 3 लेखक बाल्मीकि प्रसाद सिंह, भारतीय संस्कृति: कुछ तथ्य कुछ परिप्रेक्ष्य, प्रकाशक राजकमल प्रकाशन, अध्याय 1, पहला संस्करण 1999
- 4 लेखक बाल्मीकि प्रसाद सिंह, संस्कृति राज्य कलाएँ, और उनसे परे, प्रकाशक राजकमल प्रकाशन, अध्याय 1, पहला संस्करण 1999
- 5 सरिता दूबे, ग्रामीण महिलाओं में पर्यावरणीय संबंधी चेतना: एक समाज शास्त्रीय अध्ययन, 2001, शोध ग्रंथ बुन्देलखंड विश्वविद्यालय झाँसी
- 6 लेखक तरसेन कुमार शर्मा, नूरपुर, संस्कृति में वैदिक काल से दिया गया पर्यावरण का महत्व, जागरण समाचार पत्र, प्रकाशन 20 अक्टूबर 2021, बुधवार,
- 7 लेखक अविकल सोमवंशी, हिन्दू दर्शन और पर्यावरण प्रदूषण, डाउन टू अर्थ समाचार पत्र, प्रकाशित 18 जून 2013
- 8 लेखक प्रतिभा खटुमरा, लेख यजुर्वेद आधुनिक पर्यावरण समस्या का वैदिक समाधान, सनातन धर्म राजकीय महाविद्यालय ब्यावर 2019,
- 9 लेख, प्राकृतिक संसाधनों का संपोषित प्रबंधन, पृष्ठ 301, 302, अध्याय 6,
- 10 लेखक डॉ. उमा शर्मा जैन, प्रदूषण नैतिकता, विज्ञान और धर्म, वार्षिक पत्रिका, मंथन, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान रुडकी, अंक 15, 2017, पृष्ठ 9,10
- 11 लेखक डॉ. यतींद्र कुमार कटारिया, वैदिक दृष्टिकोण में पर्यावरण संचेतना एवं संरक्षण, विधालंकार'' पत्रिका मंथन, अंक 15, 2017, पृष्ठ 13,14

शोधार्थी

सुनीति त्यागी

पी-160

शिवालिक नगर, बी.एच.एल

हरिद्वार

उत्तराखंड.249403

8865014741

शोध निर्देशिका

डॉ पूनम शर्मा

आई आई एन टी

विश्वविद्यालय, मेरठ

सारसंक्षेप

ब्रिटिश शासनकाल में इलाहाबाद केवल प्रशासनिक और शैक्षिक केंद्र ही नहीं था, बल्कि यह सामाजिक सुधार आंदोलनों का भी एक महत्वपूर्ण स्थल रहा। इस अवधि में जातिवाद, छुआछूत, महिला शिक्षा, बाल विवाह, और विधवा पुनर्विवाह जैसे सामाजिक मुद्दों पर गहन विमर्श और सक्रिय प्रयास हुए। इलाहाबाद विश्वविद्यालय और स्थानीय प्रेस ने जन-जागरूकता फैलाने में विशेष भूमिका निभाई। साथ ही आर्य समाज, ब्रह्म समाज तथा अन्य सुधारवादी संगठनों ने सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ अभियान चलाए। कई स्थानीय नेताओं और समाज सुधारकों ने आधुनिक विचारधारा को बढ़ावा दिया, जिससे इलाहाबाद की सामाजिक चेतना में व्यापक परिवर्तन हुए। यह शोधपत्र ब्रिटिश शासनकाल के दौरान इलाहाबाद में हुए प्रमुख सामाजिक सुधार आंदोलनों, उनके स्वरूप, प्रभाव और सीमाओं का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द रू इलाहाबाद, ब्रिटिश शासनकाल, सामाजिक सुधार आंदोलन

प्रस्तावना

ब्रिटिश शासनकाल में इलाहाबाद का ऐतिहासिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रहा। प्रशासनिक केंद्र होने के कारण यहां विविध विचारधाराओं का आदान-प्रदान सहज संभव था। इस कालखंड में भारतीय समाज अनेक कुरीतियों और रूढ़ियों से जकड़ा हुआ था, जैसे जातिवाद, छुआछूत, बाल विवाह, सती प्रथा, और महिलाओं की शिक्षा से वंचित रहने की स्थिति। पश्चिमी शिक्षा और आधुनिक विचारधारा के प्रसार ने परंपरागत सामाजिक ढांचे को चुनौती दी और सुधार की आवश्यकता को उजागर किया।

इलाहाबाद में सामाजिक सुधार आंदोलनों का उदय इसी पृष्ठभूमि में हुआ। आर्य समाज, ब्रह्म समाज तथा अन्य संगठनों ने कुरीतियों के विरुद्ध जन-जागरूकता अभियान चलाए। इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना ने नई सोच और प्रगतिशील विचारों को बढ़ावा देने में अहम भूमिका निभाई। स्थानीय प्रेस और साहित्य ने भी सुधारवादी विचारों को जन-जन तक पहुंचाने में सहयोग किया। साथ ही, नेहरू परिवार और अन्य प्रबुद्ध नेताओं की सक्रिय उपस्थिति ने सामाजिक जागरूकता को नई दिशा दी। यह दौर एक संक्रमण काल था, जिसमें परंपरा और आधुनिकता के बीच संघर्ष और समन्वय दोनों देखने को मिले।

जब इलाहाबाद में अंग्रेजों का अधिकार हुआ तो उस समय

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ओर से भारत का गवर्नर जनरल था। वस्तुतः अकबर के समय में इलाहाबाद के अन्तर्गत 10 सरकारें (जिले) और 177 परगने थे, परन्तु नवम्बर 1801 में जब यह सूबा अंग्रेजों को मिला तो इसमें केवल 5 सरकारें थीं, जिनके परगनों की संख्या 26 थी। वे 5 सरकारें यों थी—इलाहाबाद कड़ा, मानिकपुर, भटघोरा (बारा) और कोड़ा। उस समय फतेहपुर—हंसवा भी इलाहाबाद ही में सम्मिलित था, परन्तु परगना किवाई इससे पृथक् था। सन् 1916 में परगना किवाई अवध से लेकर प्रयाग के जिले में सम्मिलित किया गया और 1825 में सरकार ने कड़ा और कोड़ा, कुछ पुराने परगनों को लेकर एक पृथक् जिला 'फतेहपुर' को बनाया। तब से इस जिले में चौदह परगने रह गये जो अब तक हैं। नौ तहसीलों में बारा की तहसील अक्टूबर 1925 में तोड़ कर करछना में मिला दी गयी है। शेष तहसीलों के स्थान में केवल इतना परिवर्तन हुआ कि तहसील में मंझनपुर सन् 1843 के लगभग तक 'पश्चिम सरीरा' में और तहसील सिराथू सन् 1865 तक दारानगर में रही थी। सन् 1841 से 1862 तक जिले की सीमा में इतना हेर-फेर हुआ कि कुछ गाँव परगना कड़ा से फतेहपुर में और खैरागढ़ से मिर्जापुर के जिले में मिलाये गये हैं। इलाहाबाद के सबसे पहले कलक्टर मिस्टर ए० अहमूटी थे, जिनके नाम से 'मुट्ठीगंज' का मुहल्ला बसा हुआ है। मार्च सन् 1829 में डिविजनल कमिश्नरी स्थापित हुई। मिस्टर राबर्ट बालो यहाँ के पहले कमिश्नर हुए थे। वस्तुतः अंग्रेजी राज्य बंगाल से आरम्भ हुआ था। इसलिए यहाँ का शासन भी पहले कुछ दिनों तक बंगाल के ही शासकों द्वारा होता रहा। सन् 1836 में 41 जिलों का एक अलग प्रान्त 'पश्चिमोत्तर देश' के नाम से बनाया गया और उसकी देख-रेख के लिए प्रयाग में एक लेफ्टीनेंट गवर्नर नियुक्त किया गया, परन्तु साल पीछे राजधानी इलाहाबाद के स्थान में आगरा बना दी गयी और सन् 1857 के बलवे तक वहीं रही। हाईकोर्ट सन् 1843 तक यहाँ रहा, इसके पश्चात् आगरा चला गया, सन् 1868 में पुनः इलाहाबाद में आ गया।

सन् 1857 में इलाहाबाद में अंग्रेजों की सेना बिल्कुल नहीं थी, केवल एक देशी पलटन नं०-6 कर्नल सिमसन के कमांड में थी। इसके अतिरिक्त कुछ देशी तोपची थे। किले में भी इसी पलटन नं०-6 के कुछ सिपाही नियुक्त थे। जब अफसरों को अन्य स्थानों में विद्रोह फैलने का समाचार मालूम हुआ तो उन्होंने तोपखाने के 60 अंग्रेजों और फिरोजपुर रेजीमेंट के 200 सिक्खों को तुरन्त बुलाकर किले में ठहरा दिया। 12 मई को मेरठ की कारतूस तोड़नेवाली खबर प्रयाग की जनता में पहुँची। उसी समय से नगर में बेचौनी फैल

गयी। बाजार में खाने-पीने की चीजों की दर बहुत बढ़ गयी। रोज नाना प्रकार की गप्पें उड़ाया करती थीं। बलवाइयों के मुखिया अपने साथियों को उत्तेजित कर रहे थे, परन्तु अभी तक नगर में उपद्रव छिड़ा नहीं था। एक दिन कुछ नावें आटे से लदी हुई यमुना में जा रही थी। किनारे पर उन्होंने लंगर डाला। मजिस्ट्रेट ने नाववालों को बनियों के हाथ माल बेचने के लिए हुक्म दिया। इसपर बड़ा शोर मचा। सारा बाजार बन्द हो गया और यह संदेह हुआ कि अब यहाँ भी जल्दी ही उपद्रव मचाना चाहता है। शहर के बदमाशों को सिपाहियों के बिगड़ने का हाल मालूम न था, क्योंकि मजिस्ट्रेट ने इस बात को छिपाने के लिए बहुत प्रबन्ध कर रखा था, लेकिन एक दिन पलटन नं०-6 के सिपाहियों ने दो मेवातियों को, जो लाइन में आये थे, छोड़ दिया। उन लोगों ने शहर के बदमाशों के बहकावों में बड़ा भाग लिया। 19 मई को सर हेनरी लारेंस ने कुछ सवार प्रतापगढ़ के जिले के अधिकारियों की सहायता के लिए भेजे। ये लोग खजाना और जेल के रक्षा के लिए नियुक्त किये गये। उस समय यहाँ के खजाने में तीस लाख रुपये के लगभग थे। उस के किले में भेजने के लिए गाड़ियाँ मँगवाई गयी, परन्तु अधिकारीगण बड़े असमंजस में थे। इधर पलटन नं०-6 के सिपाहियों के साथ भेजना उचित न समझा गया। उधर यह संदेह था कि किले में इतना रुपया देखकर सिक्खों के मुँह में कहीं पानी न भर आये। सर हेनरी लारेंस का तार आया कि सिक्खों का भी विश्वास न किया जाय, केवल अंग्रेज सेना से किले की रक्षा की जाय। खजाना जहाँ का तहाँ रखा रहा, वह कहीं भेजा गया। 6 जून 1857 को 9 बजे जैसे ही तोप दगी, इन सिपाहियों ने एक अतिशबाजी का बाण छोड़ा। उसके जवाब में ठीक वैसा ही वाण छावनी से छूटा। बस उसी समय से विद्रोह का आरम्भ हो गया। दारागंज से दोनों तोपें लेकर ये लोग छावनी की ओर चल दिये, परन्तु अँधेरे में वे किसी तरह भागकर गंगा के रास्ते किले में पहुँच गये। लेफ्टीनेंट हारवर्ड घोड़ा दौड़ाकर 'अलोपी बाग' पहुँचे, जहाँ लेफ्टीनेंट एलेक्जेंडर अपनी सेना लिए खड़े थे। उनके सिपाही भी बिगड़ गये और अन्त में वे मारे गये। लेफ्टीनेंट हारवर्ड वहाँ से भागकर किसी तरह किले में पहुँचे। वहाँ इस खबर के पहुँचाते ही पहले सिक्ख अलग एक बैरक में कर दिये गये थे। तत्पश्चात् पलटन नं०-6 के सिपाहियों को डराकर उनसे हथियार रखवा लिये गये और वे किले से बाहर निकाल दिये गये। इस प्रकार इलाहाबाद में यह उपद्रव लगभग सवा वर्ष तक चला। विद्रोहियों को पकड़ा गया, उन पर मुकद्मा चला, दोषियों को दण्डित किया गया और उनकी जमीन-जायदाद जब्त कर ली गयी।

सन् 1892 में यहाँ दूसरी बार कांग्रेस की बैठक मिस्टर उमेशचन्द्र बनर्जी के सभापतित्व में उसी दरभंगा कौंसिल में हुई। इस बार पण्डित विश्वम्भरनाथ जी वकील हाईकोर्ट स्वागताध्यक्ष हुए थे। सन् 1910 में यहाँ तीसरी बार कांग्रेस का अधिवेशन किले के उत्तरी मैदान में हुआ था, जिसके अध्यक्ष सर विलियम वेडरबर्न थे और पण्डित सर सुन्दरलाल जी ने स्वागत समिति के सभापति का आसन ग्रहण किया था। उसी समय यहाँ सरकार की ओर से एक प्रदर्शनी भी हुई थी, इलाहाबाद के इतिहास में चिर स्वरवीय रहेगी। उसके पहले भी सन् 1964 में यहाँ एक प्रदर्शनी का होना पाया जाता है, परन्तु उसमें और इसमें आकाश-पाताल का अन्तर था। यह प्रदर्शनी इतनी बड़ी तैयारी और समारोह के साथ हुई थी कि इसको एक प्रान्तिक प्रदर्शनी के स्थान में अखिल भारतीय प्रदर्शनी कहना अनुचित न होगा। यह विशाल प्रदर्शनी किले के पश्चिम यमुना किनारे लगभग 200 बीघा भूमि पर दिसम्बर सन् 1910 से तीन महीने तक बराबर खुली रही थी। इसको लगभग आठ लाख दर्शकों ने देखा और इस पर साढ़े इक्कीस लाख रुपये के लगभग व्यय हुए थे। भारतवर्ष में पहले-पहल इसी अवसर पर हवाई जहाज उड़ाये गये थे। इस प्रदर्शनी को देखने के लिए इस देश के समस्त राज्यों-महाराजों और गणमान्यों के अतिरिक्त अन्य देशों से भी बहुत लोग आये थे जिनमें जर्मनी के युवराज भी थे।

इस प्रदर्शनी में सैकड़ों अस्थायी सुन्दर-सुन्दर भवन बनाये गये थे, जिनके समूह से वहाँ एक छोटा नगर सा बसाया गया था। बीच में एक घण्टाघर था, जिसका प्रतिरूप चौक घण्टाघर है। सन् 1917 में इलाहाबाद में दशहरा और मुहर्म्म एक साथ पड़े। नवमी तक हिन्दू और मुसलमानों के दल अपने-अपने नियत समय पर निकलते रहे। दशमी के दिन शाम को अतरसुइया के आगे दोनों में झगड़ा हो गया। कई दिनों बाद शान्ति स्थापित हुई। इसके पीछे 24 अप्रैल 1923 को करारी में शिया-सुन्नियों में लड़ाई हुई, जिसमें गोली चलने से कई लोगों की मृत्यु हुई और कई घायल हो गये। सन् 1924 में दशहरे के अवसर पर हिन्दू-मुसलमानों से पुनः दंगा हुआ जो लगभग एक सप्ताह तक रहा। इसी साल से, मस्जिदों के सामने बाजे का प्रश्न उपस्थित होने से इलाहाबाद में दशहरा और भरत-मिलाप स्थगित हो गये थे।

इसके पश्चात् सन् 1926 में प्रयाग में हिन्दू-मुसलमानों में दो दंगे हुए। एक तो जून के महीने में जब बकरीद के दिन झूसी में झगड़ा हो जाने के कारण वहाँ से कुछ मुसलमानों की लाशें शहर में आयी थी। दूसरा, 12 सितम्बर को जब चौक में दधिकौंदो का दल निकला था। अतः इलाहाबाद में अनेक राजनीतिक घटनाओं का केन्द्र रहा है। स्वतन्त्रता के पश्चात् भी यह उत्तर

प्रदेश राज्य की राजधानी माना जाता रहा, सरकारी कागजों में अब तक लिखा चला आता है, पर वह नाम मात्र ही के लिए। सर हारकोर्ट बटलर के समय में प्रांतिक कौंसिल का विशाल भवन इलाहाबाद के स्थान लखनऊ में बनाने निश्चित हुआ। यद्यपि यहाँ के लोगों ने उस समय इसका घोर विरोध किया था, फिर धीरे-धीरे अनेक प्रान्तिक दफ्तर यहाँ से उठकर लखनऊ चले गये, यहाँ तक कि सेक्रेट्रिएट भी अब यहाँ से लखनऊ चला गया। सामाजिक सुधार ब्रिटिश शासनकाल में इलाहाबाद (वर्तमान प्रयागराज) का भारतीय इतिहास में विशेष स्थान रहा। यह न केवल प्रशासनिक और शैक्षिक केंद्र बना, बल्कि सामाजिक सुधार आंदोलनों की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण रहा। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में और 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में यहाँ अनेक सुधारवादी विचारधाराओं ने जन्म लिया और समाज में व्याप्त कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठाई। ब्रिटिश शासन ने एक ओर जहां शोषण और दमन की नीतियाँ अपनाई, वहीं दूसरी ओर पश्चिमी शिक्षा और आधुनिक विचारधारा के प्रसार ने सामाजिक चेतना को भी जागृत किया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना (1887) ने प्रगतिशील सोच को बल दिया। यहाँ पढ़ने वाले छात्रों और शिक्षकों ने न केवल राष्ट्रीय आंदोलन में बल्कि सामाजिक सुधार में भी सक्रिय योगदान दिया। इलाहाबाद में प्रमुख सामाजिक समस्याओं में जातिवाद, छुआछूत, बाल विवाह, विधवाओं की दयनीय स्थिति और महिलाओं की शिक्षा की उपेक्षा शामिल थीं। इन बुराइयों के उन्मूलन के लिए कई संगठनों और व्यक्तित्वों ने प्रयास किए। आर्य समाज की इलाहाबाद शाखा ने छुआछूत के विरोध, विधवा पुनर्विवाह के प्रचार और स्त्री शिक्षा के प्रसार में बड़ी भूमिका निभाई। आर्य समाज के कार्यकर्ताओं ने गांव-गांव में जाकर जनजागृति अभियान चलाए और समाज में सुधार की अलख जगाई। ब्रह्म समाज ने अंधविश्वास, मूर्तिपूजा और जातीय भेदभाव का विरोध किया। इसके प्रचारकों ने सभाओं, भाषणों और साहित्य के माध्यम से समाज को बदलने की प्रेरणा दी। इलाहाबाद में ब्रह्म समाज के कार्यक्रमों में शिक्षित वर्ग की सक्रिय भागीदारी होती थी। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राध्यापक और छात्र भी समाज सुधार आंदोलनों से जुड़े। अनेक स्वतंत्रता सेनानियों ने इन आंदोलनों को समर्थन दिया। मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू जैसे नेता न केवल राजनीतिक दृष्टि से, बल्कि सामाजिक दृष्टि से भी बदलाव के पक्षधर थे। उन्होंने महिलाओं की शिक्षा और छुआछूत के खिलाफ आवाज उठाई।

इलाहाबाद के प्रेस ने भी इस चेतना को व्यापक किया। भारत

मित्र, अभ्युदय और अन्य पत्र-पत्रिकाओं में सामाजिक सुधार संबंधी लेख नियमित प्रकाशित होते थे। इन लेखों ने जनता के मन में प्रश्न और आत्ममंथन की भावना पैदा की। महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए कई विद्यालय स्थापित किए गए। गरीब और वंचित वर्ग के बच्चों को शिक्षा देने के प्रयास भी हुए। विधवा पुनर्विवाह का विचार धीरे-धीरे स्वीकार्य होने लगा। हालांकि परंपरावादी वर्ग का कड़ा विरोध सामने आया, फिर भी सुधार की लहर थमी नहीं। ब्रिटिश शासनकाल में इलाहाबाद का सामाजिक सुधार आंदोलन इस बात का उदाहरण है कि शिक्षा, जागरूकता और संगठनबद्ध प्रयासों से समाज में परिवर्तन लाया जा सकता है। इन आंदोलनों ने न केवल परंपरागत कुरीतियों को चुनौती दी, बल्कि एक नई प्रगतिशील पीढ़ी तैयार की। आज जब हम समानता और न्याय की बात करते हैं, तो इलाहाबाद के इन ऐतिहासिक प्रयासों को स्मरण करना आवश्यक है। उन्होंने भारतीय समाज के आधुनिकीकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया, जिसकी गूंज आज भी सुनाई देती है।

जातिवाद और छुआछूत के खिलाफ आवाज

भारतीय समाज में जातिव्यवस्था प्राचीन काल से चली आ रही थी। इसका आधार शुरु में कर्म और गुणों पर आधारित बताया जाता था, लेकिन समय के साथ यह कठोर भेदभाव में बदल गई। जातिवाद ने समाज को अनेक वर्गों में बांट दिया और कुछ जातियों को सम्मान और अधिकार प्राप्त हुए, जबकि अन्य जातियों को अपमान, तिरस्कार और छुआछूत का शिकार होना पड़ा। छुआछूत ने इंसानों के बीच असमानता की गहरी खाई बना दी। इन अन्यायपूर्ण प्रथाओं को खत्म करने के लिए अनेक सामाजिक सुधार आंदोलनों ने आवाज उठाई। 19वीं शताब्दी में शिक्षा और आधुनिक विचारधारा का प्रसार हुआ। इससे लोग सोचने लगे कि जाति के आधार पर भेदभाव अमानवीय और अन्यायपूर्ण है। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, स्वामी दयानंद सरस्वती, महात्मा गांधी, ज्योतिबा फुले, डॉ. भीमराव अंबेडकर जैसे अनेक महान व्यक्तित्वों ने जातिवाद और छुआछूत के खिलाफ आंदोलन चलाए। स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना कर कहा कि सभी मनुष्य समान हैं। उन्होंने वेदों का आधार लेकर जातिगत भेदभाव और मूर्तिपूजा का विरोध किया। उनके विचारों ने लोगों को नई दृष्टि दी। ब्रह्म समाज ने भी जातिवाद को कुरीति बताते हुए समानता की शिक्षा दी। महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले ने अछूत कहे जाने वाले समाज के लिए शिक्षा के द्वार खोले। उन्होंने सत्यशोधक समाज की स्थापना की, जो जातिवाद और छुआछूत के विरुद्ध संघर्ष का प्रतीक बना।

सावित्रीबाई फुले ने अछूत लड़कियों के लिए स्कूल चलाकर समाज को नई दिशा दी। महात्मा गांधी ने छुआछूत के खिलाफ व्यापक आंदोलन चलाया। उन्होंने अछूत शब्द के स्थान पर "हरिजन" शब्द दिया, जिसका अर्थ होता है "ईश्वर के लोग"। गांधीजी ने अपने आश्रम में हरिजनों को बराबरी का स्थान दिया और कहा कि छुआछूत मानवता के खिलाफ अपराध है। उन्होंने मंदिर प्रवेश आंदोलनों, सफाई कार्य और अछूतों के साथ घुलने-मिलने से समाज में बड़ा संदेश दिया। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने छुआछूत और जातिवाद के खिलाफ आजीवन संघर्ष किया। उन्होंने कहा कि मनुष्य का मूल्य उसकी जाति से नहीं, उसके कार्य से तय होना चाहिए। उनके नेतृत्व में अछूतों ने सार्वजनिक जलस्रोतों और मंदिरों में प्रवेश का अधिकार प्राप्त किया। संविधान सभा में अंबेडकर ने समानता और भेदभाव के खिलाफ कड़े प्रावधान बनाए। इन आंदोलनों का सबसे बड़ा प्रभाव यह हुआ कि समाज में जागरूकता फैली। अनेक लोग जातिवाद के विरोध में खड़े हुए। धीरे-धीरे शिक्षा और कानून के माध्यम से छुआछूत का प्रभाव कम हुआ। हालांकि आज भी कुछ जगहों पर जातिगत भेदभाव देखने को मिलता है, परंतु सुधार आंदोलनों ने इसकी जड़ें कमजोर कर दीं। जातिवाद और छुआछूत के खिलाफ संघर्ष भारत के इतिहास का गौरवपूर्ण अध्याय है। यह हमें सिखाता है कि समानता और भाईचारे के लिए संगठित प्रयास जरूरी हैं। सामाजिक सुधारकों का साहस और समर्पण आज भी प्रेरणा का स्रोत है।

निष्कर्ष

ब्रिटिश शासनकाल में इलाहाबाद का सामाजिक सुधार आंदोलन भारतीय इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस दौर में आधुनिक शिक्षा और जागरूकता के प्रसार ने परंपरागत सामाजिक ढांचे को चुनौती दी। एक ओर ब्रिटिश सत्ता ने अपने प्रशासनिक हितों के कारण कई बदलाव लागू किए, तो दूसरी ओर भारतीय समाज के भीतर जागरूक सुधारकों ने कुरीतियों और अन्यायपूर्ण प्रथाओं के विरुद्ध आवाज बुलंद की। इलाहाबाद, जो प्रशासनिक और न्यायिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण केंद्र था, यहाँ की सामाजिक चेतना को प्रभावित करने वाले अनेक कारक मौजूद थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना से शिक्षा का नया दौर शुरू हुआ। शिक्षित युवाओं और प्राध्यापकों ने सामाजिक सुधार के विचारों को फैलाया। उन्होंने नारी शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह, जातिवाद के विरोध और छुआछूत उन्मूलन जैसे मुद्दों पर जनता को जागरूक किया। आर्य समाज ने इलाहाबाद में समाज सुधार की दिशा में संगठित प्रयास किए। इसके सदस्यों ने

जनसभाएं, विचार गोष्ठियां और प्रचार अभियानों के माध्यम से छुआछूत के खिलाफ जनमत तैयार किया। ब्रह्म समाज ने अंधविश्वास, मूर्तिपूजा और जातिगत भेदभाव का विरोध कर सामाजिक समरसता का संदेश दिया। इनके प्रयासों से सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव आने लगा। इलाहाबाद में प्रेस का भी बड़ा योगदान रहा। समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं ने समाज सुधार के विचारों को जन-जन तक पहुँचाया। लेखों और संपादकीयों ने परंपरागत सोच पर प्रश्न उठाए और सुधारवादी विचारों का पक्ष लिया। इसके अतिरिक्त मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू जैसे नेता, जो स्वतंत्रता संग्राम के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन में भी विश्वास रखते थे, उन्होंने भी समाज में समानता और प्रगतिशील दृष्टिकोण को बल दिया। यद्यपि इन आंदोलनों को तत्काल व्यापक सफलता नहीं मिली, फिर भी उन्होंने दीर्घकालीन प्रभाव छोड़ा। जातिवाद के खिलाफ विचार मजबूत हुए। महिलाओं की शिक्षा की ओर समाज का दृष्टिकोण सकारात्मक हुआ। विधवा पुनर्विवाह जैसे विषयों पर चर्चा शुरू हुई। इन परिवर्तनों ने आगे चलकर स्वतंत्र भारत के संविधान में समानता और सामाजिक न्याय की अवधारणाओं को आधार प्रदान किया। इस प्रकार ब्रिटिश शासनकाल में इलाहाबाद में हुए सामाजिक सुधार आंदोलन केवल स्थानीय स्तर पर सीमित नहीं रहे, बल्कि उन्होंने सम्पूर्ण भारतीय समाज के विचारों और मूल्यों को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आज भी यह इतिहास हमें यह सिखाता है कि शिक्षा, संगठन और संकल्प के बल पर किसी भी कुरीति का अंत किया जा सकता है। सामाजिक सुधारकों के प्रयास हमें प्रेरणा देते हैं कि हम अपने समाज को और अधिक न्यायपूर्ण और समानतापूर्ण बनाने के लिए सतत प्रयासरत रहें।

संदर्भ सूची

- शर्मा, आर.एस. भारतीय समाज और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- त्रिपाठी, वी.एन. इलाहाबाद का इतिहास, प्रयाग पुस्तक भंडार, इलाहाबाद।
- सिंह, रघुनाथ. भारतीय सामाजिक सुधार आंदोलन, लोकभारती प्रकाशन।
- भारत मित्र और अभ्युदय – इलाहाबाद से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाएँ।
- श्रीवास्तव, शालिग्राम-प्रयाग प्रदीप, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, संस्करण-2016, पृ०-48.
- स्किनर-एक्सकर्शन इन इण्डिया, 1833, जिल्ड-2, लन्दन,

पृ०-253.

- श्रीवास्तव, शालिग्राम-प्रयाग प्रदीप, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, संस्करण-2016, पृ०-58.
- Majumdar] R-C- History of Modern India] डबलपससंद
Publishers IndiaA
- Nehru] Jawaharlal- An Autobiography] Penguin
Books |
- Official Website of Allahabad University Archives |

डॉ० सिद्धार्थ सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
शिवली नेशनल कॉलेज, आजमगढ़, उ०प्र०
Email&singhsiddharth0602@gmail.com



सारसंक्षेप

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) आज के शिक्षा क्षेत्र का अभिन्न अंग बन चुकी है। कक्षा कक्ष शिक्षण में ICT का प्रयोग शिक्षण को अधिक प्रभावी, रोचक और सहभागितापूर्ण बनाता है। इसके माध्यम से शिक्षक पारंपरिक ब्लैकबोर्ड पद्धति के साथ-साथ स्मार्ट बोर्ड, प्रोजेक्टर, ई-कंटेंट, ऑडियो-विजुअल साधन और ऑनलाइन संसाधनों का उपयोग कर सकते हैं, जिससे विद्यार्थियों की अवधारणात्मक समझ बढ़ती है। (ICT) आधारित शिक्षण से विद्यार्थियों में रचनात्मकता, समस्या-समाधान कौशल और आत्मनिर्भर अध्ययन की प्रवृत्ति विकसित होती है। इंटरनेट और डिजिटल टूल्स के माध्यम से वे अद्यतन ज्ञान और वैश्विक स्तर की सामग्री तक आसानी से पहुँच सकते हैं। यह विशेष रूप से विज्ञान, गणित, भाषा और सामाजिक विज्ञान जैसे विषयों में जटिल अवधारणाओं को सरल और स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने में सहायक है। शिक्षक के लिए भी एक महत्वपूर्ण साधन है, क्योंकि यह उन्हें विविध शिक्षण विधियों, मल्टीमीडिया प्रस्तुति और मूल्यांकन के लिए नए अवसर प्रदान करता है। यह शिक्षण-प्रशिक्षण प्रक्रिया को अधिक प्रभावी, आकर्षक और छात्रों के लिए सुलभ बनाने में मदद करता है। आईसीटी छात्रों को नवीनतम ज्ञान और जानकारी तक पहुँचने, सहयोग करने और अपनी गति से सीखने में सक्षम बनाता है। संक्षेप में, कक्षा कक्ष शिक्षण में ICT का प्रयोग न केवल शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाता है, बल्कि विद्यार्थियों को 21वीं सदी के कौशल, जैसे डिजिटल साक्षरता, आलोचनात्मक चिंतन और सहयोगी कार्य, से भी सुसज्जित करता है।

मुख्य शब्द सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) कक्षा कक्ष शिक्षण, स्मार्ट बोर्ड, ई-कंटेंट, ऑडियो-विजुअल साधन, ऑनलाइन संसाधन, रचनात्मकता, समस्या-समाधान कौशल, आत्मनिर्भर अध्ययन, डिजिटल टूल्स, डिजिटल साक्षरता।

प्रस्तावना

ICT ने शिक्षा को समय और स्थान की सीमाओं से मुक्त कर दिया है।

3. महान दर्शनिकों और बुद्धिजीवियों के विचार (Great Thinkers' Views)

महान विचारकों के शिक्षा संबंधी विचार आज ICT के माध्यम से साकार हो रहे हैं।

“अरस्तू” ने कहा था— “शिक्षा की जड़ें कड़वी होती हैं, पर फल मीठे होते हैं।” ICT इन जड़ों को मीठे फल तक पहुँचाने का

साधन हैं।

“सुकरात” के अनुसार— “शिक्षा किसी पात्र को भरना नहीं, बल्कि एक दीपक को प्रज्वलित करना है।” ICT उस दीपक की आधुनिक ज्योति हैं।

“डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम” ने कहा— “तकनीक वे पंख हैं जिन पर 21वीं सदी की शिक्षा उड़ान भरेगी।

“महात्मा गांधी का विचार था— “सच्ची शिक्षा वह है जो भीतर की श्रेष्ठता को बाहर लाए।” ICT विद्यार्थियों को अपनी क्षमता पहचानने का अवसर देता है।

“नेल्सन मंडेला” ने कहा— “शिक्षा सबसे शक्तिशाली हथियार है जिसमें आप दुनिया को बदल सकते हैं।” ICT इस हथियार को और तेज बनाता है।

“रवीन्द्रनाथ ठाकुर” ने कहा — “सर्वोच्च शिक्षा वह है जो जीवन को सम्पूर्ण अस्तित्व के साथ सामंजस्य में लाती है।” ICT यही सामंजस्य स्थापित करता है।

1 “अरस्तू (:Aristle)

*English "The roots of education are bitter, but the fruit is sweet"

Hindi: “शिक्षा की जड़ें कड़वी होती हैं, लेकिन उसके फल बहुत मीठे होते हैं।”

ICT इसी शिक्षा को मधुर और सरल बनाने का साधन है।

2- सुकरात (Socrates)

*English Education is the kindling of flame. not the filling of a vessel"

Hindi: “शिक्षा किसी पात्र को भरना नहीं, बल्कि एक दीपक को प्रज्वलित करना है।”

ICT उस दीपक का आधुनिक प्रकाश है जो ज्ञान को हर घर तक पहुँचाता है।

3. डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

*English "Technology is the wings on which education will fly in the 21st century"

Hindi: “तकनीक वे पंख हैं जिन पर 21 वीं सदी की शिक्षा उड़ान भरेगी।”

ICT इन पंखों को गति देता है।

4. महात्मा गांधी

*English "Real education in drawing out the best in yourself"

Hindi: सच्ची शिक्षा वह है जो हमारे भीतर की श्रेष्ठता को बाहर लाती है।”

ICT विद्यार्थियों को अपनी क्षमता को पहचानने का अवसर देता है।

5. नेल्सन मंडेला

***English Education is the most powerful weapon which you can use to change the world”**

***Hindi ^”** शिक्षा सबसे शक्तिशाली हथियार है जिससे आप दुनिया को बदल सकते हैं।”

ICT इस हथियार को और प्रभावशाली बनाता है।

6. “अल्बर्ट आइंस्टीन”

➤ **English:** "It is the supreme art of the teacher to awaken joy in creative expression and knowledge"

➤ **Hindi;** “शिक्षक की सर्वोच्च कला यह है कि वह सृजन और ज्ञान में आनंद की भावना जागृत करे”

➤ ICT शिक्षकों को इस कला को आधुनिक तकनीक से साकार करने में मदद करता है।

7. “बेंजामिन फ्रैंकलिन”

➤ ***English:** "Tell me and I forget, teach me and I may remember, involve me and I learn,"

➤ ***Hindi:*** मुझे बताओं तो मैं भूल जाता हूँ, मुझे सिखाओं तो शायद याद रखूँ, पर मुझे शामिल करो तो मैं सीख जाता हूँ।

➤ ICT विद्यार्थियों को सक्रिय रूप से सीखने में शामिल करता है।

8. “रवीन्द्रनाथ ठाकुर”

➤ ***English:*** The highest education is that which does not merely give information but makes our life in harmony with all existence."

➤ ***Hindi:*** “उच्चतम शिक्षा वह है जो केवल जानकारी नहीं देती, बल्कि जीवन को सम्पूर्ण अस्तित्व के साथ सामंजस्य में लाती है।”

➤ ICT इस सामंजस्य को तकनीक और मानवता के मेल से संभव बनाता है।

4. प्रेरक अनुच्छेद (Inspirational Paragraph)

21 वीं सदी में ICT शिक्षा की आत्मा बन चुका है। यह केवल एक तकनीक नहीं, बल्कि “ज्ञान का आधुनिक माध्यम” है जो शिक्षा और विद्यार्थी दोनों को जोड़ता है। ICT ने शिक्षा को “पुस्तक आधारित” से “प्रयोग आधारित” बना दिया है। यह विद्यार्थियों में जिज्ञासा, रचनात्मकता और आत्मविश्वास जगाता है, वहीं शिक्षकों को शिक्षण के लिए आधुनिक साधन प्रदान करता है। वास्तव में, ICT वह पुल है जो ज्ञान, नवाचार और मानवता को एक सूत्र में बाँधता है। आज के 21वीं सदी के शिक्षा-परिदृश्य में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (Information and Communication Technology – ICT) का महत्व असंदिग्ध है। वर्तमान समय में शिक्षा केवल पुस्तकों, ब्लैकबोर्ड और शिक्षक के व्याख्यान तक सीमित नहीं रह गई है, बल्कि यह अब डिजिटल संसाधनों, ऑनलाइन प्लेटफॉर्म, मल्टीमीडिया उपकरणों और इंटरैक्टिव शिक्षण पद्धतियों तक विस्तृत हो चुकी है। डिजिटल क्रांति ने शिक्षा के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया है, चाहे वह विद्यालयी स्तर हो, उच्च शिक्षा हो या फिर व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा। विद्यालयी स्तर पर विशेषकर कक्षा कक्ष शिक्षण में ICT का प्रयोग न केवल शिक्षण की गुणवत्ता को बढ़ाता है, बल्कि विद्यार्थियों की सीखने की क्षमता, विषय में रुचि, सृजनात्मकता और आलोचनात्मक चिंतन कौशल को भी प्रोत्साहित करता है। पारंपरिक शिक्षण प्रणाली में शिक्षक मुख्य ज्ञान-स्रोत होता था और विद्यार्थी उसकी कही बातों को ग्रहण करने वाले निष्क्रिय श्रोता। लेकिन (ICT) ने इस भूमिका को पूरी तरह परिवर्तित कर दिया है। अब शिक्षक केवल ज्ञान देने वाला ही नहीं, बल्कि सीखने की प्रक्रिया में मार्गदर्शक और सहयोगी की भूमिका निभाता है, वहीं विद्यार्थी भी सक्रिय सहभागी (Active Participant) बन गया है। इस परिवर्तन ने शिक्षा प्रणाली में लोकतांत्रिकता और सहभागिता का नया आयाम जोड़ा है। आज के समय में कक्षा-कक्ष केवल चार दीवारों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि डिजिटल कक्षाओं, वर्चुअल प्लेटफॉर्म और ऑनलाइन शिक्षण साधनों के माध्यम से विद्यार्थियों को वैश्विक ज्ञान तक पहुँचने का अवसर मिल रहा है।

कंप्यूटर, इंटरनेट, स्मार्ट बोर्ड, डिजिटल प्रोजेक्टर, ई-बुक, ई-क्लासरूम, वर्चुअल लैब, मल्टीमीडिया प्रेजेंटेशन, शैक्षिक ऐप्स और ऑनलाइन क्विज़ जैसे उपकरणों ने शिक्षण की विधियों को अधिक प्रभावी, रोचक और छात्र-केंद्रित बना दिया है। उदाहरण के लिए, गणित या विज्ञान जैसे कठिन विषयों की अवधारणाओं को समझने के लिए शिक्षक 3D मॉडल, एनिमेशन या वीडियो का उपयोग करते हैं, जिससे विद्यार्थियों को अमूर्त विचारों को ठोस

रूप में समझने में सुविधा होती है। इसी प्रकार इतिहास या भूगोल जैसे विषयों में फ्लैड आधारित दृश्य सामग्री और वर्चुअल टूर विद्यार्थियों को अतीत की घटनाओं और भौगोलिक स्थानों का प्रत्यक्ष अनुभव प्रदान करते हैं। इस तरह फ्लैड शिक्षा में व्यावहारिकता और जीवन्तता का समावेश करता है। इसके अतिरिक्त, डिजिटल प्लेटफार्मों पर उपलब्ध ई-कंटेंट, शैक्षिक पॉडकास्ट, वेबिनार और ऑनलाइन लेक्चर विद्यार्थियों को न केवल अतिरिक्त संसाधन उपलब्ध कराते हैं, बल्कि उन्हें आत्मनिर्भर और स्वतंत्र शिक्षार्थी बनने की दिशा में भी प्रेरित करते हैं।

(ICT) का सबसे बड़ा योगदान यह है कि इसने शिक्षा को समय और स्थान की सीमाओं से मुक्त कर दिया है। पारंपरिक कक्षा में विद्यार्थी केवल शिक्षक की उपस्थिति और पुस्तक पर निर्भर रहते थे, जबकि आज ऑनलाइन लर्निंग प्लेटफार्म जैसे गूगल क्लासरूम, कोर्सेरा, खान अकैडमी, स्वयम, एनपीटीईएल और अन्य ई-लर्निंग साधनों के माध्यम से विद्यार्थी कहीं भी, कभी भी, अपनी सुविधा अनुसार अध्ययन कर सकते हैं। इससे शिक्षा की पहुँच का दायरा अत्यधिक बढ़ गया है। ग्रामीण और दूरस्थ क्षेत्रों के विद्यार्थी भी अब वैश्विक स्तर के संसाधनों और विशेषज्ञों के ज्ञान से लाभान्वित हो सकते हैं। साथ ही, फ्लैड आधारित शिक्षा में लचीलापन भी है। हर विद्यार्थी अपनी गति और आवश्यकता के अनुसार सीख सकता है, जिससे व्यक्तिगत शिक्षण (Personalized Learning) की अवधारणा को बढ़ावा मिलता है। यह उन विद्यार्थियों के लिए अत्यधिक उपयोगी है जो किसी विषय में धीमे हैं या जिन्हें बार-बार अभ्यास की आवश्यकता होती है।

इसके अलावा, फ्लैड शिक्षा को लोकतांत्रिक और समान अवसर आधारित भी बनाता है। पहले शिक्षा में गुणवत्तापूर्ण संसाधनों तक पहुँच केवल कुछ चुनिंदा लोगों को ही होती थी, लेकिन अब इंटरनेट और डिजिटल संसाधनों की उपलब्धता ने ज्ञान को सबके लिए सुलभ बना दिया है। स्मार्टफोन और टैबलेट जैसे उपकरणों ने विद्यार्थियों को कहीं से भी सीखने का अवसर प्रदान किया है। इसने शिक्षा में समावेशिता (Inclusivity) को बढ़ावा दिया है, विशेषकर दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए सहायक तकनीकें जैसे स्क्रीन रीडर, वॉइस कमांड और ऑडियो-बुक्स शिक्षा को और भी सुलभ बनाती हैं।

ICT का प्रयोग केवल विद्यार्थियों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि शिक्षकों के लिए भी यह समान रूप से लाभकारी है। शिक्षक फ्लैड के माध्यम से अद्यतन सामग्री, नवीनतम शोध, अंतरराष्ट्रीय

उदाहरण और विभिन्न शिक्षण पद्धतियों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इससे उनकी शिक्षण शैली अधिक प्रभावशाली और आकर्षक बनती है। साथ ही, डिजिटल मूल्यांकन प्रणाली (Digital Assessment) जैसे ऑनलाइन टेस्ट, क्विज़ और असाइनमेंट जाँचने की प्रक्रिया को आसान, पारदर्शी और त्वरित बना देते हैं। शिक्षक फ्लैड का उपयोग करके विद्यार्थियों की प्रगति का आकलन कर सकते हैं और उनके कमजोर पक्षों पर ध्यान केंद्रित कर व्यक्तिगत परामर्श प्रदान कर सकते हैं।

आज की पीढ़ी डिजिटल युग में जन्मी है, जिसे 'डिजिटल नेटिव्स' कहा जाता है। ये विद्यार्थी तकनीकी उपकरणों से भली-भाँति परिचित होते हैं, इसलिए ICT आधारित शिक्षण उनकी जीवनशैली और रुचियों से मेल खाता है। परिणामस्वरूप, वे अधिक सक्रिय, उत्साही और रुचिकर तरीके से सीखते हैं। शिक्षा में ICT का यह समावेश न केवल ज्ञानार्जन तक सीमित है, बल्कि यह विद्यार्थियों में नवाचार, समस्या-समाधान, सहयोगात्मक कार्य और आलोचनात्मक चिंतन जैसी 21वीं सदी की आवश्यक कौशलों का भी विकास करता है। इन कौशलों के बिना कोई भी विद्यार्थी आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में सफल नहीं हो सकता।

1. (ICT) का अर्थ और शिक्षा में इसकी प्रासंगिकता

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT – Information and Communication Technology) का आशय उन सभी आधुनिक तकनीकी साधनों और प्रणालियों से है, जिनका उपयोग सूचना के संग्रहण, प्रसंस्करण, प्रसारण और आदान-प्रदान के लिए किया जाता है। सरल शब्दों में कहें तो (ICT) वे सभी तकनीकी उपकरण और माध्यम हैं जो सूचना को तेजी से एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाते हैं और उसे उपयोगी बनाते हैं। इनमें कंप्यूटर, इंटरनेट, स्मार्टफोन, डिजिटल बोर्ड, ऑडियो-विजुअल माध्यम, ई-पुस्तकें, ऑनलाइन शैक्षिक प्लेटफार्म, शैक्षिक एप्लीकेशन, वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग, वर्चुअल लैब्स तथा क्लाउड-आधारित शैक्षिक संसाधन सम्मिलित हैं। शिक्षा के क्षेत्र में ICT का प्रयोग ज्ञान-संसाधनों की उपलब्धता को बढ़ाने, शिक्षण प्रक्रिया को अधिक प्रभावी और इंटरैक्टिव बनाने तथा विद्यार्थियों को वैश्विक सूचना-संसाधनों से जोड़ने में किया जाता है।

परंपरागत शिक्षा प्रणाली में शिक्षक को ज्ञान का मुख्य स्रोत माना जाता था और विद्यार्थी केवल निष्क्रिय श्रोता हुआ करते थे। उस समय ज्ञान की प्राप्ति का मुख्य साधन पाठ्यपुस्तकें, पुस्तकालय और कक्षा-कक्ष में शिक्षक का व्याख्यान होता था। किन्तु आज

की डिजिटल युगीन शिक्षा प्रणाली में ICT ने इस पारंपरिक ढांचे को बदल दिया है। अब ज्ञान केवल पाठ्यपुस्तकों तक सीमित नहीं है, बल्कि इंटरनेट के माध्यम से विश्वभर की सूचनाएँ और अध्ययन सामग्री तत्काल उपलब्ध हो जाती हैं। ICT ने शिक्षा के क्षेत्र में अवसरों का विस्तार करते हुए शिक्षण और अधिगम की प्रक्रिया को लोकतांत्रिक और वैश्विक बना दिया है।

2. कक्षा कक्ष शिक्षण में (ICT) का महत्व

कक्षा शिक्षण में (ICT) का महत्व कई दृष्टियों से है।

विषय की स्पष्टता – मल्टीमीडिया प्रस्तुतियाँ, 3D मॉडल, ऐनिमेशन और वीडियो – कक्षा में पढ़ाई जाने वाली कई अवधारणाएँ जैसे विज्ञान के जटिल सिद्धांत, गणितीय सूत्र, भूगोल के मानचित्र या इतिहास की घटनाएँ अक्सर छात्रों को कठिन और अमूर्त लगती हैं। परंतु जब इन्हें (ICT) उपकरणों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है तो वे अधिक स्पष्ट और समझने योग्य बन जाती हैं। उदाहरण के लिए, यदि भौतिकी में “परमाणु की संरचना” पढ़ाई जा रही है तो केवल पाठ्यपुस्तक की आरेखात्मक प्रस्तुति छात्रों की कल्पना तक सीमित रहती है, लेकिन 3D मॉडल और ऐनिमेशन द्वारा इलेक्ट्रॉनों की गति, ऊर्जा स्तर और कणों की संरचना को आसानी से देखा और समझा जा सकता है। इसी प्रकार जीवविज्ञान में शरीर के आंतरिक अंगों की क्रियाविधि वीडियो डेमोंस्ट्रेशन द्वारा कहीं अधिक प्रभावी ढंग से समझाई जा सकती है। मल्टीमीडिया प्रेजेंटेशन में टेक्स्ट, चित्र, ऑडियो और वीडियो का संयोजन विद्यार्थियों को विषय से गहराई से जोड़ता है। परिणामस्वरूप कठिन विषयवस्तु सरल और रुचिकर हो जाती है तथा विद्यार्थी उसे लंबे समय तक याद रख पाते हैं।

रुचिकर शिक्षण वातावरण (ICT) आधारित शिक्षण— पारंपरिक ब्लैकबोर्ड और चॉक पर आधारित शिक्षण अक्सर एक-तरफा संवाद तक सीमित रहता है, जिसमें शिक्षक बोलते हैं और विद्यार्थी सुनते हैं। इससे कई बार विद्यार्थी ऊब जाते हैं और उनकी रुचि कम हो जाती है। ICT आधारित शिक्षण इस एकरूपता को तोड़ता है और शिक्षण प्रक्रिया को अधिक इंटरैक्टिव और आकर्षक बनाता है। उदाहरण के लिए, इंटरैक्टिव क्विज़, सिमुलेशन गेम्स और शैक्षिक एप्स का प्रयोग करने पर विद्यार्थियों की सक्रिय भागीदारी बढ़ती है। वे केवल श्रोता न रहकर ज्ञान के खोजी और सहभागी बन जाते हैं। जब विद्यार्थियों को रंगीन चित्रों, ऐनिमेशन, लाइव डेमोंस्ट्रेशन और वर्चुअल टूर जैसी तकनीकों से पढ़ाया जाता है तो उनकी जिज्ञासा और प्रेरणा बढ़ती है। इसके अतिरिक्त ICT का प्रयोग करके शिक्षक कक्षा को

और अधिक सहभागी बना सकते हैं, जिससे शिक्षक-विद्यार्थी के बीच द्विपक्षीय संवाद संभव होता है। इस प्रकार प्लग न केवल शिक्षण को आकर्षक बनाता है, बल्कि विद्यार्थियों की एकाग्रता और सीखने की गुणवत्ता को भी बढ़ाता है।

व्यक्तिगत सीखने की सुविधा –ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म – हर विद्यार्थी की सीखने की गति, क्षमता और रुचि अलग-अलग होती है। पारंपरिक शिक्षण में शिक्षक को एक ही ढंग से पूरी कक्षा को पढ़ाना होता है, जिससे कई बार धीमे या तेज़ सीखने वाले विद्यार्थियों की आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पातीं। ICT आधारित ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हैं। ऑनलाइन लर्निंग मैनेजमेंट सिस्टम (जैसे डेवकसम, लववहसम ब्लैकबोर्ड, ब्लूब्लूब्लू आदि) विद्यार्थियों को अपनी गति से पढ़ने, समझने और पुनरावृत्ति करने का अवसर प्रदान करते हैं। यदि किसी विद्यार्थी को कोई अध्याय कठिन लगता है तो वह वीडियो लेक्चर को बार-बार देख सकता है, असाइनमेंट ऑनलाइन सबमिट कर सकता है और चर्चा मंच पर प्रश्न पूछ सकता है। इसी प्रकार तेज़ गति से सीखने वाले छात्र अतिरिक्त सामग्री तक पहुँच सकते हैं।

समय और संसाधनों की बचत – डिजिटल सामग्री का उपयोग – शिक्षण में ICT का एक महत्वपूर्ण लाभ यह है कि यह समय और संसाधनों दोनों की बचत करता है। पारंपरिक शिक्षण पद्धति में शिक्षक को बार-बार नोट्स लिखने, आरेख बनाने और व्याख्या करने में काफी समय लगता है। लेकिन यदि वही सामग्री डिजिटल स्वरूप में तैयार कर ली जाए तो उसे बार-बार इस्तेमाल किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, एक बार तैयार की गई चूमतच्चपदज प्रस्तुति या रिकॉर्ड किया गया वीडियो लेक्चर आने वाले वर्षों तक उपयोग में लाया जा सकता है। इससे न केवल शिक्षक का समय बचता है, बल्कि विद्यार्थियों को भी अधिक संगठित और व्यवस्थित सामग्री मिलती है। डिजिटल सामग्री की उपलब्धता से विद्यार्थी कभी भी, कहीं भी विषयवस्तु तक पहुँच सकते हैं, जिससे अतिरिक्त कोचिंग या बार-बार व्याख्या की आवश्यकता कम हो जाती है। इस प्रकार प्लग शिक्षा को अधिक आर्थिक और टिकाऊ (sustainable) बना देता है।

वैश्विक दृष्टिकोण का विकास – इंटरनेट से जुड़ाव— आज के वैश्विक युग में केवल स्थानीय ज्ञान पर्याप्त नहीं है। विद्यार्थियों को विश्वभर की नवीनतम जानकारी, शोध और विविध संस्कृतियों से जुड़ना आवश्यक है। ICT के माध्यम से इंटरनेट विद्यार्थियों को वैश्विक सूचना-संसाधनों से जोड़ता है। उदाहरण के लिए, एक भारतीय छात्र NASA] UNESCO या MIT जैसे अंतरराष्ट्रीय

संस्थानों के अध्ययन संसाधनों तक ऑनलाइन पहुँच सकता है। इसी प्रकार, MOOCs (Massive Open Online Courses) के माध्यम से वह विदेशी विशेषज्ञों के लेक्चर सुन सकता है और विभिन्न देशों के छात्रों के साथ संवाद कर सकता है। यह विद्यार्थियों के भीतर एक वैश्विक दृष्टिकोण विकसित करता है, जिससे वे केवल अपने देश की समस्याओं तक सीमित नहीं रहते, बल्कि अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य को भी समझते हैं। विविध संस्कृतियों और विचारधाराओं का परिचय विद्यार्थियों में सहिष्णुता, सहयोग और बहु-सांस्कृतिक दृष्टिकोण को बढ़ाता है। इस प्रकार ICT उन्हें एक "वैश्विक नागरिक" बनने की दिशा में तैयार करता है।

(1) "स्मार्ट क्लासरूम (Smart Classroom)

- प्रोजेक्टर, डिजिटल बोर्ड, और मल्टीमीडिया सामग्री के माध्यम से शिक्षक पाठ को दृश्य रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं।
- विद्यार्थी चित्रों, वीडियो और एनीमेशन के माध्यम से कठिन विषयों को आसानी से समझते हैं।

(2) ऑनलाइन शिक्षा (Online Learning)

- ICT के माध्यम से विद्यार्थी कहीं से भी ऑनलाइन क्लास, वीडियो लेक्चर, और ई-बुक्स का उपयोग कर सकते हैं।
- प्लेटफॉर्म जैसे Glassroom, Zoom, YouTube आदि ने शिक्षा को सुलभ बना दिया है।

(3) "ई-लर्निंग और डिजिटल संसाधन (E-learning & Digital Resources)

- डिजिटल लाइब्रेरी, ई-बुक्स, शैक्षिक बेबसाइट्स और ऑडियो-विजुअल टूल्स से अध्ययन में विविधता आती है।
- शिक्षक शिक्षण सामग्री (Teaching Materials) को डिजिटल रूप में तैयार और साझा कर सकते हैं।

(4) "मूल्यांकन (Assessment)"

- परिणाम और फीडबैक तुरंत उपलब्ध होते हैं।

(5) "संचार (Communication)"

- शिक्षक, विद्यार्थी और अभिभावक के बीच संवाद ईमेल, मैसेजिंग और वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से आसान हो गया है।

(6) "व्यक्तिगत शिक्षण (Personalized Learning)"

- ICT से प्रत्येक विद्यार्थी अपनी गति और रुचि के अनुसार सीख सकता है।

- Adaptive learning tools विद्यार्थियों के स्तर के अनुसार सामग्री प्रदान करते हैं।

(7) शैक्षिक प्रबंधन (Educational Management)

- विद्यालयों में ICT का उपयोग रिकार्ड रखने, उपस्थिति, रिपोर्ट कार्ड, और सूचना प्रसारण के लिए किया जाता है।

3. शिक्षकों की भूमिका में परिवर्तन

21वीं सदी में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) ने शिक्षा-जगत को एक नई दिशा प्रदान की है। परंपरागत शिक्षण पद्धति में शिक्षक की भूमिका मुख्यतः "ज्ञान प्रदाता" की होती थी। शिक्षक पाठ्यपुस्तकों और ब्लैकबोर्ड की सहायता से विद्यार्थियों को ज्ञान प्रदान करता था, और विद्यार्थी निष्क्रिय रूप से उसे ग्रहण करते थे। इस पद्धति में छात्र की सक्रिय भागीदारी अपेक्षाकृत कम होती थी। किंतु ICT के प्रयोग ने इस परिदृश्य को पूरी तरह बदल दिया है। आज शिक्षक केवल ज्ञान देने वाला नहीं, बल्कि एक "सुविधादाता" (Facilitator) और "मार्गदर्शक" बन गया है, जो विद्यार्थियों को आत्म-खोज, विश्लेषण और नवाचार की दिशा में प्रेरित करता है।

(ICT) का प्रयोग शिक्षण प्रक्रिया को अधिक छात्र-केंद्रित (Learner & Centered) बना देता है। इसका अर्थ है कि विद्यार्थी केवल सुनने या याद करने तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह इंटरनेट, ई-बुक्स, ऑनलाइन प्लेटफॉर्म, शैक्षिक ऐप्स, मल्टीमीडिया सामग्री आदि की सहायता से स्वयं खोज, विश्लेषण और प्रयोग करता है। इस प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका विद्यार्थियों को सही दिशा देने, संसाधन उपलब्ध कराने और उनके विचारों का मूल्यांकन करने की होती है। उदाहरणस्वरूप, यदि विज्ञान की किसी अवधारणा को समझाना है तो शिक्षक केवल सिद्धांत बताने तक सीमित नहीं रहता, बल्कि विद्यार्थियों को 3D मॉडल, वर्चुअल लैब या शैक्षिक वीडियो का उपयोग करने हेतु प्रोत्साहित करता है, जिससे वे अवधारणा को स्वयं अनुभव और आत्मसात कर सकें।

इसके अतिरिक्त, ICT ने शिक्षक से यह अपेक्षा भी बढ़ा दी है कि वह डिजिटल उपकरणों और संसाधनों के प्रयोग में दक्ष हो। शिक्षक को कंप्यूटर, इंटरनेट, प्रोजेक्टर, स्मार्ट बोर्ड, ऑनलाइन क्विज़ और ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म का प्रभावी संचालन आना चाहिए। साथ ही, उसे यह भी समझना होगा कि कौन-सा संसाधन किस विद्यार्थी के लिए उपयुक्त है, ताकि सभी के सीखने की गति और शैली के अनुसार शिक्षण को लचीला और प्रभावी बनाया जा सके।

शिक्षक की नई भूमिका में सबसे महत्वपूर्ण है विद्यार्थियों में आलोचनात्मक चिंतन (ब्लपजपबंस जीपदापदह) और समस्या-समाधान क्षमता का विकास करना। (ICT) के युग में सूचना आसानी से उपलब्ध है, लेकिन सही सूचना का चयन करना और उसका सार्थक उपयोग करना चुनौतीपूर्ण है। शिक्षक विद्यार्थियों को सिखाता है कि वे उपलब्ध जानकारी का तुलनात्मक अध्ययन करें, स्रोत की विश्वसनीयता का आकलन करें और उसका रचनात्मक उपयोग कर सकें।

4. विद्यार्थियों पर ICT का प्रभाव

कक्षा कक्ष में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ICT के प्रयोग से विद्यार्थियों की अधिगम प्रक्रिया में गहरे परिवर्तन देखे जाते हैं। यह परिवर्तन केवल उनकी सीखने की गति और शैली तक सीमित नहीं है, बल्कि उनके व्यक्तित्व, सामाजिक सहयोग, आत्मनिर्भरता और भविष्य की पेशेवर संभावनाओं पर भी सकारात्मक प्रभाव डालता है। परंपरागत शिक्षा व्यवस्था में विद्यार्थी प्रायः शिक्षक की बातों को सुनने और याद करने तक सीमित रहते थे, लेकिन प्ल के आगमन ने उन्हें सक्रिय भागीदार और खोजी मानसिकता वाला बना दिया है। नीचे दिए गए बिंदुओं में विद्यार्थियों पर ICT के प्रभाव को विस्तृत रूप से समझा जा सकता है।

सीखने में सक्रिय भागीदारी और उत्साह बढ़ना— ICT ने शिक्षा को केवल सुनने और लिखने तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे इंटरैक्टिव, प्दजमतंबजपअमद्ध और सहभागितापूर्ण बना दिया है। डिजिटल प्रोजेक्टर, स्मार्ट बोर्ड, मल्टीमीडिया प्रेजेंटेशन और ऑनलाइन विज्ज जैसी तकनीकों के प्रयोग से विद्यार्थियों में विषय के प्रति रुचि और उत्साह बढ़ता है। अब वे केवल श्रोता नहीं, बल्कि सक्रिय प्रतिभागी बन जाते हैं। उदाहरण के लिए, किसी विज्ञान प्रयोग को वर्चुअल लैब में देखकर विद्यार्थी अधिक गहराई से समझ पाते हैं, जिससे उनकी जिज्ञासा और भागीदारी स्वाभाविक रूप से बढ़ती है।

आत्म-अध्ययन और स्व-प्रेरणा का विकास— ICT संसाधनों जैसे ई-बुक्स, ऑनलाइन कोर्सेज, शैक्षिक वेबसाइट्स और मोबाइल ऐप्स ने विद्यार्थियों को आत्म-अध्ययन की दिशा में प्रेरित किया है। अब उन्हें केवल कक्षा या शिक्षक पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है। वे इंटरनेट पर उपलब्ध सामग्रियों से अतिरिक्त ज्ञान अर्जित कर सकते हैं। इस प्रकार प्ल ने उनमें स्व-प्रेरणा और आत्मनिर्भरता की भावना का विकास किया है।

रचनात्मकता और नवाचार की प्रवृत्ति का विस्तार— मल्टीमीडिया टूल्स, ग्राफिक डिजाइनिंग, प्रेजेंटेशन सॉफ्टवेयर

और प्रोजेक्ट-आधारित शिक्षण पद्धतियों ने विद्यार्थियों की रचनात्मक क्षमताओं को विकसित करने में अहम भूमिका निभाई है। अब विद्यार्थी केवल पाठ्यपुस्तक तक सीमित नहीं रहते, बल्कि वे स्वयं सामग्री तैयार करते हैं, प्रोजेक्ट बनाते हैं, वीडियो या प्रेजेंटेशन तैयार करते हैं और नए विचारों को खोजने का प्रयास करते हैं। इससे उनमें नवाचार और सृजनात्मकता की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है।

टीम वर्क और सहयोगी अधिगम की क्षमता में वृद्धि— ICT ने विद्यार्थियों में सहयोगी अधिगम (Collaborative Learning) की संस्कृति को प्रोत्साहित किया है। समूह प्रोजेक्ट्स, ऑनलाइन चर्चा मंच, वर्चुअल ग्रुप गतिविधियाँ और साझा डिजिटल संसाधन उन्हें टीम में काम करने, विचार साझा करने और आपसी सहयोग से सीखने का अवसर प्रदान करते हैं। इससे उनमें टीम वर्क, संवाद कौशल और नेतृत्व गुण विकसित होते हैं।

डिजिटल साक्षरता का विकास — आज के समय में डिजिटल साक्षरता केवल एक कौशल नहीं, बल्कि आवश्यकता है। प्ल का प्रयोग विद्यार्थियों को कंप्यूटर संचालन, इंटरनेट उपयोग, डेटा प्रबंधन, ऑनलाइन संचार और साइबर सुरक्षा जैसी क्षमताओं से सुसज्जित करता है। ये कौशल न केवल उनकी शैक्षिक यात्रा में सहायक होते हैं, बल्कि रोजगार बाजार में भी उन्हें प्रतिस्पर्धी बनाते हैं।

5. चुनौतियाँ और समाधान

ICT के अनेक लाभ हैं, लेकिन इसके सफल प्रयोग में कुछ चुनौतियाँ भी सामने आती हैं।

तकनीकी संसाधनों की कमी — ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट कनेक्टिविटी और उपकरणों की अनुपलब्धता।

शिक्षकों का प्रशिक्षण — ICT के प्रभावी उपयोग हेतु शिक्षकों को उचित प्रशिक्षण का अभाव।

विद्यार्थियों में डिजिटल विभाजन — सभी विद्यार्थियों के पास समान डिजिटल साधन नहीं होते।

अत्यधिक निर्भरता का खतरा — तकनीक पर अत्यधिक निर्भरता से विद्यार्थियों में पारंपरिक अध्ययन कौशल में कमी आ सकती है।

इन चुनौतियों के समाधान के लिए सरकार, शैक्षणिक संस्थानों और समुदाय को संयुक्त रूप से प्रयास करना होगा। विद्यालयों में प्ल प्रयोग हेतु आवश्यक उपकरण, इंटरनेट सुविधा और तकनीकी सहायता उपलब्ध कराई जानी चाहिए। साथ ही, शिक्षकों के लिए समय-समय पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।

कक्षा कक्ष शिक्षण में आईसीटी की भूमिका

सूचना एवं संप्रेषण प्रौद्योगिकी का अर्थ है – स्वयं के भाव, विचार, संदेश एवं सूचनाओं को शीघ्रतम समय में तकनीकी साधनों की सहायता से दूसरे व्यक्ति तक सही प्रकार से पहुँचाना। शिक्षा के क्षेत्र में ICT का प्रयोग आज अनिवार्य हो चुका है। पारंपरिक शिक्षण में जहाँ केवल पाठ्यपुस्तकें, ब्लैकबोर्ड और चार दीवारों के भीतर का वातावरण ही छात्रों के अधिगम में योगदान देता था, वहीं आज प्लै ने इस प्रक्रिया को अधिक व्यापक, जीवंत और प्रभावी बना दिया है।

कक्षा कक्ष शिक्षण में ICT का उद्देश्य केवल विषयवस्तु को प्रस्तुत करना नहीं, बल्कि विद्यार्थियों को स्वयं सीखने वाला, आत्मनिर्भर, समीक्षात्मक और रचनात्मक बनाना है। स्मार्ट क्लासरूम, डिजिटल बोर्ड, प्रोजेक्टर, ऑनलाइन कंटेंट, ई-पुस्तकालय और वर्चुअल लैब जैसी सुविधाएँ छात्रों को न केवल पाठ्य सामग्री समझने में मदद करती हैं, बल्कि उन्हें प्रयोग, विश्लेषण और नवाचार की दिशा में भी प्रेरित करती हैं।

आज हमारा देश डिजिटल इंडिया और स्मार्ट एजुकेशन की ओर तेजी से अग्रसर है, जिसका श्रेय प्लै को जाता है। यह तकनीक केवल शिक्षण तक सीमित नहीं है, बल्कि मूल्यांकन प्रक्रिया में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ICT आधारित मूल्यांकन के माध्यम से शिक्षक छात्रों के ज्ञान, कौशल और क्षमता का अधिक सटीक और निष्पक्ष आकलन कर सकते हैं। कंप्यूटर एवं डिजिटल उपकरणों की मदद से मूल्यांकन कार्य तैयार किए जा सकते हैं, उन्हें संबंधित छात्रों तक पहुँचाया जा सकता है, और उनके उत्तरों का विश्लेषण कर त्वरित प्रतिक्रिया दी जा सकती है।

उपसंहार

शिक्षा के क्षेत्र में ICT (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी) का प्रयोग एक क्रांतिकारी परिवर्तन के रूप में सामने आया है। इससे शिक्षा प्रक्रिया अधिक रोचक, सहभागितापूर्ण और प्रभावी बन गई है। विद्यार्थी केवल निष्क्रिय श्रोता न रहकर सक्रिय सहभागी बनते हैं। उनमें आत्म-अध्ययन, रचनात्मकता, आलोचनात्मक सोच और डिजिटल साक्षरता जैसी क्षमताओं का विकास होता है, जो 21वीं सदी की मांग है। शिक्षक भी अब केवल ज्ञान प्रदाता न होकर मार्गदर्शक और सुविधादाता की भूमिका निभाते हैं। प्लै के सफल प्रयोग के सामने कई चुनौतियाँ भी हैं, जैसे तकनीकी संसाधनों की कमी, इंटरनेट कनेक्टिविटी की समस्या, शिक्षकों के प्रशिक्षण की कमी और डिजिटल विभाजन। यदि इन चुनौतियों पर गंभीरता से कार्य किया जाए तो ICT शिक्षा की गुणवत्ता और पहुँच दोनों को नए आयाम दे सकता है। सरकार, शैक्षणिक संस्थानों और

समुदाय के संयुक्त प्रयासों से ICT आधारित शिक्षा भारत के प्रत्येक विद्यार्थी तक पहुँच सकती है। वर्तमान समय में कई ऐसे प्रयोगशाला उपकरण भी विकसित हो चुके हैं, जिन्हें दूरस्थ रूप से नियंत्रित किया जा सकता है। छात्र वास्तविक समय में प्रयोग कर सकते हैं, उनके प्रदर्शन को रिकॉर्ड किया जा सकता है, और मूल्यांकन के लिए उपयोग किया जा सकता है। इससे विज्ञान, गणित, इंजीनियरिंग, भाषा, कला आदि सभी विषयों में प्रयोगात्मक और प्रदर्शन-आधारित अधिगम को बढ़ावा मिलता है।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्लै शिक्षा का भविष्य है और इसके माध्यम से ज्ञान का लोकतंत्रीकरण संभव हो सकता है। उचित संसाधन, प्रशिक्षण और समान अवसर प्रदान कर हम प्लै को भारतीय शिक्षा व्यवस्था में पूर्णतः प्रभावी बना सकते हैं।

“निष्कर्ष” – (Conclusion on ICT in Education)

आज का युग तकनीक और ज्ञान का संगमम है, जहाँ ICT (सूचना और संचार प्रौद्योगिकी) शिक्षा का सबसे सशक्त आधार बन चुका है। इसने पारंपरिक शिक्षण पद्धतियों को आधुनिकता से जोड़ते हुए सीखने को “रोचक, जीवंत और सुलभ” बना दिया है। ICT ने शिक्षक को “ज्ञान प्रदाता” से “सहयोगी मार्गदर्शक” में और विद्यार्थी को “श्रोता” से “सक्रिय सीखने वाले” में परिवर्तित कर दिया है।

इस प्रकार, ICT केवल उपकरण नहीं, बल्कि एक सोच, एक दृष्टिकोण और एक क्रांति है, जो शिक्षा की नई ऊँचाइयों तक ले जा रही है। यह तकनीक हमें यह सिखाती है कि जब ज्ञान और नवाचार एक साथ चलते हैं, तभी सच्ची शिक्षा का प्रकाश पूरे समाज को आलोकित करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- ◆ अग्रवाल, जे. सी. (2018). शैक्षिक प्रौद्योगिकी के मूल तत्व. नई दिल्ली: विकास पब्लिशिंग हाउस।
- ◆ शर्मा, आर. ए. (2017). शैक्षिक प्रौद्योगिकी और आईसीटी. मेरठ: आर. लाल बुक डिपो।
- ◆ मंगल, एस. के., एवं मंगल, उमा. (2019). शैक्षिक प्रौद्योगिकी के मूल तत्व. नई दिल्ली: पीएचआई लर्निंग प्रा. लि.
- ◆ मिश्रा, एस., एवं शर्मा, आर. सी. (2005). शिक्षा और प्रशिक्षण में अंतःक्रियात्मक मल्टीमीडिया. आइडिया ग्रुप इंक।
- ◆ यूनेस्को. (2011). शिक्षा में आईसीटी: 21वीं सदी के लिए शिक्षा का रूपांतरण. पेरिस: यूनेस्को।

- ◆ एनसीईआरटी. (2016). विद्यालयी शिक्षा में आईसीटी (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा स्थिति पत्र). नई दिल्ली: एनसीईआरटी।
- ◆ गोयल, अरुणा. (2016). शिक्षा में आईसीटी. नई दिल्ली: कल्पज पब्लिकेशन्स।
- ◆ एंडरसन, जोनाथन एवं ग्लेन, रसेल. (2012). आईसीटी और अधिगम: विद्यालय के बाहर युवाओं और वयस्कों का सहयोग. रूटलेज।
- ◆ सिंह, वाई. के. (2012). शैक्षिक प्रौद्योगिकी: शिक्षण और अधिगम. नई दिल्ली: एपीएच पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन।
- ◆ टोनी बेट्स, ए. डब्ल्यू. (2015). डिजिटल युग में शिक्षण: शिक्षण और अधिगम की रूपरेखा हेतु दिशानिर्देश. बीसीकैम्पस, कनाडा।
- ◆ पेलग्रुम, डब्ल्यू. जे., एवं लॉ, एन. (2003). शिक्षा में आईसीटी विश्वभर में: प्रवृत्तियाँ, समस्याएँ और संभावनाएँ. यूनेस्को-आईआईपी।
- ◆ बालासुब्रमण्यम, के. (2010). उच्च शिक्षा के लिए आईसीटी: पृष्ठभूमि पत्र. यूनेस्को।
- ◆ शर्मा, एच. एल., एवं शर्मा, एस. (2010). विज्ञान की उपलब्धि पर आईसीटी का प्रभाव. जर्नल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एंड एक्सटेंशन, 47(3), 1-7A
- ◆ कोज़्मा, आर. बी. (2003). प्रौद्योगिकी, नवाचार और शैक्षिक परिवर्तन: एक वैश्विक परिप्रेक्ष्य. आईएसटीई एवं ओईसीडी।

श्रीमती शांति सोनी

वरिष्ठ व्याख्याता (M-Sc- Botany] M-A- Hindi] History]
Education] Ph-D- Education)
शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय महमंद,
विकासखण्ड बिल्हा, जिला-बिलासपुर (छ.ग.) पिन-495004
Email :shantisoni192@gmail-com

निवास- C/o इन्द्र कुमार सोनी

38/698 केशव मुरा भट्टा रोड,
गली नं 10 वार्ड नं 45
हेमू नगर बिलासपुर (छ.ग.) पिन-495004
मो 8770914858

सारांश

भारत, एक राष्ट्र के रूप में, केवल एक भौगोलिक इकाई या राजनीतिक संरचना मात्र नहीं है यह एक सजीव, सांस लेती सभ्यता है। इस सभ्यता की सबसे बड़ी ताकत और सबसे गहरी पहचान उसकी शैकात्मक विविधता में निहित है। इस विविधता के केन्द्र में सदियों से बसा हुआ है एक ऐसा समुदाय, जो इस भूमि का मूल निवासी, प्रकृति का संरक्षक और एक अदम्य जीवन-दर्शन का वाहक है – भारत की जनजातीय संस्कृतियाँ। ये समुदाय केवल जनगणना के आंकड़े नहीं हैं वे राष्ट्रीय चेतना के वे स्तंभ हैं जिन पर आधुनिक भारत की नींव टिकी है। इनकी भाषाएँ, इनके गीत-नृत्य, इनकी कला, इनकी चिकित्सा पद्धतियाँ और इनका पर्यावरण के साथ सह-अस्तित्व का दर्शन, मानवता के सामूहिक ज्ञान-भंडार का एक अमूल्य हिस्सा हैं।

भारत की सभ्यागत यात्रा में जनजातीय समुदाय केवल एक अध्याय नहीं, बल्कि उसकी आधारशिला हैं। ये समुदाय देश की सांस्कृतिक जैव-विविधता के रक्षक, प्रकृति के सहचर और सहस्राब्दियों के सामूहिक ज्ञान के जीवंत संग्रहालय हैं (एल्विन, 1943)। ऐसे में, सामाजिक-सांस्कृतिक एकीकरण की अवधारणा एक सरल नीति नहीं, बल्कि एक गतिशील, बहुआयामी और संवेदनशील सामाजिक दर्शन के रूप में उभरती है। इसका उद्देश्य केवल शोड़ना नहीं, बल्कि एक ऐसा सामाजिक ऊतक बुनना है, जहाँ जनजातीय अस्मिता की हर धारी राष्ट्रीय पहचान का अविभाज्य और गौरवशाली अंग बन जाए।

सामाजिक-सांस्कृतिक एकीकरण की अवधारणा एक सतही प्रशासनिक लक्ष्य नहीं, बल्कि एक गहन सभ्यतागत अनिवार्यता बन जाती है (गाँधी, 1947)। यह एक ऐसी सामूहिक यात्रा है जिसका उद्देश्य सदियों के ऐतिहासिक अलगाव और व्यवस्थित उपेक्षा से उपजी खाई को पाटना है। यह खाई न केवल भौतिक विकास की है, बल्कि मानसिकता, सम्मान और पारस्परिक समझ की भी है। इसलिए, एकीकरण कभी भी एकतरफा दान या उपकार नहीं हो सकता। यह एक पारस्परिक, द्विमार्गी प्रक्रिया है – एक ऐसा सहजीवन जहाँ मुख्यधारा का समाज जनजातीय जीवन-मूल्यों से नैतिक और दार्शनिक शिक्षा लेता है, और जनजातीय समुदायों को विकास, शिक्षा और न्याय की मुख्यधारा में समान अवसर प्राप्त होते हैं। यह लेख इसी जटिल, बहुआयामी और अत्यंत महत्वपूर्ण प्रक्रिया के विभिन्न पहलुओं, चुनौतियों और संभावनाओं की गहन पड़ताल करता है।

एकीकरण का दार्शनिक आधार: विविधता में एकता नहीं, विविधता के माध्यम से एकता

एकीकरण की प्रचलित अवधारणा पर आज सबसे गहन चिंतन की आवश्यकता है। सतही तौर पर, विविधता में एकता का नारा भारत की पहचान के रूप में प्रचलित है, किंतु अक्सर इसे एक स्थैतिक और निष्क्रिय अवस्था के रूप में देख लिया जाता है। कृमानो विविध तत्व एक साथ केवल सह-अस्तित्व में ही रह रहे हों। वास्तविक एकीकरण इससे कहीं आगे की, एक गतिशील और सक्रिय प्रक्रिया है। इसका सार विविधता के माध्यम से एकता में निहित है (राधाकृष्णन, 1927)। यह वह दर्शन है जो विविधताओं को राष्ट्रीय एकता के निर्माण के लिए एक सशक्त माध्यम, एक ईंट के रूप में देखता है, न कि केवल एक सजावट के रूप में।

इसका केंद्रीय भ्रम, जो एकीकरण के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है, से एकरूपता या समरूपीकरण समझ लेना है। यह दृष्टिकोण मान लेता है कि एकजुट होने के लिए सभी को एक जैसा बनना होगा, अपनी विशिष्टताएँ छोड़नी होंगी। यह एक ऐसी सांस्कृतिक सत्तावादी मानसिकता है जो राष्ट्र को कमजोर करती है। इसके विपरीत, वास्तविक एकीकरण एक सहयोगी समरसता की स्थापना करता है। इसे एक सुव्यवस्थित ऑर्केस्ट्रा के समान समझा जा सकता है, जहाँ विभिन्न वाद्ययंत्रकृषितार, वायलिन, तबला, बाँसुरी अपनी-अपनी अनूठी ध्वनि और तकनीक बनाए रखते हुए भी एक सामूहिक रचना का निर्माण करते हैं। कोई भी वाद्य दूसरे की नकल नहीं करता, बल्कि सभी मिलकर एक ऐसा संगीत रचते हैं जो किसी एक के बूते की बात नहीं होती। यह समरसता एक सजीव और निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है, जिसके दोनों छोर सक्रिय और लाभान्वित होते हैं।

□ एक ओर, मुख्यधारा का समाज, जनजातीय जीवन-दर्शन से गहन और परिवर्तनकारी शिक्षा ग्रहण करता है। यह उपभोगवादी और व्यक्ति केंद्रित आधुनिक जीवनशैली के लिए एक प्रतिमान-परिवर्तन है। इसमें सीखना होता है प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व का वह ज्ञान जो पर्यावरण संकट का एकमात्र टिकाऊ समाधान है। सामूहिक निर्णय की वह पद्धति जो लोकतंत्र को गहराई से जीवंत करती है। स्थायित्व का वह सिद्धांत जो अंधाधुंध विकास के विकल्प को दर्शाता है। और समुदाय-प्रथम की वह भावना जो अति-व्यक्तिवाद के अवसाद से मुक्ति दिलाती है (गडगिल और गुप्ता, 2021)।

□ वहीं दूसरी ओर, जनजातीय समुदाय, इस प्रक्रिया में

सशक्त होता है। उसे आधुनिक शिक्षा के माध्यम से नए अवसरों और विश्व-बोध तक पहुँच प्राप्त होती है। वैज्ञानिक स्वास्थ्य सुविधाओं से दीर्घ और स्वस्थ जीवन का अधिकार मिलता है। डिजिटल प्रौद्योगिकी के साधनों से वह वैश्विक समुदाय से जुड़ता है और अपने हितों की रक्षक करना सीखता है और कानूनी अधिकारों और संवैधानिक सुरक्षाओं की जानकारी से वह शोषण के विरुद्ध खड़ा हो पाता है (एक्सिस रिपोर्ट, 2018)।

इस प्रकार, यह एक द्वि-मार्गीय आदान-प्रदान है, जो एकतरफा आत्मसात्करण या ऊपर से थोपे गए एकीकरण से मौलिक रूप से भिन्न है। आत्मसात्करण में एक संस्कृति दूसरी को निगल जाती है, जबकि यहाँ पारस्परिक सम्मान और पूरकता का भाव है। यह प्रक्रिया शून्य और हमें के कृत्रिम एवं विभाजनकारी भेद को मिटाकर, एक व्यापक, समावेशी और मानवीय हम सब की संकल्पना को जन्म देती है। यह हम सब एक ऐसा परिवार है जहाँ हर सदस्य अपनी विशिष्ट पहचान के साथ समान गरिमा और गर्व का अनुभव करते हुए, एक साझे भविष्य के निर्माण में सहभागी बनता है। यही किसी जीवंत राष्ट्र की वास्तविक शक्ति का आधार है।

एकीकरण के बहुरंगी आयाम: एक समग्र दृष्टिकोण जनजातीय एकीकरण कोई एकल-आयामी घटना नहीं है, बल्कि यह एक सूक्ष्म एवं बहु-सतही प्रक्रिया है, जिसके विविध आयामों को समझना अत्यंत आवश्यक है। एक सफल एकीकरण रणनीति को ऐतिहासिक गहराई, सांस्कृतिक संवेदनशीलता, आर्थिक व्यावहारिकता और सामाजिक मनोविज्ञान दृष्टि सभी को एक सूत्र में पिरोना होगा।

1. ऐतिहासिक एवं राजनीतिक आयाम अतीत के बोझ से मुक्ति और संवैधानिक भविष्य का निर्माण

□ ऐतिहासिक न्याय की लंबी छाया एकीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत अतीत के गहरे जख्मों को स्वीकारने से होती है। इसका अर्थ है उस ऐतिहासिक अन्याय को पहचानना जो न केवल ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में, बल्कि स्वतंत्रता के बाद के दौर में भी जारी रहा (गहलोत, 2006)। इसमें जनजातीय समुदायों की पारंपरिक भूमियों के अधिकारों का व्यवस्थित हनन, उनके प्राकृतिक संसाधनों (जंगल, खनिज) के अंधाधुंध दोहन और उनकी सांस्कृतिक प्रथाओं एवं आस्थाओं की व्यवस्थित अवमानना शामिल है। बिना इस ऐतिहासिक पीड़ा को समझे और उसे दूर करने के प्रयास के, कोई भी एकीकरण अधूरा और अविश्वसनीय रहेगा।

□ संवैधानिक प्रावधान सशक्तिकरण का रोडमैप: भारत

का संविधान इस एकीकरण का एक जीवंत दस्तावेज है। अनुच्छेद 244 के तहत पाँचवीं और छठी अनुसूची (भारत का संविधान, अनुच्छेद 244) ने जनजातीय बहुल क्षेत्रों के लिए विशेष प्रशासनिक ढाँचे प्रदान किए हैं, जो उन्हें स्वायत्तता प्रदान करते हैं। पेसा अधिनियम, 1996 (पेसा अधिनियम, 1996) ग्राम सभाओं को स्वशासन और प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार देकर लोकतंत्र को जमीनी स्तर तक ले जाता है। इसी प्रकार, वन अधिकार अधिनियम, 2006 (वन अधिकार अधिनियम, 2006) एक क्रांतिकारी कदम है जो जनजातीय और अन्य वनवासी समुदायों को उनके पारंपरिक निवास और संसाधनों पर कानूनी अधिकार देता है। ये प्रावधान एकीकरण के लिए कानूनी आधारशिला हैं, जो उनकी पहचान को नष्ट किए बिना उन्हें राष्ट्र की मुख्यधारा में जोड़ते हैं।

2. सांस्कृतिक एवं शैक्षिक आयाम अस्मिता का संरक्षण और ज्ञान का समन्वय

□ सांस्कृतिक सम्पन्नता का राष्ट्रीयकरण जनजातीय कलाएँ और शिल्प केवल स्थानीय सजावट नहीं हैं वे भारत की राष्ट्रीय सांस्कृतिक पूँजी हैं (वाडिया, 1995)। गोंड और मधुबनी कला के जटिल रूपांकन, भील और संथाल नृत्यों की ऊर्जा, वारली और साँझी कला की सहज अभिव्यक्तिकृये सभी भारतीय सभ्यता के मूलस्वर हैं। इन्हें पाठ्यक्रमों में शामिल कर, राष्ट्रीय संग्रहालयों में प्रमुखता से प्रदर्शित कर और गणतंत्र दिवस जैसे राष्ट्रीय उत्सवों की शोभा बनाकर, हम यह संदेश देते हैं कि ये उनकी नहीं, बल्कि हम सबकी विरासत हैं।

□ भाषाई विविधता: ज्ञान के विलुप्त होते महासागर भाषा सिर्फ बोलचाल का माध्यम नहीं, बल्कि एक सभ्यता का स्मृति-कोश होती है। भारत की सैकड़ों जनजातीय भाषाएँ और बोलियाँ अपने साथ हजारों वर्षों का पर्यावरणीय ज्ञान, साहित्य और दर्शन समेटे हुए हैं (अब्बी, 2021)। इनका डिजिटलीकरण, दस्तावेजीकरण और बच्चों को उनकी मातृभाषा में शिक्षण एकीकरण की सबसे मजबूत नींव है। एक बच्चा यदि अपनी भाषा और संस्कृति पर गर्व करेगा, तभी वह आत्मविश्वास से दुनिया का सामना कर सकेगा।

□ ज्ञान-पद्धति का एकीकरण पारंपरिक बुद्धिमत्ता को मुख्यधारा में लाना जनजातीय समुदायों का वनस्पति-चिकित्सा का ज्ञान आयुर्वेद का एक जीवित भंडार है। उनकी कृषि-पद्धतियाँ (जैसे मिश्रित फसल) जलवायु अनुकूलन की मिसाल हैं। जल-प्रबंधन की उनकी पारंपरिक तकनीकें (जैसे बावड़ी, जोहड़) आधुनिक जल संकट का समाधान हो सकती हैं

(अग्रवाल, 2010)। इस पारंपरिक विज्ञान को आधुनिक विज्ञान के साथ मिलाकर ही टिकाऊ और संदर्भ-उपयुक्त नए समाधान विकसित किए जा सकते हैं।

3. आर्थिक एवं विकासात्मक आयामरू आत्मनिर्भरता से राष्ट्र-निर्माण तक

□ सहयोगात्मक अर्थव्यवस्था का निर्माणरू जनजातीय समुदायों की आर्थिक सशक्तिकरण के लिए उनके हस्तशिल्प, कपड़ों और जंगल से मिलने वाली लघु वनोपज (जैसे शहद, तेंदू पत्ता, आँवला) को रोजनजातीय उत्पाद के एक विश्वसनीय ब्रांड के तहत राष्ट्रीय और वैश्विक बाजार उपलब्ध कराना होगा। ट्राइफेड (ज्त्थम्ब, भारत सरकार) जैसी संस्थाएँ श्वन धनश जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से इस दिशा में कार्य कर रही हैं, जिसका लक्ष्य उत्पादन से लेकर विपणन तक मूल्य श्रृंखला को मजबूत करना है।

□ न्यायसंगत विकास मॉडलरू विस्थापन से साझेदारी तक बड़ी विकास परियोजनाओं (खनन, बाँध, उद्योग) के कारण होने वाला विस्थापन जनजातीय समुदायों के लिए सबसे बड़ा संकट है (सच्चर समिति रिपोर्ट, 2006)। इसमें केवल मौद्रिक पुनर्वास पर्याप्त नहीं है। आवश्यकता एक साझेदारी के मॉडल की है, जहाँ प्रभावित समुदायों को परियोजना के शेयर, दीर्घकालिक रोजगार और स्थानीय विकास निधि में हिस्सा सुनिश्चित हो। इससे वे विकास के शिकार नहीं, बल्कि भागीदार बन सकेंगे।

□ पर्यटन का सशक्तिकरण: संस्कृति को आय का स्रोतरू जनजातीय क्षेत्रों में एको-टूरिज्म और ट्राइबल हेरिटेज टूरिज्म को बढ़ावा देकर एक ऐसा मॉडल विकसित किया जा सकता है, जहाँ पर्यटक स्थानीय संस्कृति, रहन-सहन और प्रकृति से सीधे जुड़ सकें। महत्वपूर्ण यह है कि इससे होने वाली आय का एक बड़ा हिस्सा सीधे स्थानीय समुदाय तक पहुँचे, न कि बाहरी एजेंसियों के हाथों में केंद्रित हो (भारतीय पर्यटन विकास निगम, 2019)। इससे आय के स्रोत तो बनेंगे ही, सांस्कृतिक गर्व भी मजबूत होगा।

4. सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आयामरू मानसिकता का परिवर्तन और गरिमा का पुनर्स्थापन

□ पहचान के संकट से मुक्तिरू नई पीढ़ी अक्सर आधुनिकता और परंपरा के बीच फंसी हुई है, जिससे एक पहचान का संकट उत्पन्न होता है। एकीकरण का लक्ष्य इस संकट को दूर करना है। इसके लिए जरूरी है कि युवाओं में अपनी जड़ों, अपनी भाषा और अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति गर्व की भावना विकसित की जाए। आधुनिक शिक्षा और तकनीक का

उपयोग करते हुए भी अपनी पहचान को बनाए रखना ही सच्चा एकीकरण है (मिश्रा, 2015)।

□ मीडिया की रचनात्मक एवं जिम्मेदार भूमिका: मीडिया सामाजिक धारणा को आकार देने की सबसे शक्तिशाली ताकत है। फिल्मों, टेलीविजन और सोशल मीडिया पर जनजातीय समुदायों को या तो विकसित करने योग्य एक पिछड़े समुदाय के रूप में, या फिर एक रूमानी और एक-आयामी छवि में पेश करने के बजाय, उनके यथार्थ, गरिमामय और जटिल चित्रण को प्रोत्साहन देना होगा (नेशनल मीडिया स्टडीज, 2022)। उनकी समकालीन चुनौतियों, आकांक्षाओं और सफलताओं को दिखाना मीडिया की सबसे बड़ी जिम्मेदारी है।

□ सामाजिक न्याय की सुनिश्चितता: भेदभाव के विरुद्ध कवचरू एकीकरण तब तक असंभव है जब तक जनजातीय समुदायों के साथ छुआछूत, भेदभाव और आर्थिक शोषण जारी रहेगा। इसके लिए न केवल कानून का पूर्ण रूप से क्रियान्वयन आवश्यक है, बल्कि एक ऐसा सामाजिक वातावरण बनाना भी जरूरी है जहाँ उनके साथ सम्मानजनक व्यवहार हो (अम्बेडकर, 1936)। शिक्षण संस्थानों, कार्यस्थलों और सार्वजनिक स्थलों पर संवेदनशीलता बढ़ाना इसकी पहली सीढ़ी है।

इन सभी आयामों का समन्वित विकास ही एक ऐसे समावेशी, सशक्त और सामंजस्यपूर्ण भारत के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करेगा, जहाँ विविधता राष्ट्रीय शक्ति का स्रोत बने।

समकालीन चुनौतियाँ एवं जटिलताएँ

जनजातीय समुदायों के सामाजिक-सांस्कृतिक एकीकरण का मार्ग कई गहरी और जटिल समकालीन चुनौतियों से अवरुद्ध है। इन चुनौतियों की पहचान और विश्लेषण ही एक सार्थक एवं प्रभावी रणनीति का आधार हो सकता है।

1. उग्रवाद की गहरी जड़ें शासन के शून्य का परिणाम

देश के विस्तृत जनजातीय अंचल, विशेषकर दंडकारण्य, झारखंड और छत्तीसगढ़ के इलाके, उग्रवाद की गंभीर समस्या से जूझ रहे हैं। यह समस्या कोई अचानक उपजी घटना नहीं, बल्कि दशकों के ऐतिहासिक उपेक्षा, आर्थिक वंचना और सामाजिक अन्याय का प्रत्यक्ष परिणाम है (बनर्जी, 2009)। इन क्षेत्रों में शासन और विकास का गहरा अभाव एक ऐसा शून्य पैदा करता है जिसे उग्रवादी विचारधारा भर देती है। जब मूलभूत अधिकारोंकरोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्यकृके लिए संघर्ष करने का कोई कानूनी रास्ता नजर नहीं आता, तो हिंसक आंदोलन के प्रति एक वर्ग आकर्षित होता है। विकास योजनाओं का लाभ न पहुँचना, भूमि अधिकारों का हनन और प्रशासनिक

उपेक्षा ने इन समुदायों में एक गहरी अलगाव और विरोध की भावना पैदा की है। ऐसे में, केवल सुरक्षा बलों के बल पर इस समस्या का समाधान असंभव है। वास्तविक, सम्मानजनक और न्यायपूर्ण एकीकरणकृजो इन समुदायों को उनके अधिकार दिलाकर राष्ट्र की मुख्यधारा में शामिल करेकृयह इस समस्या का एकमात्र दीर्घकालिक एवं टिकाऊ समाधान प्रस्तुत कर सकता है।

2. जलवायु परिवर्तन और संसाधन संघर्ष एक दोहरा संकट

जनजातीय समुदाय प्रकृति के सबसे निकट रहते हैं, और इसलिए जलवायु परिवर्तन के प्रति सर्वाधिक संवेदनशील और सबसे पहले प्रभावित होने वाले समूह हैं (ज्ब्ल रिपोर्ट, 2022)। अनियमित मानसून, सूखा, बाढ़ और जैव-विविधता का ह्रास उनकी पारंपरिक कृषि, खाद्य सुरक्षा और जल स्रोतों को सीधे प्रभावित करता है। यह संकट दोहरा है एक ओर, पर्यावरणीय परिवर्तन उनकी आजीविका के आधार को नष्ट कर रहा है, तो दूसरी ओर, इसके कारण संसाधनों पर दबाव बढ़ रहा है। जैसे-जैसे जल, जंगल और उपजाऊ भूमि जैसे संसाधन दुर्लभ होते जा रहे हैं, वैसे-वैसे पारंपरिक जनजातीय समुदायों और बाहरी हितों (कॉर्पोरेट या अन्य समुदाय) के बीच संघर्ष तीव्र हो रहे हैं। यह संघर्ष अक्सर हिंसक रूप ले लेता है और इन क्षेत्रों में सामाजिक ताने-बाने को तोड़ देता है, जिससे एकीकरण की प्रक्रिया और भी कठिन हो जाती है।

3. प्रशासनिक अक्षमता और भ्रष्टाचार अच्छी नीतियों और क्रियान्वयन के बीच की खाई

भारत सरकार ने जनजातीय कल्याण और एकीकरण के लिए अनेक प्रगतिशील योजनाएँ और कानून बनाए हैं। किंतु, इनका लाभ अक्सर जमीनी स्तर तक नहीं पहुँच पाता। इसकी मुख्य वजह है प्रशासनिक ढाँचे की जटिलता, अक्षमता और व्यापक भ्रष्टाचार (प्रशासनिक सुधार आयोग, 2008)। योजनाओं का बजट अक्सर बिचौलियों और भ्रष्ट अधिकारियों की भेंट चढ़ जाता है। फाइलें लाल फीताशाही के दलदल में फँसी रह जाती हैं। स्थानीय प्रशासन में अक्सर जनजातीय समुदायों की संस्कृति और जरूरतों के प्रति संवेदनशीलता का अभाव देखा जाता है। नतीजतन, शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और आवास जैसी मूलभूत सुविधाएँ इन तक नहीं पहुँच पातीं। यह नीति और क्रियान्वयन के बीच की गहरी खाई आम जनजातीय नागरिक और राज्य के बीच विश्वास की डोर तोड़ देती है, और उन्हें लगता है कि व्यवस्था उनके लिए नहीं है। इसलिए, प्रशासनिक सुधार और पारदर्शिता, एकीकरण की किसी भी रणनीति की सफलता की अनिवार्य शर्त है।

4. सामाजिक-मनोवैज्ञानिक अवरोध गहरी जमीनी चुनौतियाँ इन चुनौतियों से और भी गहरी, कुछ सूक्ष्म परंतु गंभीर सामाजिक-मनोवैज्ञानिक बाधाएँ हैं:

□ सांस्कृतिक अवमानना की स्थायी भावनारु मुख्यधारा के समाज द्वारा जनजातीय रीति-रिवाजों, भाषा और जीवनशैली को अक्सर पिछड़ा या अवैज्ञानिक करार देने की मानसिकता ने एक गहरी मनोवैज्ञानिक चोट पहुँचाई है।

□ पहचान का संकट नई पीढ़ी अपने पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक शिक्षा के बीच फंसी हुई है, जिससे एक अस्तित्वगत संकट पैदा हो रहा है। वे न तो पूरी तरह अपनी जड़ों से जुड़े रह पाते हैं और न ही मुख्यधारा में पूर्णतः स्वीकार किए जाते हैं।

□ मीडिया द्वारा रूढ़िबद्ध चित्रण: मीडिया और लोकप्रिय संस्कृति में जनजातीय चरित्रों को या तो विद्रोही, या मासूम, या फिर कॉमिक रिलीफ के रूप में पेश करना, उनकी वास्तविक जटिलताओं और गरिमा को झुठलाता है, जिससे सामाजिक धारणाएँ विकृत होती हैं।

एकीकरण की राह एक रोडमैप

जनजातीय समुदायों के सही अर्थों में एकीकरण के लिए केवल इच्छाशक्ति पर्याप्त नहीं है इसके लिए एक सुविचारित, बहु-स्तरीय और दीर्घकालिक रोडमैप की आवश्यकता है। यह रोडमैप नीतिगत हस्तक्षेपों से लेकर सामाजिक-मनोवैज्ञानिक पहलों तक फैला हुआ होना चाहिए।

1. स्थानीय स्वशासन को वास्तविक मजबूतीरु लोकतंत्र की जड़ें गहरी करना

□ संवैधानिक अधिकारों का क्रियान्वयनरु पेसा अधिनियम और वन अधिकार अधिनियम जैसे कानूनों को केवल कागजों तक सीमित न रखना, बल्कि उन्हें जमीन पर उतारना। इसके लिए ग्राम सभाओं को न केवल सलाहकारी, बल्कि निर्णायक अधिकार देना होगा, विशेषकर भूमि अधिग्रहण, जल-जंगल-जमीन के संसाधनों के प्रबंधन और स्थानीय विकास परियोजनाओं में।

□ क्षमता निर्माणरु ग्राम सभा के सदस्यों को प्रशासनिक प्रक्रियाओं, वित्तीय प्रबंधन और अधिकारों के कानूनी पहलुओं का प्रशिक्षण देना, ताकि वे अपनी शक्तियों का प्रभावी ढंग से उपयोग कर सकें।

□ वित्तीय स्वायत्ततारु ग्राम सभाओं को सीधे वित्तीय संसाधन आवंटित करना, ताकि वे स्वतंत्र रूप से अपनी

प्राथमिकताओं के अनुसार विकास कार्यों को अंजाम दे सकें।

2. ज्ञान-व्यवस्था का पुनर्निर्माणरु जनजातीय अध्ययन केंद्रों का सशक्तिकरण

□ शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में मूल एकीकरणरु देश के प्रमुख विश्वविद्यालयों में जनजातीय अध्ययन केंद्र स्थापित करना, जो केवल शोध तक सीमित न रहें, बल्कि जनजातीय इतिहास, दर्शन, भाषा विज्ञान, कला, और पारंपरिक ज्ञान-पद्धति पर समग्र शैक्षणिक कार्यक्रम चलाएँ।

□ ज्ञान का अंतःविषयक एकीकरणरु इन केंद्रों का लक्ष्य होना चाहिए जनजातीय ज्ञान को आधुनिक विषयों जैसे पर्यावरण विज्ञान, चिकित्सा, कृषि और प्रबंधन के साथ जोड़ना। उदाहरण के लिए, जनजातीय वनस्पति ज्ञान को आधुनिक फार्माकोलॉजी के पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाना।

□ डिजिटल संग्रहालय एवं डेटाबेस: जनजातीय भाषाओं, मौखिक साहित्य, लोकगीतों और ऐतिहासिक दस्तावेजों का एक विशाल डिजिटल डेटाबेस तैयार करना, जो शोधार्थियों और आम जनता के लिए स्वतंत्र रूप से उपलब्ध हो।

3. नेतृत्व का हस्तांतरणरु जनजातीय युवाओं को मुख्यधारा में अग्रणी भूमिका

□ प्रशासन में विविधतारु सिविल सेवाओं (आईएएस, आईपीएस) और राज्य स्तरीय सेवाओं में जनजातीय युवाओं के प्रवेश और प्रोन्नति के लिए विशेष कोचिंग, मेंटरशिप और सहायक कार्यक्रम चलाना। उनकी विशेष पृष्ठभूमि को राष्ट्र-निर्माण के लिए एक अनोखे संसाधन के रूप में देखना।

□ शिक्षण एवं तकनीकी क्षेत्र में अवसररु उच्च शिक्षण संस्थानों और तकनीकी कंपनियों में जनजातीय युवाओं को प्रोत्साहित करना, ताकि वे अपने समुदाय के लिए रोल मॉडल बन सकें और नीति-निर्माण में अपना दृष्टिकोण रख सकें।

□ उद्यमिता को बढ़ावारु जनजातीय युवाओं को स्टार्ट-अप शुरू करने, सामाजिक उद्यमिता अपनाने और अपने पारंपरिक हुनर को आधुनिक बाजार से जोड़ने के लिए वित्तीय सहायता और तकनीकी मार्गदर्शन प्रदान करना।

4. डिजिटल एकीकरणरु सूचना अंतराल को पाटना

□ बुनियादी ढाँचे का विस्ताररु जनजातीय बहुल क्षेत्रों में उच्च गति इंटरनेट कनेक्टिविटी का तेजी से विस्तार करना। यह शिक्षा, स्वास्थ्य (टेलीमेडिसिन), और बाजार तक पहुँच का मूल आधार है।

□ डिजिटल साक्षरता अभियानरु स्थानीय भाषाओं में डिजिटल साक्षरता कार्यक्रम चलाकर, समुदाय के सदस्यों को

इंटरनेट का सुरक्षित और प्रभावी ढंग से उपयोग करना सिखाना।

□ सामग्री का स्थानीकरणरु डिजिटल प्लेटफॉर्म पर शैक्षिक, स्वास्थ्य संबंधी और सरकारी योजनाओं की जानकारी को स्थानीय जनजातीय भाषाओं में उपलब्ध कराना। ई-गवर्नेंस सेवाओं को स्थानीय भाषा इंटरफेस के माध्यम से सुलभ बनाना।

5. सांस्कृतिक समरसता का निर्माणरु सामूहिक उत्सव एवं आदान-प्रदान

□ राष्ट्रीय सांस्कृतिक महोत्सव: एक भारत श्रेष्ठ भारत (एक भारत श्रेष्ठ भारत, भारत सरकार) जैसे पहल के तहत, विशेष रूप से जनजातीय विरासत को समर्पित राष्ट्रीय स्तर के उत्सव आयोजित करना। इनमें न केवल कला और संगीत का प्रदर्शन, बल्कि जनजातीय व्यंजनों, खेलों और वार्ताओं को भी शामिल करना।

□ शैक्षणिक आदान-प्रदान कार्यक्रमरु शहरी और जनजातीय क्षेत्रों के स्कूलों और कॉलेजों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम चलाना, जहाँ छात्र एक-दूसरे के समुदाय में जाकर रह सकें और सीख सकें।

□ कला को आर्थिक मूल्य: इन उत्सवों और आदान-प्रदानों को केवल प्रतीकात्मक न रखते हुए, जनजातीय कलाकारों और शिल्पकारों के लिए एक जीवंत बाजार उपलब्ध कराना, ताकि उनकी कला उनकी आजीविका का स्रोत बन सके।

6. सहायक रणनीतियाँ:

□ मीडिया साक्षरता एवं समावेशनरु मीडिया कर्मियों को जनजातीय मुद्दों पर संवेदनशीलता प्रशिक्षण देना और जनजातीय पत्रकारों एवं कंटेंट निर्माताओं को मुख्यधारा के मीडिया में प्रोत्साहित करना।

□ निगरानी एवं मूल्यांकन तंत्ररु इस रोडमैप के क्रियान्वयन की प्रगति की नियमित निगरानी के लिए एक स्वतंत्र और डेटा-आधारित तंत्र स्थापित करना, जिसमें स्थानीय समुदायों की प्रतिक्रिया को केंद्र में रखा जाए।

यह रोडमैप कोई अंतिम सूची नहीं है, बल्कि एक गतिशील रूपरेखा है, जिस पर सतत चिंतन और सामूहिक कार्य के माध्यम से एक समृद्ध, न्यायपूर्ण और एकात्म भारत का निर्माण संभव है।

निष्कर्षरु एक नए सामाजिक अनुबंध की ओर

जनजातीय समुदायों के सामाजिक-सांस्कृतिक एकीकरण का अंतिम लक्ष्य केवल एक स्थिर या शांतिपूर्ण समाज का निर्माण नहीं है। यह तो एक अपरिहार्य प्रारंभिक चरण है। इसका वास्तविक, दीर्घकालिक लक्ष्य एक सह-सृजित भारत का निर्माण करना है दृ एक ऐसा राष्ट्र जिसकी अगली पीढ़ी की कल्पना, नैतिकता

और प्राथमिकताएँ अपने मूल निवासी समुदायों की गहरी समझ से अनुप्राणित हों। इस भविष्य में, भारतीयता की परिभाषा और अधिक समृद्ध और गतिशील होगी। यह वह भविष्य है जहाँ एक आदिवासी युवती के लिए, अपनी मातृभाषा में कोड लिखते हुए एक सॉफ्टवेयर इंजीनियर बनना कोई विरोधाभास नहीं, बल्कि एक स्वाभाविक करियर पथ होगा। जहाँ एक शहरी आर्किटेक्ट, वारली चित्रकला के ज्यामितीय सिद्धांतों और भील घरों की सांस लेती डिजाइनों से प्रेरणा लेकर टिकाऊ आवास बनाएगा। जहाँ राष्ट्रीय नीति-निर्माण में, जनजातीय समुदायों का जल-जंगल-जमीन का सामूहिक ज्ञान, जलवायु परिवर्तन जैसी वैश्विक चुनौतियों से निपटने का एक मूलभूत सिद्धांत बनेगा।

यह एकीकरण, इस व्यापक अर्थ में, भारत के लोकतंत्र को और अधिक गहन एवं मजबूत बनाएगा। यह हमें सिखाएगा कि लोकतंत्र की सफलता केवल मतदान तक सीमित नहीं है, बल्कि यह हर नागरिक की आवाज के मूल्य और हर संस्कृति की गरिमा में निहित विश्वास में है। यह डॉ. अम्बेडकर (अम्बेडकर, 1949) के सामाजिक लोकतंत्र के सपने को साकार करने का सबसे सार्थक मार्ग है दृष्ट एक ऐसा लोकतंत्र जो न केवल राजनीतिक, बल्कि सामाजिक और आर्थिक रूप से भी समावेशी हो।

अंततः, जनजातीय समुदायों का एकीकरण केवल एक नीतिगत लक्ष्य नहीं, बल्कि भारत की आत्मा की पुनर्खोज है। यह हमारे राष्ट्र के लिए स्वयं को एक नए, अधिक सचेतन और अधिक करुणामय स्तर पर पुनः परिभाषित करने का एक ऐतिहासिक अवसर है। यह हमें आमंत्रित करता है एक ऐसे भारत का सह-निर्माण करने के लिए, जो अपनी सभी विविधताओं, अपने सम्पूर्ण इतिहास और अपनी सामूहिक कल्पना के साथ, मानवता के समक्ष एक समृद्ध, टिकाऊ और न्यायपूर्ण भविष्य का एक जीवंत मॉडल प्रस्तुत कर सके। यह कोई विकल्प नहीं, बल्कि 21वीं सदी में भारत की नियति है।

जनजातीय समुदायों का सामाजिक-सांस्कृतिक एकीकरण कोई दान नहीं, बल्कि एक नए सामाजिक अनुबंध का प्रस्ताव है। यह एक ऐसा अनुबंध है जो पारस्परिक सम्मान, सहयोग और साझा भविष्य पर आधारित है। यह तब तक पूरा नहीं होगा जब तक एक शहरी युवा को भारत के नक्शे पर सिर्फ राज्यों की सीमाएँ नहीं, बल्कि जनजातीय समुदायों का भूगोल और उनकी समृद्धि दिखाई देने लगे। यह तब सफल होगा जब एक जनजातीय बच्चा अपनी मातृभाषा में गणित और विज्ञान पढ़ेगा और अपने पारंपरिक ज्ञान के साथ आधुनिक इंजीनियर बनने का सपना देखेगा। यही सही अर्थों में डॉ. भीमराव आंबेडकर द्वारा परिकल्पित सामाजिक

लोकतंत्र और महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज के आदर्शों का साकार रूप होगा, जहाँ हर व्यक्ति और हर समुदाय गरिमा, गर्व और समान अवसर के साथ राष्ट्र-निर्माण में अपना योगदान दे सके।

सन्दर्भ सूची

1. अब्बी, अन्विता (2021). भारत की विलुप्तप्राय भाषाएँ और ज्ञान का संकट. नई दिल्ली: भाषा संस्थान.
2. अग्रवाल, अनिल (2010). जल संकट और पारंपरिक जल प्रबंधन. दिल्ली: पर्यावरण प्रकाशन.
3. अम्बेडकर, भीमराव रामजी (1936). जाति-विच्छेद. नागपुर: बोधि साहित्य.
4. अम्बेडकर, भीमराव रामजी (1949). भारत का संविधान: एक विश्लेषण. दिल्ली: संविधान प्रेस.
5. एल्विन, वेरेरियर (1943). द आदिवासी ऑफ इंडिया. लंदन: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
6. एक्सिस रिपोर्ट (2018). भारत में जनजातीय समुदायों की सशक्तिकरण के मुद्दे. मुंबई: एक्सिस रिसर्च.
7. ऑडिट रिपोर्ट (2019). जनजातीय कल्याण योजनाओं का क्रियान्वयन. नई दिल्ली: बि।बि.
8. बनर्जी, सुमंत (2009). भारत में उग्रवाद का इतिहास और समाजशास्त्र. कोलकाता: सामाजिक अध्ययन केंद्र.
9. भारत का संविधान, अनुच्छेद 244 (1950). पाँचवीं और छठी अनुसूची.
10. भारतीय पर्यटन विकास निगम (2019). टिकाऊ पर्यटन और स्थानीय सशक्तिकरण. नई दिल्ली: पर्यटन मंत्रालय.
11. गडगिल, माधव और गुप्ता, अमित (2021). पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक विज्ञान. बेंगलुरु: इंडियन एकोलॉजिकल सोसाइटी.
12. गाँधी, मोहनदास करमचंद (1947). हिंद स्वराज और ग्राम स्वराज. अहमदाबाद: नवजीवन ट्रस्ट.
13. गहलोत, अशोक (2006). औपनिवेशिक भारत में जनजातीय भूमि अधिकार. जयपुर: राजस्थान हिस्टोरिकल सोसाइटी.
14. देशमुख, सीताराम (2020). भारतीय सभ्यता में जनजातीय योगदान. नागपुर: आदिवासी शोध प्रकाशन.
15. पेसा अधिनियम, 1996 (1996). पंचायतों (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम, भारत की संसद.
16. प्रशासनिक सुधार आयोग (2008). जनजातीय क्षेत्रों में शासन. नई दिल्ली: भारत सरकार.
17. बैक्स, मार्क (2018). सांस्कृतिक अर्थव्यवस्था और रचनात्मक

उद्योग. कैम्ब्रिजरू पोलिटी प्रेस.

18. माझी, भागवान (2017). जनजातीय दर्शन और आधुनिकता. रांचीरू झारखंड स्टडीज सेंटर.
19. मिश्रा, अरुण (2015). युवाओं में पहचान का संकट. दिल्लीरू मनोविज्ञान प्रकाशन.
20. मुंडा, राम दयाल (2003). जनजातीय भाषा और साहित्य. रांचीरू जनजातीय साहित्य अकादमी.
21. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली (1927). द हिंदू व्यू ऑफ लाइफ. लंदनरू जॉर्ज एलन एंड अनविन.
22. वन अधिकार अधिनियम, 2006 (2006). अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, भारत की संसद.
23. वर्मा, राजीव (2019). भारत में एकात्मक विविधता. दिल्लीरू नेशनल बुक ट्रस्ट.
24. वाडिया, मार्क (1995). भारतीय जनजातीय कला का इतिहास. मुंबईरू आर्ट इंडिया प्रकाशन.
25. ज्वाल्म्व, भारत सरकार (1987). ट्राइबल को-ऑपरेटिव मार्केटिंग डेवलपमेंट फेडरेशन ऑफ इंडिया.
26. एक भारत श्रेष्ठ भारत, भारत सरकार (2015). राष्ट्रीय एकीकरण पहल.
27. प्ळ रिपोर्ट (2022). जलवायु परिवर्तनरू प्रभाव, अनुकूलन और संवेदनशीलता. जेनेवारू प्ळ.
28. सच्चर समिति रिपोर्ट (2006). भारत में सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक स्थिति. नई दिल्लीरू भारत सरकार.
29. नेशनल मीडिया स्टडीज (2022). भारतीय मीडिया में जनजातीय चित्रण. नई दिल्लीरू मीडिया रिसर्च इंस्टीट्यूट.

डॉ० सुधीर कुमार सिंह

प्राचार्य, वैशाली महिला कॉलेज,

हाजीपुर, बिहार.

पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग,

जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार.

सारांश:

आज हमारे समक्ष पारम्परिक परीक्षा प्रणाली और मूल्यांकन को बदलने की चुनौती उभर कर आई है। माध्यमिक स्तर पर सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन पद्धति को अपने सभी विद्यालयों में लागू करते हुए सी.बी.एस.ई. ने यह स्पष्ट संदेश दिया है कि मूल्यांकन करते समय विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखा जाना चाहिए। अधिगम एक सतत् प्रक्रिया है इसलिए मूल्यांकन भी सतत् होना चाहिए। मूल्यांकन अध्यापन एवं अधिगम की प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है, इसलिए सी.सी.ई. (सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन पद्धति) में मूलरूप से विद्यार्थी के ज्ञान की परीक्षा के स्थान पर उसके अधिगम की प्रक्रिया को मूल्यांकन के लिए चुना गया है।

शिक्षा के क्षेत्र में नवाचारों के प्रयोग की एक सतत् प्रक्रिया रही है। शिक्षा का एक अभिन्न भाग मूल्यांकन भी इससे अछूता नहीं है। यद्यपि परीक्षा प्रणाली एवं मूल्यांकन प्रक्रिया से शिक्षा जगत अत्यंत ही त्रस्त है। और यह माना जाता है कि दोष पूर्ण परीक्षा प्रणाली ही उपलब्धि के गिरते स्तर के लिये उत्तरदायी हैं। फिर भी उसके अभाव में शिक्षा व्यवस्था की पूर्णता भी संदिग्ध हो जाती है। इस स्थिति से उबरने के लिये आवश्यक है कि मूल्यांकन प्रणाली में भी नवाचार ढूंढे जायें एवं प्रयुक्त किये जायें। इसी तथ्य को आधार मानकर 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में मूल्यांकन का शिक्षण एवं अधिगम प्रक्रिया से अन्योन्याश्रित संबंध माना और यह भी बताया कि यह एक सशक्त उपकरण है जिसके माध्यम से उपलब्धि के स्तर में गुणवत्ता लाई जा सकती है तथा शिक्षा में गुणात्मक सुधार किया जा सकता है जिससे बच्चों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास किया जा सके। इस आशा को विकसित करने के लिये एक नवाचार प्रस्तुत किया गया जिसे सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन का नाम दिया गया। देश में शैक्षिक वातावरण को गुणवत्तापूर्ण एवं सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से वर्ष 2005 में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 जारी की गई जिसके तहत की गई सिफारिशों का प्रमुख ध्येय बच्चों पर बस्ते का बोझ कम करना, छात्रों में खोजी प्रवृत्ति का विकास करना, उन्हें ज्ञान सृजन में दक्ष बनाना, उनमें कमिक रूप से सृजनात्मकता एवं गुणात्मक दक्षताओं का विकास करना तथा इन सबके साथ मूल्यांकन प्रणाली में व्यापक सुधार करना रहा है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में मुख्य ध्यान बालक को विभिन्न प्रकार के ज्ञान को रटने को प्रोत्साहित करने व एक समय पर उसे कॉपी पर उगल देने पर रहा है। जो छात्र जितना अधिक रटकर परीक्षा में कॉपी पर लिख पाता है वह उतना ही बुद्धिमान समझा जाता

है। इसमें केवल विद्यार्थी के किताबी ज्ञान का ही मापन किया जाता है और वह भी इस तरह से कि केवल बहुत कम पढ़कर ही छात्र ऊंची डिग्री प्राप्त कर लेता है। पाठ्य वस्तु की समझ के प्रति विद्यार्थी के गुणात्मक पहलू आज की मूल्यांकन प्रणाली में दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं। इस कमी को दूर करने हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 तथा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन प्रणाली को अपनाने पर जोर दिया गया है। सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन (सी.सी.ई.) का अर्थ विद्यार्थी के स्कूल आधारित मूल्यांकन व्यवस्था से है जो विद्यार्थी के सीखने के समस्त पक्षों पर ध्यान देती है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि बच्चों का सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन किया जाएगा।

प्रस्तुत शोध आलेख वर्तमान परिदृश्य में सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन (सी.सी.ई.पद्धति) का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्दावली: वर्तमान, परिदृश्य, सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन सी.सी.ई. पद्धति, समग्र, विश्लेषण

प्रस्तावना: पहले 10वीं बोर्ड परीक्षा आधे में वैकल्पिक थी और आधे में अनिवार्य थी। 60 फीसदी बच्चे बोर्ड परीक्षा नहीं देते थे। कंटीन्यूअस एंड कॉम्प्रिहेंसिव इवेल्यूएशन (सी.सी.ई.) का सिस्टम लागू था, जिसके तहत जो बच्चे बोर्ड एग्जाम नहीं देते थे उनका आन्तरिक आंकलन होता रहता था। यह 10वीं में लागू था। अब सभी स्कूलों में 10वीं की बोर्ड परीक्षा एक जैसी होगी। इसी तरह छठी से आठवीं तक सभी स्कूल अलग व्यवस्था और शैली अपना रहे थे। परीक्षा, पढ़ाई, रिपोर्ट कार्ड भी स्कूलों के अपने-अपने होते थे। उसमें कोई मानकीकरण या बैच मार्किंग नहीं होती थी। जब दसवीं में बोर्ड ले आए हैं तो इसकी तैयारी के फलस्वरूप छठी से आठवीं तक सिलेबस और पढ़ाई में एकरूपता रखनी पड़ेगी, इसीलिए यह सिस्टम लागू किया है। छात्र छठी में 60 फीसदी, सातवीं में 70 फीसदी और आठवीं में 80 फीसदी कोर्स पढ़ेगा, फाइनल एग्जाम में आएगा। और फिर नौवीं में वर्ष भर का सिलेबस आएगा। नौवीं और दसवीं एक जैसी होगी। इस तरह का सिलेबस बनाया गया है, जो छात्रों की पढ़ाई के अनुकूल है।

मैं दुनिया के पढ़ाई सिस्टम के बारे में कुछ नहीं कह सकता, लेकिन हमारे देश में पढ़ाई की गुणवत्ता का जो परम्परागत तरीका है हम उस पर चल रहे हैं। छात्रों को आगे परीक्षाएं देना है आईआईटी, कैंट, स्लैट और अन्य स्पर्धाओं में प्रतियोगिता का सामना करना है उसके अनुरूप नया बदलाव लागू किया गया है। बच्चों को उसी अनुरूप तैयार करना पड़ेगा नहीं तो बच्चा आगे मिसफिट हो

जाता है।

पढ़ाई की नई व्यवस्था को हर किसी ने माना है, पसंद किया है। सबने इसे स्वीकार किया है। सब कह रहे हैं कि नए पैटर्न से बच्चे पढ़ना शुरू करेंगे। जब बच्चे पढ़ रहे हैं तो उनकी परीक्षा भी होनी चाहिए। अनुशासन भी होना चाहिए। तभी तो वह सीबीएसई स्कूल में फीस दे रहे हैं, तो वे अनुशासन, परीक्षा और पढ़ाई भी चाहते हैं। हमने इस व्यवस्था से जुड़े बहुत सारे लोगों से चर्चा की थी, जिनमें स्कूलों में प्रिंसिपल, टीचर, पैरेंट्स आदि भी शामिल थे। छह-सात बार वर्कशॉप भी आयोजित हुई, जिसमें इन सबसे चर्चा हुई। इन लोगों ने जैसा कहा उसी के अनुसार नया सिस्टम तैयार किया है। कोई भी सर्कुलर हम खुद नहीं बनाते हैं। पूरी एक लोकतांत्रिक प्रक्रिया अपनाई गई है। कोई भी पैटर्न एकदम से नहीं बदलता है उसके पीछे पूरी प्रोसेस होती है। एक-एक बदलाव करने में तीन से चार महीने लगे हैं। इसी के साथ हमने सीबीएसई के सभी 18 हजार स्कूलों के लिए एक जैसा मार्कशीट सिस्टम शुरू किया है। यह एकरूपता की दिशा में बेहतर कदम है। यह अच्छी प्रक्रिया है। 12वीं में भी मार्कशीट और ग्रेड सिस्टम होता है उसी सिस्टम को हमने यहां शुरू किया है। अब नया असेसमेंट सिस्टम शुरू हो गया है। बोर्ड परीक्षा आ गई है। शिक्षण का नया सिस्टम आ गया है। जो बच्चों को पढ़ाई के लिए अधिक प्रेरित करेगा।¹

पढ़ाई का मतलब सिर्फ शैक्षणिक विकास नहीं है बल्कि इसका उद्देश्य तो विद्यार्थियों का सम्पूर्ण विकास करना है। ऐसा विकास जिसे हम सिर्फ अंकों के आधार पर नहीं आंक सकते। नया पैटर्न क्यों लाया गया, यह तो सीबीएसई के अधिकारी ही बता सकते हैं। हो सकता है उनके पास अपने पक्ष में कुछ आँकड़े भी हो, लेकिन इतना तो तय है कि हर विद्यार्थी के व्यक्तित्व के कई आयाम होते हैं और शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो उनके हर आयाम का विकास करे।

आठ साल पहले जब हम सी.सी.ई. (कंटीन्यूअस एण्ड कॉम्प्रिहेंसिव इवेल्यूएशन) लाए थे तब सोच यही थी कि नई पीढ़ी का सिर्फ एकडिमिक्स नहीं, बल्कि उनकी को-स्कॉलिस्टिक लर्निंग (जिंदगी में काम आने वाले कौशल, कार्य आधारित शिक्षा, ललित कलाएँ, रवैया और जीवन मूल्यों) के आधार पर मूल्यांकन किया जाए ताकि विषय ही नहीं, उसके कॉन्सेप्ट और व्यावहारिक उपयोगिता के साथ – साथ विद्यार्थियों की रुचियों को पहचाना जा सके, उन्हें आगे बढ़ा पाएँ। उनकी क्रिटिकल थिंकिंग (निष्पक्ष विश्लेषण व मूल्यांकन) और गुणों का आकलन कर जान सकें कि वे विपरीत हालातों में चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए

कितने काबिल हैं। यह तो तय ही था कि इसे लागू करने में वक्त लगता, लेकिन यह जरूर है कि यह बदलाव आकार लेने लगा था। कुछ स्कूलों को सीसीई पैटर्न समझने में दिक्कतें आई, सवाल भी उठाए गए। यह तक कहा जाता था कि विद्यार्थियों को अंग्रेजी में एप्लीकेशन भी लिखनी नहीं आती, लेकिन यह समस्या दृष्टिकोण की थी। अगर आपको विद्यार्थी कम अंक आने पर दुःखी नहीं दिख रहे या परीक्षा से पहले तनाव में नहीं हैं तो इसका मतलब यह तो नहीं है कि वे परीक्षा के प्रति गंभीर नहीं हैं। यह तो सकारात्मक पहलू है। 2008 से पहले सीबीएसई दो सर्टिफिकेट जारी करता था— एक एकडिमिक, दूसरा को-स्कॉलिस्टिक यानी 2008 से पहले भी को-स्कॉलिस्टिक असेसमेंट होता था, लेकिन लोगों को इसकी अहमियत पता नहीं थी, इसलिए अभिभावक दूसरा सर्टिफिकेट लेने ही नहीं आते थे। देश के जिन स्कूलों में एक क्लास में ज्यादा छात्र होते थे, वहाँ शिक्षकों ने सीसीई पैटर्न को लागू करने में गंभीरता नहीं दिखाई। थर्ड पार्टी असेसमेंट की ही रिपोर्ट्स देख लीजिए— सीसीई पैटर्न की वजह से बोर्ड या जेईई मेन्स के रिजल्ट में कोई गिरावट नहीं आई। सीसीई का मकसद पढ़ाने के तरीकों को वक्त के मुताबिक बदलना था। पारम्परिक तरीकों से आगे बढ़कर लर्निंग बेस्ड तरीकों के प्रति रुचि पैदा करना था। हमने 11वीं के विद्यार्थियों पर सी.सी.ई का असर जाँचने के लिए कई बार रैंडमली चैक किया तो पाया कि वे बेहतर सीख और समझ पा रहे थे। सबसे अच्छी बात तो यह थी कि वे सेल्फ स्टडी की ओर बढ़ने लगे थे। माहौल ऐसा बन गया जहाँ शिक्षक सिर्फ उनके मददगार थे।²

सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन पर आधारित महत्वपूर्ण बिन्दु: परीक्षाएँ शिक्षा की प्रक्रिया के अपरिहार्य भाग हैं क्योंकि अध्यापन और सीखने की प्रक्रियाओं की प्रभावकारिता का पता लगाने के लिए किसी प्रकार का मूल्यांकन करना आवश्यक है। विभिन्न आयोगों और समितियों ने बाह्य परीक्षाओं पर दिए जाने वाले जोर को घटाने और सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के जरिए मूल्यांकन को प्रोत्साहन देने के बारे में सिफारिशें दी हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 “सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन जिसमें मूल्यांकन के शैक्षिक और सह- शैक्षिक दोनों पहलू शामिल हों और जो शिक्षा की सम्पूर्ण अवधि के लिए हो” पर जोर देती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 1986 (एन.पी.ई.) की समीक्षा करने वाली समिति की रिपोर्ट— भारत सरकार द्वारा 1991 में प्रकाशित सिफारिश में “सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के मापदंड तय किए गए हैं और इस मूल्यांकन प्रणाली के दुरुपयोग को रोकने के सुरक्षोपयोगी सुझाव दिए गए हैं।”

विद्यालय के स्तर पर मूल्यांकन का एक मुख्य लक्ष्य विद्यार्थियों को शैक्षिक— क्षेत्र में अपनी उपलब्धियों में सुधार करने और जीवन के वृहद प्रसंग और जीवन— पटल के संदर्भ में जीवन— कौशल और अभिवृत्तियों का विकास करने में सहायता देना है।

बोझ के बिना सीखना— भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के शिक्षा विभाग द्वारा नियुक्त की गई राष्ट्रीय सलाहकार समिति की रिपोर्ट में यह कहा गया है कि “कक्षा 9 और 10 के अंत में होने वाली बोर्ड परीक्षाएँ कठोर दफ्तर शाही युक्त और मूल रूप से गैर— शिक्षाप्रद बनी हुई हैं।

सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन (सी.सी.ई. पद्धति) से संबंधित महत्वपूर्ण शब्दावली:

यह सीखने— सिखाने की प्रक्रिया का एक हिस्सा है।

इस प्रक्रिया में शिक्षक, बच्चे व अभिभावकों को एक सकारात्मक फीड बैक प्राप्त होता है, जिसके द्वारा शिक्षण प्रक्रियाओं को बेहतर बनाने में सहयोग मिलता है।

इस प्रक्रिया के द्वारा बच्चों में हो रहे व्यवहारगत परिवर्तनों को पहचाना जा सकता है।

परीक्षा के व्याप्त भय को दूर करने के लिए सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन की महती आवश्यकता है।

बच्चों में नकल करने की प्रवृत्ति व रटने की प्रवृत्ति को समाप्त करने तथा सृजनशीलता एवं व्यावहारिकता को प्रोत्साहित करने के लिए सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन की अनिवार्य आवश्यकता है।

बच्चे की आवश्यकता व रुचि के अनुसार उसकी सहभागिता व सक्रियता को मापने के लिए सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन की आवश्यकता है।

बच्चे के सीखने की प्रगति को प्रमाणित करने के लिए एवं अभिभावकों को उसकी प्रगति बताने के लिए सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन का होना आवश्यक है।

चूँकि शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना है, अतः बालक के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित करने के लिए सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है।

बच्चे के सर्वांगीण विकास हेतु व्यापकता के संदर्भ में बेहतर वातावरण का अवसर उपलब्ध करवाने के लिए सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन का बहुत अधिक महत्व है।

पाठ्यचर्या के वे विषय या क्षेत्र जिन्हें पैन, पेपर, पेंसिल द्वारा नहीं जाँचा जा सकता है ना ही गणितीय अंकों द्वारा जाँचा जा सकता है जैसे— स्वास्थ्य, योग, संगीत, कला, अभिव्यक्ति, सक्रियता आदि। उनकी जाँच करने के लिए सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन का होना आवश्यक है।

बच्चों में सीखने के प्रति पूर्णता की भावना के विकास के लिए प्रोत्साहित करने हेतु सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन का महत्व है।

सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन (सी.सी.ई.) के परिप्रेक्ष्य में विद्यालय का स्वरूप:— सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन दरअसल सीखने— सिखाने या दूसरे अर्थ में शिक्षक व्यवस्था में आमूल चूल परिवर्तन की बात है। यह सिर्फ मूल्यांकन प्रक्रिया की बात नहीं करता बल्कि यह विद्यालय को उस उत्तरदायित्व को पूरा करने का अवसर देता है। जिसके लिए विद्यालय नामक संस्था की संकल्पना की गई है। अतः सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन लागू करना एक समग्र दृष्टि की अपेक्षा करता है। एक विद्यालय को इस व्यवस्था को समग्रता में अपनाना होगा और विद्यालय की सभी प्रक्रियाएँ इसकी पूरक के रूप में होंगी। विद्यालय के मूल्यांकन के अन्तर्गत विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के विकास संबंधी लगभग सभी क्षेत्रों को शामिल किया जाता है। इसमें शैक्षिक और सह—शैक्षिक दोनों ही क्षेत्रों को शामिल किया जाना चाहिए अर्थात् इसे अत्यधिक व्यापक होना चाहिए। यह शिक्षा के लक्ष्यों के अनुसार कार्य करता है मूल्यांकन एक सतत् प्रक्रिया है जो विद्यार्थियों की क्षमता और उनकी कमियों को बार— बार बताता है ताकि उन्हें अपने आपको समझने और सुधारने का बेहतर अवसर मिलता रहे। यह शिक्षक को भी प्रतिपुष्टि (फीडबैक) उपलब्ध कराता है ताकि वे अपनी शिक्षण संबंधी कार्यशैलियों में सुधार कर सकें। विद्यालय स्तर पर मूल्यांकन के प्रयोजनों में से एक मुख्य प्रयोजन शैक्षिक विषयों में विद्यार्थियों की उपलब्धि में सुधार करना और विद्यालयी शिक्षा के उद्देश्यों के अनुरूप उसमें सही आदतों और अभिवृत्तियों का विकास करना है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम— 2009 के अन्तर्गत सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन (सी.सी.ई.) के परिप्रेक्ष्य में विद्यालय का स्वरूप इस प्रकार होना चाहिए।

1. शिक्षकों को अपनी शिक्षण योजना में बदलाव करना होगा।
2. विद्यार्थियों का नियमित मूल्यांकन करना होगा।
3. कक्षा प्रबंधन एवं समय प्रबंधन को विद्यार्थियों के मूल्यांकन के आधार पर लचीला बनाना होगा।
4. विद्यालय में मूल्यांकन के उपकरणों और तरीकों में बदलाव करना होगा।
5. शिक्षण अधिगम सामग्री इस तरह तैयार करनी होगी जो कि अंततः विद्यार्थियों को ज्ञान के सृजन के अवसर देती हो।
6. पाठ्यक्रम का प्रबंधन इस प्रकार करना होगा कि दक्षताओं पर समग्रता के साथ काम किया जाए।

उपसंहारः— इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा के अधिकार अधिनियम की सुनिश्चितता के उद्देश्य से सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन पद्धति का आगाज सीबीएसई द्वारा किया गया था। आज का दौर परिवर्तनशील होने के साथ ही विशिष्टताओं को अपनाने की ललक भी रखता है। हर क्षेत्र में नई पद्धति को आत्मसात करने का मतलब पुराने को त्यागने से ज्यादा उसे बेहतर बनाना है। सीसीई की सोच विश्व की सबसे बड़ी युवा आबादी वाले देश में बच्चों की शिक्षा पद्धति को परीक्षा केन्द्रित से हटाकर छात्र-केन्द्रित करना रहा था। इस प्रक्रिया में जितनी बच्चों की भागीदारी रही है उतनी ही तत्परता व समर्पण शिक्षकों का भी आवश्यक रहा। प्रत्येक बच्चे की रुचि व उसके अध्ययन के तरीके का मूल्यांकन कर उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को निखारना इस पद्धति में निहित है। रटने की प्रवृत्ति को त्यागकर एक ऐसी शिक्षण प्रणाली को विकसित करने को लेकर सोच थी जिसमें पढ़ाई के साथ अन्य गतिविधियों को भी पूरा महत्व दिया जाए। बच्चों में लेखन के प्रति रुचि के साथ ही नये आविष्कारों को करने का जज्बा पैदा करना आज के वैश्विक युग में बेहद जरूरी है। यदि भारत की वास्तविक सामाजिक परिस्थितियों का आंकलन किया जाए तो सीसीई की सफलता के लिए लगभग सात वर्ष का कार्यकाल कम ही माना जाएगा क्योंकि जनसंख्या के विस्तार के साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत संरचना की कमी इस मूल्यांकन पद्धति के लिए प्रतिकूल साबित हुई है। किसी भी सरकारी नीति की सफलता उसके क्रियान्वयन से ज्यादा जिस समूह को लक्षित होती है, उसकी पूर्ण भागीदारी पर निर्भर करती है। हमारे देश में जहाँ ग्रामीण परिवेश में आज भी कई तबकों में शिक्षा का उतना महत्व नहीं है, उस तबके के बच्चों को शिक्षा के प्रति आकृष्ट करने व परीक्षा के भय से मुक्त करने का सद्उद्देश्य इस नीति में समाहित रहा। कई शोध अध्ययन इस बात को प्रमाणित कर चुके हैं कि अल्प समय में ही सीसीई के कारण ड्राप-आउट्स की संख्या में बड़ी कमी आई थी तथा बच्चों की नैसर्गिक प्रतिभाओं की अभिव्यक्ति का मंच भी उपलब्ध हो रहा था। निजी स्कूलों में शिक्षकों द्वारा अच्छा प्रदर्शन ही पदोन्नति का एक मात्र जरिया है। इसलिए प्राइवेट स्कूलों में सीसीई के प्रति ज्यादा पूर्वाग्रह नहीं रहे और सीसीई के जितने भी निर्देश थे उनके अनुपालन में भी कम कठिनाईयां महसूस की गईं। वहीं इसके विपरीत सरकारी क्षेत्र में समग्रता के साथ इस पद्धति का अनुपालन नहीं हो पाया। इंटरनेट की अनुपलब्धता व शिक्षकों के प्रशिक्षण का अभाव सीसीई को अप्रभावी बना गया। हर योजना की सफलता उसकी 100 प्रतिशत निगरानी द्वारा सुनिश्चित होती

है और जब उस योजना का मूर्त रूप दिया जाना हो तब उसके समस्त स्टेक होल्डर्स की सहभागिता परमावश्यक है। बच्चों के सतत् मूल्यांकन का सीधा तात्पर्य है— प्रत्येक बच्चे के व्यक्तित्व के समग्र विकास का दायित्व संस्था के शिक्षकों पर आना। यह शायद शिक्षकों को रास नहीं आया, फिर सामाजिक परिवेश में भी कुछ ऐसा है कि मानसिक तौर पर जब तक बच्चे स्कूल से मिलने वाले गृहकार्य में दो-चार घंटे ना लगाएँ तब तक अभिभावकों को भी शिक्षण संस्थान की गम्भीरता या गुणवत्ता पर संशय रहता है। बच्चों को तनाव मुक्त वातावरण मिले तो उनका भविष्य विकासोन्मुखी हो सकता है। और यह तभी संभव है जब बच्चे पढ़ाई को बोझ ना समझें। सम्पूर्ण विश्व में सभी विकासशील देशों में बचपन से ही बच्चों की अभिरुचि को केन्द्र बिन्दु में रखकर उनके लिए भविष्य की समस्त कार्य योजनाओं का निर्धारण किया जाता है। हमारे देश में शिक्षा को आजीविका से जोड़कर देखे जाने की प्रवृत्ति बच्चों के व्यक्तित्व के निर्माण में सबसे बड़ी बाधक है। गत ढाई से तीन दशकों में प्रतिस्पर्धात्मकता इस कदर हावी हो गई है कि किशोरवय छात्र के सम्पूर्ण शारीरिक व मानसिक विकास का दौर निजी ट्यूशन सेन्टरों के चक्कर लगाने व सुबह से लेकर रात तक बंद कमरों में निर्धारित पाठ्यक्रमों को रटने में बीत रहा है। 10वीं कक्षा के बाद डमी स्कूलों का दौर भी बढ़ गया ताकि फीस चुकाकर प्राइवेट कोचिंग संस्थानों की शिक्षण पद्धति का लाभ उठाकर प्रतियोगी परीक्षाओं को उत्तीर्ण किया जा सके। यह प्रक्रिया शिक्षकों को तो तनावमुक्त कर देती है परन्तु छात्रों व उनके अभिभावकों के लिए जिस तनाव का चक्रव्यूह इससे निर्मित हुआ है, उसने कई किशोरों को युवा दहलीज तक पहुंचने से पहले ही मृत्यु का द्वार दिखा दिया। डॉक्टर, इंजीनियर व सिविल सर्वेन्ट बनने का सपना तो माता-पिता की आँखें देखती हैं, उसे पूरा करने का दायित्व बच्चों पर डाला जा रहा है। जिसका फायदा असीमित केपिटेशन फीस के रूप में चांदी कूटने वाले संस्थानों को हो रहा है। जब प्रतियोगी परीक्षाओं की प्रतिस्पर्धा के बोझ तले दबे छात्रों की आत्म हत्याओं का सिलसिला सबको उद्वेलित करता है, तब सर्व स्वीकार्यता बनती है कि अत्यधिक दबाव से अवसाद में आकर बच्चे आत्मधाती कदम उठा रहे हैं और उसके लिए एकमात्र संजीवनी बच्चों के साथ सीधा संवाद व उससे बढ़कर उन्हें अवसाद मुक्त वातावरण देना निर्विवाद रूप से सुझाया गया है। सीसीई का भी उद्देश्य बच्चों को तनावमुक्त वातावरण देकर उनके ज्ञान के साथ ही साइको मोटर स्किल्स का मूल्यांकन करना भी रहा ताकि बच्चों के व्यक्तित्व को उनकी नैसर्गिकता के

आधार पर विकसित कर पूर्णता प्रदान की जा सके। जिस देश में सरकारी क्षेत्रों में रोजगार सीमित हों और जहाँ सरकारी नीति स्वरोजगार को प्रेरित करने की हो और जहाँ दावे किये जाते हैं कि कौशल विकास आजीविका अर्जन की सबसे बड़ी कड़ी बन सकता है, वहाँ सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन इसकी प्राथमिक एवं सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

माध्यमिक शिक्षा से जुड़ा यह कार्यक्रम किशोर बच्चों की अभिरूचि का आकलन कर उन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त करने अथवा कौशल विकास की ओर अग्रसर होने के मार्ग को प्रशस्त करने का सबसे बड़ा माध्यम है। सीसीई पद्धति को त्यागने का सीबीएसई का निर्णय जिन भी कारणों से रहा हो, यह निश्चित है कि यह पद्धति दोषपूर्ण कदापि नहीं है। यदि इसमें कुछ कमियाँ थीं तो उन्हें दुरुस्त किया जाना चाहिए था। गहन अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन (सी.सी.ई.पद्धति) विद्यार्थियों के समग्र विकास पर जोर देती है। अतः सरकार को इस पद्धति को बन्द करने से पूर्व विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखते हुए गहन चिंतन एवं मनन करने की आवश्यकता थी।³

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. क्या परीक्षा से ही बच्चों का आकलन संभव ? बच्चे प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए मिसफिट हो जाते, आर.के. चतुर्वेदी, चेयरमैन सी.बी.एस.ई., अभिव्यक्ति, सम्पादकीय दैनिक भास्कर, भरतपुर, बुधवार 26 अप्रैल 2017 पृष्ठ संख्या – 4
2. क्या परीक्षा से ही बच्चों का आकलन संभव ?— तनाव नहीं है तो क्या परीक्षा के प्रति गंभीरता नहीं, विनीत जोशी, पूर्व चेयरमैन सी.बी.एस.ई., अभिव्यक्ति, सम्पादकीय, दैनिक भास्कर, भरतपुर, बुधवार 26 अप्रैल 2017 पृष्ठ संख्या – 4
3. छात्रों के विकास को लक्षित है सी.सी.ई. शिक्षण पद्धति— डॉ.अर्चना शर्मा, सम्पादकीय, दैनिक नव ज्योति, जयपुर, शनिवार, 15 अप्रैल 2017, पृष्ठ संख्या – 06
4. “मूल्यांकन हेतु मार्गदर्शिका”, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, पृष्ठ संख्या – 8–9
5. प्रधान, वीना (2013)— “ शिविरा पत्रिका”, माध्यमिक शिक्षा राजस्थान, बीकानेर, अंक— 4, अक्टूबर— 2013, पृष्ठ सं.— 25–34
6. “मूल्यांकन हेतु शिक्षक संदर्शिका”, राजस्थान, प्रारम्भिक शिक्षा परिषद्, पृष्ठ संख्या— 3–12, 14, 18

7. रचनात्मक मूल्यांकन हेतु शिक्षक संदर्शिका, कक्षा—10वीं केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 1–2, 7–13
8. continuous and comprehensive evaluation Manual for Teacher classes VI to VIII, Published by the secretary: C.B.S.E. 2010.

डॉ. गोपाल प्रसाद “पाठक”

सहायक आचार्य (शिक्षा)

श्री जैन शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय,

अलवर, (राज)

मो.— 07217466043

ई-मेल : gopalpathak473@gmail.com

शोध सार

आज के संदर्भ में यदि देखा जाए तो वर्तमान समय की अनेक परिस्थितियाँ मध्यकालीन समाज से भिन्न नहीं हैं। तकनीकी प्रगति तथा आधुनिकता के बावजूद भारतीय समाज में जातिवाद, संप्रदायवाद तथा अंधविश्वास की जड़ें आज भी गहराई तक फैली हुई हैं। ऐसे में सामाजिक शोषण, अन्याय और कुरीतियों के विरुद्ध संघर्ष में संतों का साहित्य आज भी एक प्रभावशाली हथियार सिद्ध होता है। संतों ने सामाजिक और धार्मिक जीवन में व्याप्त रूढ़ियों, परंपरागत मान्यताओं और विभाजनकारी विचारों का दृढ़ विरोध किया। उन्होंने समानता, प्रेम तथा भाईचारे पर आधारित एक ऐसे समाज की कल्पना की जहाँ जातिगत तथा धार्मिक भेदभाव न हो। संतों की वाणी आज के वैश्वीकरण के युग में मानव समाज को प्रेरणा देती है कि भेदभाव की समस्त दीवारों को गिराकर एक स्वस्थ, समरस तथा न्यायपूर्ण समाज की रचना की जाए।

बीज शब्द : संत, मानवतावादी, वैश्वीकरण, संतोष, आडंबर, जातिवाद, हिंसा, संतोष।

मूल लेख

आज का युग वैश्वीकरण का युग है। विज्ञान और तकनीकी के विकास के कारण कुछ ही घंटों में हजारों मील दूर बसे देशों में पहुँचा जा सकता है। दूरदर्शन तथा विविध चैनल्स की प्रभावी तथा त्वरित सेवा के कारण विश्व के एक कोने में घटी घटना के समाचार की सूचना दुनिया के तमाम देशों में तत्काल पहुँच जाती है। एक देश की संस्कृति दूसरे देश को काफी सीमा तक प्रभावित कर रही है। आयात-निर्यात बढ़ रहा है। प्रवासी नागरिकों की संख्या बढ़ी है। वैज्ञानिक और तकनीकी अनुसंधान जारी है और उसका लाभ पूरी मानवता को मिल पाना सहज हो गया है। आज अगर सारी पृथ्वी एक कुटुम्ब की भाँति है तो वैश्वीकरण उस कुटुम्ब को जोड़ने वाली नजदीक लाने वाली सतत अनिवार्य प्रक्रिया है।

यह सच है कि वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में बहुत कुछ बदल रहा है। हमारे मूल्य, मान्यताएं, परंपराएं तथा संवेदनाएं आदि आज परिवर्तित हो रहे हैं लेकिन परिवर्तन तो प्रकृति का शाश्वत नियम है और आज के समय में जो परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं वे कालानुसार परिवर्तन के उसी सनातन नियम की पुष्टि करते हैं।

वैश्वीकरण रूपी परिवर्तन की इस प्रक्रिया से घबराना या फिर उसके विरोध में खड़े होना हमारी संकुचित सोच का परिचायक है। अब प्रश्न उठता है कि क्या किया जाए? वैश्वीकरण की अनिवार्यता को समझते हुए सब अच्छा है कि भावना के साथ अपनी

आँखें बंद कर ली जाएं या बदलते युग की सच्चाइयों के साथ तारतम्य और सामंजस्य बिठाते हुए वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया से कदमताल किया जाए। सबसे उचित यह है कि वैश्वीकरण के दौर में जो कुछ अच्छा है उसे तो अपना लिया जाए और जो कुछ बुरा है उसे छोड़ दिया जाए।

वस्तुतः आज आवश्यकता इस बात की है कि वैश्वीकरण के युग की महत्ता को समझते हुए विवेकपूर्ण ढंग से अपनी परंपरा में विद्यमान उन तत्वों का मार्गदर्शक के रूप में विश्लेषण तथा अनुकरण किया जाए, जिन्होंने युगों की सीमा से परे जाकर सदैव हमें नई राह दिखाई है और तीव्र परिवर्तन के आधुनिक समय में भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितना की पहले थे। ऐसे ही सार्वभौमिक, सार्वकालिक तथा कालजयी मार्गदर्शक के रूप में संतों के काव्य को लेना असमीचीन नहीं है।

डॉ. त्रिभुवन सिंह लिखते हैं— “मध्यकालीन समाज कबीर के युग का समाज निश्चित ही आज के समाज से भिन्न था, किंतु बहुत सी समस्याएं आज भी ऐसी हैं जिन्हें कबीर ने अपने समाज में देखा था और जिनसे उनकी चिंतन धारा प्रभावित भी हुई थी। कवि या रचनाकार की प्रासंगिकता ऐसी स्थिति में बिल्कुल निर्विवाद है यदि उनके द्वारा उठाई गई समस्याएं और प्रस्तुत किए गए समाधान दोनों ही वास्तविक और उपयुक्त हैं। कबीर की अनुभूति के कुछ ऐसे बिंदु हैं जिन्हें बीसवीं शताब्दी का सचेत नागरिक भी अनुभव करता है, जो आज भी हमारी पीढ़ा के कारण हैं। कबीर का संघर्ष किसी व्यक्ति समुदाय या संप्रदाय के विरुद्ध नहीं था। उनकी लड़ाई तो सीधे-सीधे उन मठाधीशों के खिलाफ थी जिनकी संवेदना का स्रोत सूख चुका था। जिन्हें सिर्फ अपने पैर के नीचे की जमीन ही दिखाई देती थी। हमारी लड़ाई भी ऐसे ही लोगों के विरुद्ध है और इसलिए आज के संदर्भ में कबीर सबसे अधिक प्रासंगिक हैं।”

संतों के समय में भारतीय समाज हिंदू और मुस्लिम समाज में बंटा हुआ था। दोनों ही समाज धार्मिक तथा व्यावहारिक आडंबरों के शिकार हो रहे थे। हिंदू राजनीतिक दृष्टि से पराजित होकर निराश और हीनता की भावना से ग्रस्त थे। हिंदू कठोर वर्ण व्यवस्था के रहते अनेक जातियों तथा उपजातियों में विभाजित हो रहे थे। मुस्लिम समाज विजयी होने के कारण उद्दण्ड और अत्याचारी हो गया था। मुल्ला तथा मौलवी साधारण जनता को हिंदुओं के विरुद्ध भड़काते थे और अपना स्वार्थ सिद्ध करते थे। दोनों समाजों में वैमनस्य की गहरी रेखा खिंचती चली जा रहा थी। ऐसे समय में साधु संतों की एक जमात ने इन दोनों समाजों की खाई को पाटने

का काम किया तथा मानव को मानव रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। संतों के अनुसार सभी व्यक्ति समान हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, ऊँच-नीच आदि के भेदभाव समाज को तोड़ने तथा निहित स्वार्थों को पूरा करने के केवल बहाने मात्र हैं। उन्होंने एक ऐसे समाज का सपना संजोया जिसमें समता, समानता और सहजता की त्रिवेणी हो। संतों ने माना कि सभी मनुष्य रूप में ईश्वर की संतान हैं, उनमें भेदभाव उचित नहीं। कबीर के अनुसार—

एक बूँद एकै मलमूतर, एक चाम एक गूदा।

एक जाति से सब उपजना, कौन ब्राह्मण कौन सूदा।¹

गुरु नानक ने भी जाति बंधन को स्वीकार नहीं किया। उनका मानना था कि जन्म से कोई जाति नहीं होती। वह तो कर्म से कमाई जाती है—

“जाति जनमु न पूछिए, सच घरु लेहु बताइ।

सा जाति सा पाति है, जेहे करम कमाई।²

तुलसी ने तो यहाँ तक कहा—

जाति पाँति पूछे नही कोई।

हरि को भजै सो हरि का होई।³

आज के इस दौर में जातिवाद तथा सांप्रदायिकता बहुत बड़ी समस्याएँ हैं। वैयक्तिक विवेक जैसे कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाए तो जातिवाद आज भी हमारे समाज में डरावने रूप में विद्यमान है। जातिवाद का घृणित चेहरा वोटों की राजनीति की आड़ से समाज के विघटन को देखकर ठहाका लगाता है। आज कुछ राजनैतिक दल अपनी सत्ता की प्राप्ति के लक्ष्य की पूर्ति के लिए समाज को उसी आधार पर बांटने की कोशिश कर रहे हैं जिसका विरोध संतों ने शताब्दियों पूर्व ही कर दिया था। आज भी धर्म, मजहब तथा जाति के नाम पर झगड़े होते हैं तथा हो भी रहे हैं। वास्तव में आज भी न तो मंदिर मस्जिद के झगड़े खत्म हुए हैं और न ही हिंदू-मुस्लिम एकता कायम हुई है। आज भी जाति-पाति का भेद इतना अधिक दिखाई देता है भले ही उसका रूप तथा आयाम बदल गया हो। आज भी इंसानियत का गला घोंटा जा रहा है। वर्षों पहले कहे गए संतों के समानता के विचार आज भी हमें राह दिखा रहे हैं कि जाति-पाति, धर्म तथा मजहब के नाम पर लड़ना तथा झगड़े करना व्यर्थ है। विश्व का प्रत्येक प्राणी बंधु है। सभी में एक आत्मा का निवास है।

संतों ने हमेशा मनुष्य की वाणी और कर्मों के समन्वय पर बल दिया। उनके अनुसार वही मनुष्य भगवान के नजदीक जा पहुँचते हैं, जिनकी कथनी तथा करनी एक है। कबीर ने तो ऐसे मनुष्य को श्वान कहा है जो वाणी के अनुरूप कर्म नहीं करता।

ऐसा मनुष्य अपने पापों के कारण नरक भोगता है। दादू तो ऐसे व्यक्ति के संसर्ग से बचने की सलाह देते हैं जो कहते तो कुछ हैं लेकिन करते कुछ हैं—

दादू कथनी और कुछ करणी करै कुछ और।

तिन से मेरा जीव डरै, जिनके ठीक न ठौर।⁴

आज कथनी तथा करनी का भेद कायम है। थोड़े से लालच या फिर डर आदि के कारण लोग झूठ बोलने के लिए तैयार हो जाते हैं या फिर अपनी कही हुई बात से मुकर जाते हैं। ऐसे में तुलसीदास की यह पंक्तियाँ बहुत याद आती हैं—

रघुकुल रीति सदा चली आई।

प्राण जाए पर वचन न जाई।⁵

इन पंक्तियों में राह को बदलने की जो ताकत है और किसी में नहीं है क्योंकि हम उस संस्कृति से आए हैं, जहाँ अपने वचन की रक्षा के लिए प्राण तक त्याग दिए जाते हैं।

संतों की दृष्टि मानवतावादी थी। उनका काव्य युगों की सीमाओं से परे मानव मात्र के चिर कल्याण के लिए है। सभी संत मानव की भलाई चाहते थे। हिंसा का मार्ग छोड़कर शांति तथा अहिंसा का संदेश देना चाहते थे। संतों ने दया, त्याग, सेवा, सदाचार, परोपकार, ईमानदारी तथा शिष्ट व्यवहार को महत्वपूर्ण स्थान दिया। दादू तो यहाँ तक कहते हैं—

सूका सहजै कीजिए, गीला मानै नाहि।

काहे को दुख दीजिए, साहिब हैं सब माहि।⁶

मलूकदास का तो मानना था कि मनुष्य केवल इसलिए वंदनीय नहीं है कि वह हिंदू या मुसलमान है वह तो केवल इसलिए वंदनीय है क्योंकि वह ईमानदार है अन्यथा मनुष्य जीवन व्यर्थ है—

सब कोउ साहेब बन्दते, हिंदू मुसलमान।

साहेब तिसको वंदता, जिसका ठौर ईमान।⁷

आज पूरा विश्व हिंसा तथा विद्वेष की आग में जल रहा है। आज भले ही हमने आधुनिकता का मुखौटा ओढ़ रखा है लेकिन आज का औसत मनुष्य शंका, अनिश्चय की मानसिकता तथा उलझन से ग्रसित है। नगरीकरण, वैज्ञानिकता तथा पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण आदि के कारण मानवीय जीवन मूल्य टूट रहे हैं। ईमानदारी, सत्य, परोपकार, नैतिकता तथा सदाचार आज मनुष्य में कम दिखाई देते हैं। ऐसी स्थितियों में हमें संत याद आते हैं जिन्होंने मूल्यों तथा आदर्शों की स्थापना तथा जीवन-जगत की वे तमाम बातें बताई जिन्हें हम रोज की जिंदगी में जीते हैं।

संत आंतरिक शांति की खोज कर जनजीवन का कल्याण करना चाहते थे। उनकी काव्य रचना का उद्देश्य लोकयश प्राप्त करना नहीं था। उनकी सोच तथा चिंता का केंद्र बिंदु मानव जीवन रहा। प्रेम के ऐसे मार्ग का प्रचार तथा प्रसार करना जो सभी धर्मों तथा जातियों को एक कर दे उनके काव्य का मुख्य उद्देश्य था। संत इस बात को जानते थे कि सारे संसार को केवल प्रेम के सूत्र में ही बांधा जा सकता है। उनका प्रेम व्यक्ति-व्यक्ति के बीच से लेकर आत्मा-परमात्मा के बीच का प्रेम है। उनका प्रेम विश्वव्यापी है। कबीर तो यहां तक कहते हैं कि दुश्मन को जीतने के लिए तलवार की नहीं प्रेम की आवश्यकता होती है—

**“पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोई,
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होई।”⁹**

आज रिश्तों में अपनत्व का भाव नहीं है। रिश्तों में दरारें पड़ रही हैं। परिवार विघटित हो रहे हैं। इसका प्रधान कारण है पारस्परिक प्रेम का अभाव। आज प्रेम का स्थान स्वार्थ ने ले लिया है। परिणामस्वरूप मनुष्य का दायरा सीमित हो गया है और वह केवल ‘स्व’ तक सिमटकर रह गया है। संतों ने प्रेम के महत्व को स्वीकार करते हुए इसी प्रेम-भावना के कारण एकता स्थापित की। आज के समय में संतों की वाणी राह दिखाती है कि प्रेम ही वह धागा है जिससे सारे विश्व को एक सूत्र में बांधा जा सकता है।

आज समाज में प्रतिष्ठा तथा सम्मान की कसौटी मानव मूल्य नहीं हैं बल्कि धन होता जा रहा है। आज सभी सामाजिक संबंध तथा पारिवारिक रिश्तों पर अर्थतंत्र हावी हो गया है। प्रत्येक मनुष्य धन के पीछे बेलगाम घोड़े की तरह दौड़ रहा है। लेकिन मनुष्य में कहीं भी संतोष का भाव दिखाई नहीं देता है। ऐसे में कबीर की यह पंक्तियाँ बहुत याद आती हैं—

**साईं इतना दीजिए जामै कुटुंब समाय,
मैं भी भूखा न रहूँ साधु न भूखा जाय।”¹⁰**

रैदास ने भी धन संचय को दुख की खान कहा—

**सच्चा सुख सत्त धरम महि, धन संचय सुख नाहि।
धन संचय दुख खान है, रैदास समुझि मन माहि।।”**

निष्कर्ष

संतों की वाणी अमृततुल्य है क्योंकि उन्होंने समाज में मानवतावादी मूल्यों को जगाया। अपनी वाणी से उन्होंने समाज को जागृत करने का प्रयास किया। उनका साहित्य तत्कालीन

समाज के लिए जितना उपयोगी था उससे भी अधिक वह आज उपयोगी है। आज के इस वैश्वीकरण के युग में जहाँ विज्ञान और तकनीकी ने काफी ऊँचाई हासिल कर ली है संतों की बातें निश्चित रूप से संसार का मार्ग प्रशस्त कर रही हैं और आने वाले समय में भी करेंगी और पूरे विश्व में अमन का प्रकाश फैलाएंगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कबीर साहित्य की प्रासंगिकता, सं विवेकदास, पृ.— 129—130
2. कबीर ग्रंथावली, सं श्याम सुन्दर दास, पृ. 37
3. नानक वाणी, अनु. जयराम मिश्र, पृ. 783
4. हिंदी का इतिहास, शंभुनाथ सिंह, पृ. 0— 53
5. संतवाणी संग्रह (प्रथम संस्करण), भाग—1, दादूदयाल, पृ. — 93
6. रामचरितमानस, गीता प्रेस, पृ.—181
7. दादूदयाल की वाणी, भाग—1, पृ. 78
8. संत सुधासार, द्वितीय खण्ड, मलूकदास, पृ. 38
9. कबीर ग्रंथावली, सं. श्यामसुंदर दास, पृ. 30
10. संत सुधासार, खण्ड 1, पृ.—157
11. रैदास की बानी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दोहा— 84, पृ.— 126

डॉ. रजिंदर कौर
एसोसिएट प्रोफेसर
माता सुंदरी कॉलेज।
दिल्ली

Abstract

India faces an urgent imperative to align its fiscal systems with ambitious climate commitments. Achieving Net Zero by 2070 and reducing GDP emissions intensity by 45% by 2030 requires massive investments in green infrastructure, estimated at nearly USD 4.5 trillion by 2040. This paper examines the conceptual advantages of integrating green budgeting and climate finance into India's fiscal framework, with a focus on sub-national implementation through State Action Plans on Climate Change (SAPCCs). By highlighting successful state-level case studies from Odisha, Chhattisgarh, Tamil Nadu, Assam, and other examples, the paper demonstrates practical pathways for operationalizing green public financial management. It also analyses persistent technical, institutional, financial, and political challenges, and concludes with actionable recommendations for standardization, outcome-based monitoring, and capacity-building to strengthen sub-national climate governance.

Keywords: Green Budgeting, Climate Finance, SAPCC, Public Financial Management, India.

JEL Classifications: H72, H83, Q56, Q58, O13

I Introduction and Global Context

Climate change is widely recognized as one of the most important challenges of the 21st century, demanding coordinated global action. International agreements, including the Paris Agreement (2015) and the Sustainable Development Goals (SDGs), emphasize that climate action is integral to sustainable economic growth, social equity, and long-term stability.

India, as one of the largest emerging economies, has committed to achieving Net Zero emissions by 2070 and reducing GDP emissions intensity by 45% by 2030 compared to 2005 levels. These commitments require substantial investment, estimated at USD 4.5 trillion by 2040, spanning clean energy generation, sustainable transport, energy-efficient infrastructure, and climate adaptation measures. Mobilizing such financing demands robust public financial management systems, innovative

green finance instruments, and active private sector participation.

Global precedents underscore the importance of embedding climate priorities into fiscal frameworks. The Philippines' Climate Change Expenditure Tagging (CCET) initiative, for instance, has provided a model for integrating climate goals across budget cycles, ensuring both resilience and fiscal accountability. Similarly, South Africa's Carbon Tax Fund illustrates how targeted fiscal instruments can mobilize private sector investment while addressing adaptation needs. These examples provide valuable lessons for India's states, where diverse climatic vulnerabilities and governance capacities demand tailored approaches.

II Review of Literature

Literature review is categorised in the following manner to understand the concept and policies of green finances in sequence manner

- *Governance and Financial Flows in Climate Action*

The expansion of climate finance has raised critical questions about governance, accountability, and the balance between mitigation and adaptation funding. Governance is increasingly polycentric, involving state and non-state actors across multiple levels, yet shaped by neoliberal logics that privilege debt-based instruments and profit-oriented accountability metrics (Bracking & Leffel, 2021). This trend has contributed to the privatization of climate accountability, concentrating influence among financial actors. A persistent imbalance is evident in climate finance flows, with mitigation receiving a dominant share, while adaptation finance often critical for the Global South remains underfunded, representing roughly 5% of total global flows (Bhandary et al., 2021; Stern, 2007). Moreover, definitional ambiguities about what constitutes “climate-related” or “green” finance reflect contested political and institutional interests (Dasgupta & Sharma, 2025).

- *Green Public Financial Management and Budgeting Instruments*

Green Public Financial Management (GPFM) has emerged as a crucial tool for embedding climate priorities within fiscal systems, adapting existing public finance management practices to be climate-sensitive (Gonguet et

al., 2021; Göksu, 2022). Green budgeting has been operationalized through instruments such as Environmental Impact Assessments, Green Spending Reviews, and Climate Budget Tagging (CBT). The Philippines' Climate Change Expenditure Tagging (CCET) is recognized globally as a benchmark for integrating climate concerns across the budget cycle (World Bank, 2021). Yet, evidence from South Asia indicates that CBT results often remain underutilized due to methodological opacity and technical complexity, limiting their effectiveness for accountability stakeholders (UNDP & IBP, 2018).

Complementary reforms and diagnostic exercises strengthen GPFM. Climate Public Expenditure and Institutional Reviews (CPEIRs) provide systematic assessments of climate-related spending, supporting reform strategies and clarifying eligibility criteria for green finance (Allan et al., 2019). However, implementing such reforms is a gradual process, requiring robust accountability mechanisms. Higham et al. (2021) emphasize that effective climate framework laws must embed enforceable accountability measures, supported by capable institutions, adequate resources, and civil society engagement.

- *Sub-National Climate Action and Fiscal Dynamics in India*

Within India, literature highlights the importance and limitations of State Action Plans on Climate Change (SAPCCs). Conceived as vehicles for mainstreaming climate policy, SAPCCs were tasked with identifying mitigation and adaptation measures, estimating incremental costs, and aligning with development schemes (Kumar, 2018). Yet, many SAPCCs suffer from incomplete climate vulnerability assessments and weak institutional capacities, limiting their transformative potential (Chakraborty et al., 2025).

Parallel empirical literature focuses on fiscal efficiency, debt sustainability, and tax effort at the sub-national level. Augustine and Durai (2025), drawing on the two-stage Data Envelopment Analysis (DEA) approach pioneered by Kao and Hwang (2008), demonstrate that governance quality significantly improves efficiency in infrastructure development but has weaker effects on service delivery. Fiscal marksmanship, a measure of budget forecast

accuracy, remains weak in India, with systematic errors persisting in climate-related budget estimates (Chakraborty et al., 2025). Research on public debt and growth presents mixed findings. While some studies find no statistically significant relationship between debt and growth in India during 1992–2021, thresholds above 70% of GDP are associated with risks to growth sustainability (George & Shanmugam, 2025; Augustine & Rafi, 2025). At the state level, Kerala illustrates these dynamics, where fiscal deficits beyond 3% were linked to development expenditure but rising debt-to-GSDP ratios beyond 27.9% became growth-hindering (Renjith & Antony, 2025).

Taxation reforms, such as the introduction of the Goods and Services Tax (GST) in India, have implications beyond revenue mobilization, influencing environmental and sustainability outcomes. The initial inflationary pressures observed post-GST, particularly in food prices (Bhattacharya, 2025), illustrate how tax structures can impact consumption patterns and resource use. From a green budgeting perspective, such reforms can be leveraged to **promote environmentally sustainable behaviours**. For instance, differential GST rates on eco-friendly products versus high-carbon or polluting goods could incentivize greener consumption. Additionally, studies highlighting state-level tax efficiency disparities (Srivastava & Trehan, 2025) suggest that states with stronger revenue mobilization capacity could allocate more resources toward environmental projects, such as renewable energy subsidies or pollution control initiatives. In essence, aligning taxation reforms with green budgeting principles enables fiscal policy to serve both revenue and sustainability objectives, promoting low-carbon development pathways while maintaining fiscal discipline.

Budgeting principles enable fiscal policy to pursue both revenue and sustainability goals, supporting low-carbon growth while maintaining fiscal discipline. Existing studies emphasize three main areas: (i) the governance challenges of global climate finance, (ii) the opportunities and limits of green public financial management (PFM) tools such as budget tagging and Climate Public Expenditure and Institutional Reviews (CPEIRs), and (iii) the difficulty for Indian states in balancing efficiency,

sustainability, and revenue needs. Yet gaps remain in standardization, accountability, and capacity particularly at the state level making India a crucial case for examining green budgeting in developing economies. This context raises key questions: How do state-level practices like climate budget tagging, green bonds, and CSR spending influence fiscal choices, accountability, and climate outcomes in India? How can global experiences, such as the Philippines' budget tagging system and France's green bonds, be adapted to India's federal structure to strengthen transparency, resource mobilization, and fiscal sustainability? Addressing these questions defines the research gap that this paper seeks to fill. To respond to this gap, the study outlines the following objectives, pursued through a review-based conceptual approach.”

III Objectives and Methodology

Based on the identified research gap and guiding questions, the paper is structured around the following objectives:

1. To review and synthesize experiences of state-level green budgeting practices in India.
2. To study the institutional framework of green budgeting, focusing on GPFM and SAPCCs.
3. To identify key challenges in adopting green budgeting at the sub-national level.
4. To review international best practices and their applicability in the Indian context.
5. To suggest policy recommendations for strengthening transparency, accountability, and fiscal sustainability.

To achieve these objectives, the study employs the review-based and conceptual methodology. It does not use primary data or econometric testing; instead, it draws on secondary sources such as academic literature, government reports, policy documents, and international experiences on green budgeting and climate finance. The analysis involves comparing sub-national practices in India—such as those in Odisha, Bihar, and Chhattisgarh with selected international case studies. Insights from public finance and environmental economics are synthesized to develop a structured framework for green public financial management in India. A policy-oriented perspective is applied throughout to derive actionable recommendations for institutional strengthening,

standardization, and improved fiscal governance.

IV Institutional Framework for Green Budgeting in India

The institutional architecture of green budgeting in India rests on two interlinked pillars: *Green Public Financial Management (GPFM)*, which provides the fiscal framework for integrating climate concerns into budgeting processes, and *State Action Plans on Climate Change (SAPCCs)*, which operationalize these priorities at the sub-national level. Together, they bridge national climate ambitions with localized implementation.

I. Green Public Financial Management (GPFM)

Green Public Financial Management (GPFM), or *green budgeting*, integrates climate considerations into fiscal planning, resource allocation, and expenditure evaluation. It ensures that climate objectives are systematically embedded within public finance, thereby enhancing resilience and supporting sustainable development.

Four interrelated pillars define the GPFM framework:

- *Strategic Planning and Fiscal Policy Goals:* Medium- and long-term fiscal strategies explicitly incorporate climate priorities alongside growth and stability objectives. For instance, Tamil Nadu's climate-responsive development strategy integrates renewable energy expansion with resilient agricultural practices, aligning fiscal allocations directly with climate targets.
- *Budget Preparation:* Climate expenditures are classified and prioritized through budget-tagging techniques. States such as Odisha and Bihar have pioneered tagging systems, making climate-related spending more transparent and enabling cross-departmental policy coherence.
- *Budget Execution and Reporting:* Effective monitoring ensures climate allocations translate into measurable outcomes. Assam's digital climate budget platform links allocations to Sustainable Development Goals (SDGs), allowing real-time assessment of program effectiveness.

- *Independent Supervision and Auditing*: External audits enhance credibility and accountability. Chhattisgarh's adoption of the Climate Change Impact Appraisal (CCIA) tool demonstrates how evidence-based evaluations can secure additional national and international finance.

These elements collectively institutionalize climate sensitivity in fiscal policy, ensuring that budgetary processes address both developmental and environmental imperatives.

II. State Action Plans on Climate Change (SAPCCs)

SAPCCs complement GPFM by translating national climate commitments into state-specific strategies tailored to local vulnerabilities. They play three critical roles:

- Identifying locally relevant mitigation and adaptation measures,
- Estimating incremental costs of climate programs, and
- Integrating climate objectives with ongoing developmental schemes to minimize duplication and enhance efficiency.

Illustrative cases highlight the potential of SAPCCs as operational tools. Odisha has successfully embedded CCIA and budget tagging into its SAPCC, particularly in forestry and coastal resilience, thereby attracting both central grants and international climate finance. Similarly, Chhattisgarh leveraged CCIA findings to mobilize approximately USD 5.7 million for renewable energy and water management programs, underscoring the value of evidence-based planning.

However, challenges persist. In states like Bihar, weak institutional frameworks, limited technical expertise, and inadequate climate data constrain effective implementation. These disparities underscore the need for standardized methodologies, enhanced data systems, and capacity-building to ensure SAPCCs function as robust complements to GPFM.

Policy Tools for Green Budgeting in India: Domestic and International Perspectives

Green budgeting in India has evolved through a diverse set of policy instruments aimed at mainstreaming climate considerations within public financial management.

Three prominent tools—budget tagging, green finance instruments, and corporate social responsibility (CSR)—have shaped the domestic experience, while comparative international practices provide insights for strengthening their effectiveness.

• **Budget Tagging.**

Odisha and Bihar have been early adopters of climate budget tagging mechanisms, which classify and track expenditures based on their alignment with climate-related objectives. This enhances fiscal transparency and enables policymakers to monitor the scale and distribution of climate finance within state budgets. However, unlike the Philippines, where the Climate Change Expenditure Tagging (CCET) system has been institutionalized across all line ministries and local government units since 2014, India's tagging practices remain fragmented and vary in scope across states. This contrast highlights the need for standardization and central guidance to ensure comparability and policy coherence across sub-national governments.

• **Green Finance Instruments.** India has introduced several innovative financing mechanisms. Sovereign Green Bonds (SGBs) have mobilized capital for renewable energy, sustainable mobility, and ecological restoration, while the National Adaptation Fund on Climate Change (NAFCC) provides dedicated resources for state-level adaptation interventions. International experiences reinforce their potential: France pioneered sovereign green bond issuance in 2017, raising billions of euros for low-carbon transition projects, while Indonesia's green sukuk bonds successfully tapped Islamic finance markets to support climate-compatible development. These cases illustrate how India could expand its instrument base and deepen market participation through blended finance models and risk-mitigation frameworks.

• **Corporate Social Responsibility (CSR).** Under Section 135 of the Companies Act, 2013, eligible firms in India allocate a portion of profits to CSR activities, with environmental sustainability emerging as a significant focus area. Initiatives span renewable energy deployment, waste management, afforestation, and biodiversity conservation. A notable example is Tata Power's CSR-led

rooftop solar projects in Maharashtra, which demonstrate how corporate resources, when aligned with state-level climate strategies, can accelerate decentralized renewable adoption. Globally, similar private-sector climate investments are evident—such as Japan's corporate-backed renewable energy funds and South Korea's Green New Deal partnerships—underscoring the importance of aligning corporate finance with national and sub-national climate objectives.

Taken together, these policy tools provide India with a multi-channel framework for embedding climate objectives within fiscal systems. While domestic innovations demonstrate strong potential, international case studies reveal the importance of institutionalizing tagging practices, diversifying green financial instruments, and forging stronger public–private linkages. Aligning India's fiscal innovations with global best practices can enhance transparency, mobilize larger resource pools, and bridge gaps between budgetary processes and climate goals.

V Advantages and Conceptual Benefits of Green Budgeting

The adoption of green budgeting serves as a pivotal strategy for reconciling fiscal policy with climate imperatives and the Sustainable Development Goals (SDGs). Its conceptual advantages extend beyond environmental stewardship, generating economic, social, and institutional benefits that strengthen overall governance. Four broad benefits stand out: promoting sustainable development and co-benefits, enhancing fiscal stability, improving efficiency and accountability, and mobilizing private capital and innovation.

- *Promoting Sustainable Development and Co-benefits*

By integrating climate objectives into budgetary systems, green budgeting ensures that environmental priorities are embedded within broader developmental frameworks rather than treated as external add-ons. This alignment produces multidimensional co-benefits across sectors. Tamil Nadu's *Meendum Manjappai* initiative provides an illustrative example. The state's ban on single-use plastics, complemented by fiscal incentives for compostable alternatives, spurred the growth of over forty-five enterprises and generated employment opportunities for

more than two thousand self-help groups by 2024. Such initiatives highlight the dual dividends of green budgeting: reducing ecological harm while fostering local entrepreneurship and social empowerment. Similarly, Assam's digital climate-budget platform demonstrates how budget allocations can be systematically linked to climate relevance and SDG indicators. By improving policy coherence across departments and minimizing duplication, the platform underscores how digital governance tools can enhance the efficacy of green public finance. These examples reveal that green budgeting, when properly institutionalized, is capable of delivering the “triple dividend” of environmental sustainability, inclusive growth, and social equity.

- *Fiscal Stability and Resilience*

Climate-induced shocks pose significant risks to fiscal stability, often resulting in unplanned deficits and contingent liabilities. Embedding climate considerations within fiscal frameworks reduces these vulnerabilities by prioritizing preventive over reactive expenditures. International evidence from the Philippines demonstrates this principle: its Climate Change Expenditure Tagging (CCET) system systematically integrates climate priorities across government agencies, thereby insulating public finances from volatility while strengthening long-term resilience. Within India, Kerala offers a pertinent case through its Flood Preparedness Fund, which earmarked resources for climate-related risks during monsoon seasons. By 2019–2020, this mechanism reduced the state's reliance on post-disaster borrowing by nearly twenty percent, evidencing the fiscal prudence of anticipatory climate budgeting. Such experiences highlight that climate-aligned fiscal frameworks function not merely as environmental safeguards but as instruments of macroeconomic stability.

- *Efficiency, Transparency, and Accountability*

A further advantage of green budgeting lies in enhancing fiscal efficiency and accountability. By systematically classifying, screening, and appraising climate-related expenditures, states can ensure that resources are deployed effectively while simultaneously strengthening public trust. Odisha's Climate Change Impact Appraisal (CCIA) exemplifies this approach: departmental budgets

were screened for climate relevance, generating transparent evidence of policy alignment and thereby enhancing the credibility of expenditure. Chhattisgarh further demonstrates how such mechanisms can translate into tangible financial gains. By institutionalizing evidence-based budget appraisals, the state secured an additional USD 5.7 million in external resources, underscoring how transparent and credible fiscal systems attract complementary financing. These cases reaffirm that climate finance accountability is not only a normative good but also a pragmatic tool for resource mobilization.

- *Mobilizing Private Capital and Innovation*

Perhaps the most critical long-term advantage of green budgeting lies in its ability to crowd-in private capital and catalyze innovation. By signalling policy commitment and providing fiscal incentives, governments reduce investment risks and stimulate entrepreneurial activity in low-carbon sectors. Karnataka's electric autorickshaw subsidy program demonstrates this catalytic effect. Subsidies targeting vehicle affordability and infrastructure development significantly accelerated investment in electric vehicle manufacturing and charging networks, thereby creating a robust ecosystem for clean mobility. Comparable international experiences—such as China's subsidies for electric vehicles and the European Union's Innovation Fund—further corroborate the role of public finance in de-risking nascent technologies and scaling private investment. Collectively, these cases show that green budgeting extends beyond public expenditure management: it establishes enabling environments where private capital can align with national and sub-national climate goals.

VI Challenges to Implementation

Despite its conceptual appeal, the operationalization of green budgeting in India faces a range of constraints that limit its effectiveness. These challenges can be broadly categorized into technical and methodological barriers, institutional and planning limitations, and financial and political impediments.

- *Technical and Methodological Barriers*

A primary challenge stems from **definitional ambiguity**,

particularly in distinguishing climate adaptation expenditures from conventional developmental spending. This overlap complicates the classification of expenditures and risks overstating or understating climate-related allocations. The absence of **standardized budget tagging methodologies** across states further undermines comparability, making it difficult to evaluate relative performance. Compounding these challenges are **weak data systems**, especially the lack of granular climate vulnerability assessments at local levels, which restricts evidence-based decision-making and leads to resource misallocation.

- *Planning and Institutional Challenges*

At the institutional level, State Action Plans on Climate Change (SAPCCs) often replicate pre-existing policies rather than articulating transformative, climate-specific strategies. The problem is aggravated by **limited technical expertise**, as exemplified by Odisha's budget tagging exercise, which concentrated primarily on high-exposure departments and overlooked cross-sectoral integration. In addition, **budget credibility gaps** persist, revealed by significant deviations between Budget Estimates and Actual Expenditures. These gaps not only reflect systemic forecasting weaknesses but also political incentives that skew fiscal decisions towards short-term visibility rather than long-term sustainability.

- *Financial and Political Barriers*

Perhaps the most formidable barrier is financial. India's estimated climate financing needs—approximately **USD 3.5 trillion** by 2040—far exceed available domestic and international resources. Moreover, green financial instruments, though expanding, are often perceived as **riskier and costlier** than conventional alternatives, deterring private participation. Political economy factors exacerbate these constraints. **Short-termism in electoral cycles** incentivizes visible, capital-intensive projects while sidelining long-term adaptation investments. The case of **Bihar's SAPCC** illustrates this dilemma: the plan struggled to attract private investment for flood-resilient infrastructure, largely due to the absence of well-designed risk-sharing mechanisms that could mitigate investor hesitation.

VII Policy Recommendation & Conclusion

Effective green budgeting in India requires a comprehensive and integrated reform strategy that addresses technical, institutional, financial, and political barriers. Standardization and transparency are foundational: developing national guidelines for climate budget tagging and reporting, with uniform definitions and taxonomies, would enable credible cross-state comparisons and provide a consistent framework for national-level aggregation. Alongside this, a shift from input-based to outcome-oriented budgeting is critical, with expenditure effectiveness measured through indicators such as greenhouse gas emissions reduced, hectares of forest restored, or resilience gains achieved. Mainstreaming techniques like Climate Change Impact Appraisal (CCIA) across planning, execution, monitoring, and evaluation stages can ensure accountability and facilitate adaptive learning. Fiscal integration and innovative resource mobilization strategies are equally important; public resources should be strategically deployed to leverage private investment through blended finance, guarantees, and risk-sharing mechanisms. Instruments such as carbon pricing and municipal green bonds, as seen in Cape Town, demonstrate how sustainable infrastructure can be financed while ensuring social equity, offering lessons for India. Strengthening sub-national capacity is essential for embedding green budgeting into existing public financial management systems rather than pursuing parallel processes. Regular capacity-building initiatives, knowledge-sharing platforms, and peer-learning networks—illustrated by collaborative efforts between Odisha and Chhattisgarh—can enhance implementation efficiency and reduce duplication of efforts. Finally, addressing political economy constraints is crucial: linking federal transfers and performance grants to climate outcomes, coupled with public awareness campaigns emphasizing co-benefits such as job creation, health improvements, and local economic development, can build electoral legitimacy for climate-responsive spending and counter short-termism. By combining standardization, outcome-based monitoring, fiscal innovation, capacity building, and political alignment, India can move beyond experimental adoption toward institutionalizing green budgeting, ensuring that fiscal

systems become durable instruments for climate-resilient development.

• **Conclusion**

Green budgeting offers a transformative pathway to embed climate priorities within India's fiscal architecture. Overcoming technical, institutional, financial, and political barriers requires systemic reforms—standardized methodologies, outcome-based monitoring, and stronger sub-national capacities. Case evidence from Tamil Nadu, Odisha, Assam, Chhattisgarh, and Karnataka shows that effective climate budgeting can deliver not only environmental resilience but also tangible social and economic co-benefits.

Looking ahead, India's green budgeting trajectory holds wider global significance. By institutionalizing transparent, outcome-driven frameworks, India can align domestic fiscal policy with the Paris Agreement, Sustainable Development Goals, and evolving global climate finance mechanisms. Such integration can bridge national financing gaps, attract international capital, and establish India as a model for other emerging economies seeking to reconcile development imperatives with climate commitments.

References

- Allan, S., Bahadur, A. V., Venkatramani, S., & Soundarajan, V. (2019). *The role of domestic budgets in financing climate change adaptation: A background paper for the Global Commission on Adaptation*. Oxford Policy Management.
- Augustine, B., & Durai, S. R. S. (2025). Efficiency decomposition of public expenditure—Evidence from Indian states. In K. R. Shanmugam (Ed.), *India's public finance and policy challenges in the 2020s* (pp. 105–120). Springer Nature Singapore.
- Augustine, B., & Rafi, O. P. C. M. (2025). Role of macroeconomic channels in the debt-growth nexus: Evidence of non-linearity. In K. R. Shanmugam (Ed.), *India's public finance and policy challenges in the 2020s* (pp. 331–350). Springer Nature Singapore.
- Bhandary, R. R., Gallagher, K. S., & Zhang, F.

- (2021). Climate finance policy in practice: A review of the evidence. *Climate Policy*, 21(4), 529–545. <https://doi.org/10.1080/14693062.2020.1871313>
- Bhattacharya, R. (2025). How did transition to GST regime affect inflation in India? In K. R. Shanmugam (Ed.), *India's public finance and policy challenges in the 2020s* (pp. 177–195). Springer Nature Singapore.
 - Bracking, S., & Leffel, B. (2021). Climate finance governance: Fit for purpose? *WIREs Climate Change*, 12, e709. <https://doi.org/10.1002/wcc.709>
 - Chakraborty, L., Jha, A. N., Yadav, J., Kaur, A., & Balamurthy, B. (2025). Greening of fiscal policy in India. In K. R. Shanmugam (Ed.), *India's public finance and policy challenges in the 2020s* (pp. 435–454). Springer Nature Singapore.
 - Dasgupta, P., & Sharma, G. (2025). Climate finance for adaptation and sustainable development in India. In K. R. Shanmugam (Ed.), *India's public finance and policy challenges in the 2020s* (pp. 411–434). Springer Nature Singapore.
 - George, M., & Shanmugam, K. R. (2025). Impact of public debt on economic growth in BRICS economies. In K. R. Shanmugam (Ed.), *India's public finance and policy challenges in the 2020s* (pp. 313–330). Springer Nature Singapore.
 - Göksu, G. G. (2022). A cross-country analysis of green public finance management and budgeting in supporting sustainable development. *TCA Journal/Sayıştay Dergisi*, 33(126), 409–441. <https://doi.org/10.52836/sayistay.1170928>
 - Gonguet, F., Wendling, C., Aydin, Ö., & Battersby, B. (2021). Climate-sensitive management of public finances – “Green PFM” (IMF Staff Climate Note 2021/002). International Monetary Fund.
 - Higham, C., Averchenkova, A., Setzer, J., & Koehl, A. (2021). *Accountability mechanisms in climate change framework laws*. London School of Economics and Political Science.
 - Kao, C., & Hwang, S. N. (2008). Efficiency decomposition in two-stage data envelopment analysis: An application to non-life insurance companies in Taiwan. *European Journal of Operational Research*, 185(1), 418–429.
 - Kumar, V. (2018). *Coping with climate change: An analysis of India's state action plans on climate change*. Centre for Science and Environment.
 - Renjith, P. S., & Antony, S. (2025). Sustainability and growth implications of sub-national fiscal choices in India: A case of Kerala. In K. R. Shanmugam (Ed.), *India's public finance and policy challenges in the 2020s* (pp. 65–84). Springer Nature Singapore.
 - Stern, N. (2007). *The economics of climate change: The Stern review*. Cambridge University Press.
 - Srivastava, D. K., & Trehan, R. (2025). Estimating state-level tax effort in India: A panel data model. In K. R. Shanmugam (Ed.), *India's public finance and policy challenges in the 2020s* (pp. 143–176). Springer Nature Singapore.
 - United Nations Development Programme, & International Budget Partnership. (2018). *Budgeting for a greener planet: An assessment of climate change finance accountability in Bangladesh, India, Nepal, and the Philippines—Summary report*.
 - World Bank. (2021). *Climate change budget tagging: A review of international experience*. Equitable Growth, Finance and Institutions Insight

Bharti Thakur

Assistant Professor (Economics)
IITM College of Engineering
Bahadurgarh, Haryana- 124507,
email: bhartithakur1985@gmail.com

Dr. Manju Dalal

Associate Professor (Economics),
B.P.S. Institute of Higher Learning, BPSMV
Khanpur Kalan, Sonapat, Haryana- 131305,
email: manjudalal2007@gmail.com.

Abstract

In current times, finding a particular court to subsume with the corporate cases turns to be the need of the public authority. With this philosophy, Central Government set up National Company Law Appellate Tribunal (NCLAT) and National Company Law Tribunal (NCLT) on first June 2016. Since its starting NCLT is working inside the positive bearings. This paper explores the job of National Company Law Tribunal under various laws, as this law offers incredible help to corporate field presently, judges who have aptitude in this field only will pass judgment on the cases and give equity. In the Indian Corporate Law History with the extensive impacts a similar act will be considered as a welcome step.

Keywords: - National Company Law Tribunal (NCLT), Company Law Board (CLB),

1. Introduction

Beginning around 1600 India had a broad series of Company Law, as The East India Company under the Royal Charter, the Joint Stock Company Act, 1857, Companies Act of 1866 followed by Indian Companies Act, 1913. Indian Companies Act, 1956 was supplanted by The Indian Companies Act, 1913 and saw different corrections inside the years to come. As of late in 2015, the Supreme Court announced legitimate the National Company Law Tribunal (NCLT) and National Company Law Appellate Tribunal (NCLAT). This statement closes in the making of the constitutionalized NCLT and NCLAT, by the Central Government on June first, 2016.

NCLT, National Company Law Tribunal, is a semi legal game plan to resolve common corporate questions. While, NCLAT is the Appellate Tribunal where requests from the Tribunal are managed.

Article 245 of the Indian Constitution engages to build up NCLT and NCLAT. The council is the result of Eradi Committee under the Constitution and notices authority and power similar to a court.

The organizations act, 2002 accommodates the setting up of a NCTL and NCLAT to trade the current Company Law Board (CLB) and furthermore the Board for Industrial and Financial Reconstruction (BIFR). A board was established to examine the current law about shutting

records of partnerships to re-foster something similar to connect with the most recent turns of events and developments inside the organization law and administration and to suggest changes inside the method at various stages followed inside the indebtedness procedures of the organizations to stay away from pointless post ponements on top of the worldwide practice see in this field. The setting up of the NCLT and NCLAT will clear the means for the speedier execution of the liquidation code. As detailed in the information referenced by, government records which uncovers that 48,418 common cases were forthcoming under the steady gaze of the Supreme Court as of mid-February 2016, 3.116 million common cases forthcoming under the watchful eye of the High Court as of December 31, 2014 and 8.234 million cases forthcoming before the area and subordinate courts. This paper consists of the establishment, need, roles and powers of the NCLT and the measures suggested for the efficient working of the tribunal.

Emergence of NCLT

Currently, arrangements with respect to examination of partnership's records, freezing of organization's property, class activity suits, transformation of a public organization into a private venture will be ruled through the NCLT, and charm subsequently would be before NCLAT instead of High Court. With the constitution of NCLT, powers of High Court under the Companies Act 2013/1956 connecting with decrease of extent capital, twisting up and think twice about plan (consolidation, demerger, and understanding) could get moved to NCLT underneath explicit headings gave by utilizing the MCA (Ministry of Corporate Affairs).

As per the notice on the webpage of the Department of Personnel and Training on March 30, 2018, previous adjudicator (Retd.) of the Supreme Court of India, Hon'ble Mr. Justice S.J. Mukhopadhyaya, became designated on the grounds that the director of the NCLAT, and the Appointments Committee of the Cabinet acknowledged the arrangement of Justice (Retd.) M.M. Kumar, who go about as the President of National Company Law Tribunal (NCLT). With the attestation dated June 01, 2018, the Central Government comprised 11 (eleven) Benches of the

NCLT in exercise of its powers underneath sub-stage (1) of area 419 of the new Companies Act, 2013. Of the supposed eleven seats, two will be arranged in New Delhi, and one each at Ahmedabad, Allahabad, Bengaluru, Chandigarh, Chennai, Guwahati, Hyderabad, Kolkata and Mumbai.

The NCLT case for Moser Baer India Limited (MBIL) is under the main case number (IB)-378(PB)/2017 and involves ongoing liquidation proceedings, multiple applications from the [Liquidator of MBIL](#), and disputes over the ownership and sale of various c Company assets, including those of [Moser Baer Solar Limited](#). The case is characterized by recurring applications for the extension of the liquidation period to address pending disputes and finalize the liquidation process **Deepa Govindarajan** (Govindarajan, 2014) this paper examines various concepts related to the topic of corporate risk appetite. It emphasizes the need for consistency of definitions and coherence of terminology. Corporate risk appetite articulation is discussed as a corollary to strategy formulation and as an aid to corporate governance. The paper highlights the challenges that financial firms' boards have faced in expressing their risk appetite and in setting the approach to risk at board-level. The paper further stresses the need to assess risk holistically in risk appetite discussions. It introduces the Govindarajan - Andenæs model as a process template for systematically identifying and deploying risk appetite. The objective is to allow the risk appetite statement to be a practical tool that aids transparency in both risk-taking by firms and in the evaluation of their risk-based performance on an ongoing basis.

Dr. Jaswant Saini, Satish Kumar (Dr. Jaswant Saini, 2020) The Paper analyses the working of NCLT as debt recovery mechanism and overview on the impact of Insolvency and Bankruptcy Code, 2018 on NPA. The study is purely based on Secondary data collected from the official web portals of NCLT, RBI, IBBI and research articles of prominent research scholars. The study has found that a trend towards a little more improvement in the overall NPAs of banks can be seen.

Ram Singh, Hitesh Kumar Thakkar (Ram Singh, 2021) In this study, the author develops a model to examine the dynamics of the insolvency and bankruptcy code (IBC)

processes in the aftermath of Covid-19. They use the model to study the impact of the pandemic on the following aspects of the financial disputes and their implications: number of disputes between debtors and their creditors in the aftermath of Covid-19; frequency of these disputes coming to the National Company Law Tribunal (NCLT); impact of the pandemic on the frequency of 'out of court' settlements; the nature of disputes settled amicably and those adjudicated under the corporate insolvency resolution process of the NCLT; and the recovery rates in the settled versus litigated disputes.

3. Objectives of the paper

1. To examine the role of NCLT & NCLAT in resolving corporate matters
2. To suggest how the working of NCLT and NCLAT be maximized
3. NCLT

The need for a serious council was brought by the Hon'ble Supreme Court of India in the judgment of S.P. Sam path Kumar v. Association of India, wherein Hon'ble court took on the chance institutional instrument standard and caught that because of autonomy as the number of inhabitants in India is generally developing which lead to development of debates under the steady gaze of the courts, resultant in trouble on courts to take in the subjects. Besides, the archive presented via Shah Committee, in connection of particular council said that there is a squeezing need to change the lawful rules as far as placing in of impartial court because of over abundances of cases under the watchful eye of the courts. may be forthcoming u.S.434 before various discussions across the country. The warning of move of cases from CLB to NCLT become advised. On first June 2016, every one of the protests which were forthcoming before CLB were ignored to NCLT and the Tribunal will currently decide these sort of subjects as in accordance with the arrangements of guideline. NCLT has been conceded an optional solidarity to absorb the forthcoming instances of CLB from any level they need to.

5. Class Action- Powers of NCLT

S.245 of the Indian Companies Act, discusses class development and makes a move towards fakes and mistakes where the investors and contributors are the

fundamental casualties. There has been a long chain of swindling where the organizations enrolled beneath the law committed extortion with the speculations and monetary investment funds in their purchasers and investors. The 2013 Amended Company Act, introduced a few techniques for accurately cut down the wrongdoers by oppressing the mindful to discipline, wherein they should give remunerations to the casualties for the misfortunes coming about because of the false practices. One or more prominent offended parties aggregately can record a claim for an enormous establishment and speed up the procedure, accordingly addressing an entire gathering of, maybetopographically scattered heavenliness of people: investors or contributors, who are being violated. A first-class alleviation became provided to the dealers, securing their resources and protecting their freedoms under Section 245. A Class Action might be documented towards both private and public gatherings with an exemption for banking organizations.

Refusal to Transfer Shares As per the arrangements of Section 58 and 59, assuming any organization will not check in a switch or does any misbehaviors prompting disnature of the transferor or transferee, the last option is approved to appreciation for the National Company Law Tribunal, following a term of two months.

Significance to agreements or arrangements for moving protections went into with the guide of two or more prominent people as for legitimate conditions likewise are given under Sections 58 and 59.

Reopening of Accounts and Revision of Financial Statements Under the Companies Act, 1956 there are such a large number of instances of adulteration of books of cash owed which achieved the expansion of various methods to counter this failing inside the Companies Act, 2013. This possibility might be arranged underneath Section 130 and 131 read alongside Section 447 and 448 inside the altered Act. Under these segments bunches are avoided suo-moto starting their cash owed and changing their budget summaries. Segment 130 states that the Tribunal has given the energy to safeguard the position to guide a particular manager to return its cash owed under specific given occurrences. Under Section 131 the association is allowed to modify its monetary affirmation yet not permitted the returning of any bills.

Important Laws came into Force

Under Section 61 (1) (b) NCLT has the ability to support combination and division of offer capital due to which the democratic level of various investors will change. Section 62(4), (5), (6) discusses further issue of offer capital where organization needs to interest the National Company Law Tribunal, where change of debentures or advance got through an administration is required into portions of the organization, where the terms gave are not agreeable and satisfactory for the organization.

Role of NCLT

The lawful experts and investors are of the assessment that The National Company Law Tribunal, that is as of now mistaken for around 2,000 monetary catastrophe cases forthcoming, can likewise see the explosion of clean occasions which can hinder the time-bound goal later the financial controller redesigned the way advance defaults are to be dealt with. Financiers are of the assessment, "At the present time, just a portion of the large cases are being attempted, however there are a few examples inside the SME (little and medium association) and mid-cap region in which we have completed the process of rebuilding and it has fizzled. The significant instrument to manage defaulters is rejecting all obligation rebuilding plans by RBI and made goal of horrendous advances time bound with the Insolvency and Bankruptcy Code. As per RBI, accounts with total obligation of more than Rs 2,000 crore will ought to be taken to NCLT inside 15 days assuming a goal plan does now not suffer natural product in hundred and eighty days. "NCLT is as of now underneath stress because of the reality they don't have as numerous people and that they were battling to manage the strain. Around five,000 cases had been alluded up to now to NCLT, which was establishment in June 2016, and extra than 500 cases are at various levels of hearing in which bankruptcy choice has been started. While the council has discarded two,750 examples, there are 2001 cases forthcoming and 35 gatherings had been put beneath liquidation later their moneylenders didn't consent to the goal plan.

Presently, India has one NCLAT and eleven NCLT seats. NCLT has 22 individuals – sixteen legal givers and 6 specialized individuals. The new seats are relied upon to return up in Bhubaneswar, Jaipur and Kochi. At present,

NCLT has one most significant seat in Delhi and 10 seats in Delhi, Ahmadabad, Allahabad, Bengaluru, Chandigarh, Chennai, Guwahati, Hyderabad, Kolkata and Mumbai. The Ministry of not really settled to set up Special courts underneath the National Company Law Tribunal (NCLT) to manage a developing reach indebtedness cases. For Special Courts to be comprised 30 adjudicators is most likely enlisted. The special courts might go with not many specialized people anyway they can't work without legal people. Courts to be establishment 3 in Mumbai, in New Delhi and one each in Chennai, Kolkata and Hyderabad. The NCLT manages endeavor law occasions and consolidations and acquisitions, aside from indebtedness and monetary ruin cases. Of the essential 12 occasions alluded by utilizing the RBI, two have been settled. Aside from the specialists working toward a move-line bankruptcy system so it will require the overhaul of foundation at the NCLT, e-courts may be set up so that inside the wards that signal an aptitude with the Indian specialists, pass-line indebtedness legal disputes can happen. Universally, the UNCITRAL (United Nations Commission on International Trade Law) Model Law on Cross-Border Insolvency, 1997, has arisen on the grounds that the greatest broadly successive jail structure to adapt to pass-line bankruptcy issues. The expressed Model Law has been embraced through 44 nations, along with Singapore, the United Kingdom, and the United States. In 2016 the equivalent has been brought about the reception of The Insolvency and Bankruptcy Code.

Case Study 1

Transstroy (India) Limited Case Study after NCLT establishment

Later the foundation of NCLT, The National Company Law Tribunal, Hyderabad Bench has conceded a request for bankruptcy against Transstroy (India) Limited started with the guide of Canara Bank, pronounced a ban and designated indebtedness choice master.

While attesting ban with impact from October 10, until the of aggregate of the Corporate Insolvency Resolution Process or till the Bench endorses the Resolution Plan, or takes up liquidation of the corporate debt holder, the Judicial Member Ratakonda Murali, delegated Govindrajulu Venkata Narasimha Rao, as interval choice expert to complete the abilities underneath the Insolvency

and Bankruptcy Code, 2016.

The applicant monetary organization said that it had endorsed Rs 125 crore beneath Fund base running capital cutoff points and Rs 600 crore underneath non-a giggle based working capital cutoff points, which include monetary foundation certifications of Rs 500 crore and letter of credits of Rs 100 crore, totaling Rs 725 crore.

The candidate fought that Transstroy defaulted its bills to the monetary organization and that the appeal became documented looking for course of the Tribunal to incite CIRP against Transstroy and observe a choice arrangement.

Case Study 2

Tata-Mistry Case

The verdict of NCLT on the Tata-Mistry case changed into within the favour of the Tata Group whilst NCLAT set aside the judgment and ruled in favour of Mistry and Shapoorji Pallonji Group.

The same has been appealed to the Supreme Court through Tata Sons. The Apex Court set apart the order of the NCLAT, brushed off the expenses of oppression and mismanagement towards Tata Sons Ltd and ruled towards Mr. Cyrus Mistry. The Hon'ble Supreme Court stated the questionable conduct of Mr. Mistry and made a sweeping observation that Sri Cyrus Mistry himself invited problem as he became worried in leaking extraordinarily private and classified information approximately the organization inside the Media just to create sensation in light of which the Apex Court considered his removal from the position of chairmanship and Directorship of Tata Group of Companies as justified.

Findings & Suggestions

The composition of the NCLT as a single forum to cope with Company Law subjects is a welcome move to diverse stakeholders as its miles geared toward presenting a speedy and efficient disposal of the subjects. Apart from supplying fast justice, it will also assist in taking the weight off the overburdened High Courts. However, it is essential that the transition length of converting CLB to NCLT, especially in phrases of transfer of present subjects need to be cautiously treated through the applicable authorities, because the same will determine its effectiveness in due path.

References:-

Dr. Jaswant Saini, S. K. (2024, February). The Emergence of Insolvency and Bankruptcy Reforms in India; in Reference to Company Law Tribunal Working. *Our Heritage*, 68(30).

Govindarajan, D. (2012). Corporate Risk Appetite: Ensuring Board and Senior Management Accountability for Risk.

Jonge, A. d. (2020). Transnational corporations and international law: bringing TNCs out of the accountability vacuum. *Emerald Group Publishing Limited*, 7(1), 66-89. Retrieved 2018, from <https://doi.org/10.1108/17422041111103840>

Kamath, K. (2022). Constitutionality and Constitution of the National Company Law Tribunal and the National Company Law Appellate Tribunal. *Christ University Law Journal*, 7(1), 43-57.

Kanchan Yadav, D. S. (2022). The Regulatory Framework of Corporate Restructuring in India: Implications and Emerging Issues.

Kaveri, V. S. (2022). Establishment of National Company Law Tribunal for Rehabilitation of Sick Companies: A New Era Begins. *Vinimaya*.

Dr. Santosh Kumar Sharma (PhD)

M. COM, PGDIM MAT.

MGMT. MBA, LLB, LLM WITH PhD.

[Mo.-9899882948-](tel:9899882948)

santosh.sharma2013@gmail.com

H. NO. 5113 SECTOR- 03, FARIDABAD

(121004)

Abstract

The formation of India between 1946 and 1950 brought together constitutional design and political integration under the conditions of partition and diversity. The Constituent Assembly adopted a federal framework suited to India's size and complexity but rejected the model of federation based on agreement among pre-existing political units. The chosen term "Union of States" expressed an indestructible polity, anchored in central coherence and structured through distributed authority. Drawing on the Canadian precedent, the Constitution vested residuary powers in the Union and introduced emergency provisions as instruments of stability rather than exceptions to federalism. Concurrently, the integration of the princely states through the Instruments of Accession and subsequent mergers ensured territorial unity and administrative continuity. Tracing these developments makes clear that India's federal roots emerged less from abstract theory than from the pragmatic accommodation of its socio-political context within a single constitutional order. The resulting arrangement combined decentralised governance with central strength – federal in form, unitary in working – and established an independent India's structural foundations.

Key words: Federal, Constitutional framework, Union of States, Princely States

Introduction

The emergence of the Republic of India between 1946 and 1950 was an exercise in institutional design and political consolidation conducted under exceptional constraints. The process began even before formal independence, when the British Government announced in 1946 its intention to transfer power to Indian hands. The Cabinet Mission Plan proposed a federation, linking provinces and princely states within a constitutional framework to be drafted by an elected Constituent Assembly [1, pp. 64–93]. The Plan failed to hold politically once partition became inevitable, but its basic method – the Assembly as the forum for framing the constitution—remained the anchor of transition.

In that Assembly, the issue was not whether India should be a federation, but what kind of federation it could be

under the conditions of independence, partition, and territorial asymmetry. B. N. Rau noted that the decision to adopt a written constitution stemmed from the diversity of the subcontinent and the absence of any pre-existing convention binding all parts together [2, Ch. 1]. The written instrument was to substitute a shared legal framework for the dissolved imperial chain.

Theoretical discussion of federalism, available to Indian constitution-makers through British and North American precedents, set a comparative context. K. C. Wheare defined federal government as one where powers are divided between coordinate authorities, each independent within its sphere, and where neither can alter the other's authority without consent [3, Ch. 1]. The Indian case, however, started from political disunity rather than prior compact. Thus, from the outset, federal principles had to be reconciled with the overriding need for national integration [4, Ch.5].

Pre-Independence Limitations

The colonial constitutional inheritance limited the space for indigenous federal development. The Government of India Act, 1935 [5] constituted the most elaborate constitutional statute enacted for British India and, in formal terms, the first to contain a complete federal plan. It divided powers into Federal, Provincial, and Concurrent Lists; provided for provincial autonomy; and envisaged a federation including both British provinces and princely states [1, Ch. 3]. The provinces were to exercise legislative authority within defined fields, while the Governor-General retained extensive powers of reservation and disallowance.

In practice, the Act never produced a federation between princely states and the provinces of British India. The princes declined to accede, and the scheme remained a projection on paper. Central authority was still derived from the Crown; the Governor-General remained the ultimate arbiter; and the amending power continued to rest in Westminster [1, Ch.1]. The arrangement was therefore, as Wheare's analytical criteria would later show, federal in form but not in sovereignty [3, Ch. 3].

Rao's documentation of the constitutional evolution up to 1935 indicates how the experience of the Act

influenced the Assembly's later choices. The provinces gained experience of responsible government, but the centre remained bureaucratic and non-representative [1, Chs. 1,5]. B. N. Rau observed that the lessons of 1935 were twofold: administrative uniformity was achievable, but political accountability required an Indian centre with real authority [2, Ch. 2]. Consequently, while many technical provisions of the Act were retained, its fundamental imbalance was reversed [6, Ch. 2].

The failure of the 1935 federation also left unresolved the constitutional position of the princely states, which were never part of British India. Any post-independence federation would have to encompass them through voluntary accession rather than automatic inclusion. Thus, by 1946, the federal question had both an internal and an external dimension—distribution of powers within British India, and integration of territories beyond it. [2, pp xxxi-lxx]

Designing the Union

The Constituent Assembly, meeting for the first time in December 1946, organised its work through committees. The Union Powers Committee and the Union Constitution Committee, chaired by Jawaharlal Nehru and K. M. Munshi respectively, examined the framework of the central government and the extent of its powers [1, Chs. 3–7]. Their draft reports proposed that the new polity be described not as a federation but as a “Union of States,” whose integrity would be indissoluble.

The reasoning, as recorded by B. Shiva Rao, combined political caution with constitutional design. The subcontinent's partition had underlined the dangers of secession. Therefore, the Assembly rejected the idea of a federation founded on a treaty among sovereign units. Instead, the states were to derive their existence from the Constitution itself [1, Ch. 18]. The federal lists and institutional machinery would reflect decentralisation, but the Union would possess overriding powers in matters affecting national unity [7, Ch. 1].

B. N. Rau's analysis clarifies why the Assembly preferred the Canadian precedent to the American model. The United States distributed residuary powers to the states, a reflection of its origin as a compact among pre-existing polities. Canada, conversely, placed residuary powers in the Dominion Parliament, acknowledging its

formation through legislative rather than contractual means [2, Ch. 17]. India's conditions – vast diversity and the absence of equal partners – were closer to Canada's than to America's. [8, p. 28]

The debates reproduced by Rao record that this issue was explicitly discussed. Some members argued for a more symmetrical division of power; others stressed the need for a centre capable of maintaining economic coordination and security. Ambedkar stated that the word “Union” was chosen deliberately to emphasise both the existence of constituent units and their inseparability. The Drafting Committee, under B. R. Ambedkar, refined this conception into constitutional clauses. Articles 1–4 defined the Union and its territorial composition; Articles 245–263 divided legislative and administrative powers. [1, pp.138-142]

Emergency provisions were another instrument through which the Assembly sought to preserve unity. The Constitution empowered the President to assume control over states during breakdowns of constitutional machinery and to suspend certain rights during national emergencies. Rao explained that these were included not as exceptions to federalism but as mechanisms to prevent its disintegration [1, Chs. 9,27].

The Union List finally contained 97 subjects, including defence, foreign affairs, and communications. The Concurrent List enabled both Parliament and State Legislatures to legislate, with Union law prevailing in conflict. The balance of lists and the structure of the upper house, the Council of States, provided formal federalism; but the preponderance of the Union in financial and emergency powers established a centralising equilibrium [1, Ch. 21].

Challenges of the Princely States

While the Assembly debated structure, the political map was being redrawn through the integration of princely states. The lapse of British paramountcy on 15 August 1947 left 562 rulers legally independent. V. P. Menon's narrative shows how the process of accession was designed to avoid fragmentation [4, Chs. 3–5]. The Instrument of Accession, drafted in the States Department under his supervision, provided a uniform document by which rulers could transfer control over defence, external

affairs, and communications to the Dominion [4, pp. 108-109].

Sardar Patel and Mountbatten persuaded most rulers to sign before independence, ensuring continuity of administration. Menon recounts that out of the 562, all but three – Hyderabad, Junagadh, and Kashmir – acceded peacefully by August 1947 [4, Ch. 5]. Each of these three required separate negotiations and, in part, the use of force.

Junagadh, a small maritime state with a Muslim ruler and Hindu majority, announced accession to Pakistan in September 1947. The Government of India rejected this on grounds of contiguity and held a plebiscite in February 1948 confirming accession to India [4, Ch. 6]. Hyderabad, the largest princely state, sought independence. After prolonged negotiations failed, a brief police action in September 1948 led to its integration [4, Ch. 17-19]. Kashmir's ruler, facing invasion from across the frontier, acceded to India in October 1947 under emergency conditions [4, Ch. 20].

Menon's account makes clear that each case was treated as a constitutional issue resolved through legal instrument rather than annexation. The Instruments of Accession and later the Merger Agreements created a graded process leading from autonomy to full integration. Part A States (former British provinces) were administered under the Constitution directly; Part B States (former princely unions) retained certain internal arrangements; Part C States were centrally administered territories. [4, Ch.24]

Rao's documentation of Assembly proceedings notes that representatives of the princely states joined in 1948 after these integrations, enabling their participation in framing the Constitution [1, pp. 70–88]. Their inclusion regularised the political unification already achieved on the ground. Hence, the Constitution's federal map was not merely a legal abstraction but the codification of an accomplished political consolidation.

The Federal Polity

By the time the Constitution was completed in November 1949, India had acquired both the substance and the form of a federation, though expressed as a “Union of States.” Article 1 read: “*India, that is Bharat, shall be a Union of States.*” This formulation by the Draft

Committee was deliberate. As Rao's editorial notes reveal, alternatives such as “Federation of States” were debated and rejected on grounds that a Union, once constituted, would be indissoluble [1, pp.139-148].

The constitutional distribution of powers reflected this orientation. The Union List enumerated fields of national significance; the State List contained subjects of local administration; the Concurrent List allowed joint legislation. Residuary powers were vested in Parliament, reversing the 1935 arrangement [1, Ch.2]. The power of Parliament under Article 3 to alter state boundaries or names further underlined the primacy of the Union. [1, pp.143,148]

Rao explained that this design was not an abandonment of federalism but its adaptation. Comparative study of Canada, Australia, and the United States had shown that federations born out of unity required stronger centres than those formed by compact [2, Ch. 4]. India, facing regional disparities and post-partition instability, needed constitutional instruments for cohesion [6, p.188].

Emergency provisions under Articles 352–360 extended central authority temporarily during war, external aggression, or internal disturbance. These were accompanied by financial safeguards such as the power to issue directions to states. Rao defended these clauses as consistent with the principle of parliamentary responsibility, noting that they were subject to legislative approval and judicial review [1, Ch. 27].

The amending procedure under Article 368 also reflected a middle position. Fundamental changes affecting the federal structure required ratification by at least half the states, but ordinary amendments could be enacted by Parliament alone. Rao and Ambedkar saw this as a means to balance rigidity and flexibility [1, Ch. 28; 2, Ch. 24].

K. C. Wheare, analysing the Constitution soon after its adoption, classified the Indian system as “quasi-federal” with a unitary bias. The test of federalism, in his view, was the degree of legal and financial independence enjoyed by the constituent units. India's design allowed state autonomy in normal times but enabled the centre to assume greater powers when necessary [3, Chs. 6–8, p.

28]. This duality—federal in structure, unitary in spirit – became the standard characterisation of the Indian polity [8, pp.28-32].

Conclusion

Between 1946 and 1950, constitutional design and political integration evolved in parallel, each supporting and substantiating the other. The Union was not a compact among sovereign states, nor a continuation of colonial administration, but a consciously constructed order in which diversity was governed through shared constitutional authority.

The Constitution transformed the inherited administrative unity into a representative and legally defined Union. Central authority was strengthened for coordination and security, while state autonomy was preserved within a framework that allowed uniformity of principle without uniformity of form. The integration of the princely states provided the necessary territorial coherence, turning political consolidation into a constitutional reality.

The resulting structure achieved a workable balance between flexibility and coherence. Residuary and concurrent powers, together with emergency provisions, were designed to maintain continuity and responsiveness without undermining the division of authority. These mechanisms gave stability to new institutions and allowed adaptation to differing administrative capacities across the Union.

India's federal polity thus took shape as a distinctive arrangement suited to the circumstances of transition. The states were not co-equal in origin, yet their constitutional position affirmed the principle of distributed authority within a unified framework. The design reflected an accommodation between unity and diversity rather than a strict model of federal symmetry.

When the Constitution came into force on 26 January 1950, India was both a federation and a union: federal by the allocation of powers, and a union by the historical necessity. Its foundations lay not only in the constitutional text but in the processes of negotiation and accession that preceded it. The 'Union of States' thus stood as the institutional expression of a federal principle realised through political integration and constitutional design.

References

- [1] Rao, B. S. (1966–1968). *The Framing of India's Constitution: A Study* (5 Vols.). Indian Institute of Public Administration.
- [2] Rau, B. N. (1960). *India's Constitution in the Making*. Orient Longmans.
- [3] Wheare, K. C. (1953). *Federal Government* (3rd ed.). Oxford University Press.
- [4] Menon, V. P. (1956). *The Story of the Integration of the Indian States*. The MacMillan Company.
- [5] The Government of India Act 1935. <https://www.legislation.gov.uk/ukpga/Geo5and1Edw8/26/2/enacted>
- [6] Granville, A. (1966). *The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation*. Clarendon Press.
- [7] Santhanam, K. (1960). *Union-State Relations in India*. Asia Publishing House.
- [8] Basu, D. D. (1950). *Commentary on the Constitution of India*. Calcutta S. C. Sarkar and Sons.

Dr. Ritu

Associate Professor

Department of Political Science

Aggarwal College, Ballabgarh,

Faridabad

Abstract

Despite its nearness to the National Capital Region (NCR) and above average literateness, the Jhajjar region continues to display stubborn rural vulnerabilities rooted in agricultural structure (small and uneven holdings, irrigation constraints and input charges), social delamination (caste and gender), water stress and irregular access to infrastructure and income opportunities. Using secondary data (Census 2011, NFHS-5, PLFS), organizational records (MGNREGA Management Information System) and district or state preparation documents, this research paper manufactures the structural drivers of rural poverty in Jhajjar or outlines beset policy selections around water-smart agriculture, female economic contribution, social protection depth or last-mile public service area.

Keywords

MGNREGA, NFHS, PLFS, National Capital Region, Rural poverty.

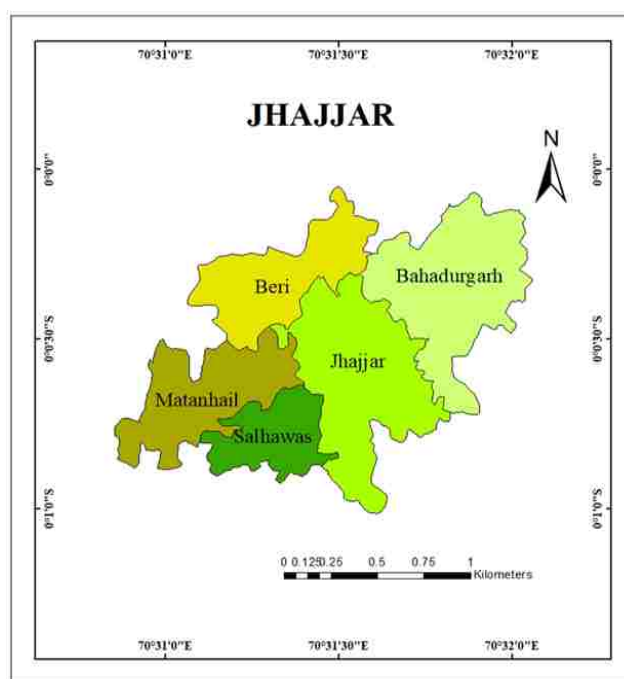
Introduction

On the western edge of Delhi's urbanizing landscape lies Jhajjar, the new district carved from the old district of Rohtak. Agriculture is still the mainstay for a large share of households but the district faces adverse sex ratios, land fragmentation and increasing groundwater stress, which is common to much of central-western Haryana. The caste and gender inequalities they are compounded with are even more discouraging in the context of rural deprivation than headline income or literacy figures might indicate. Jhajjar is an attractive tourist destination in Haryana, which is situated approximately 65 kms from Delhi. The region exhibits evidence of early human settlement and features several historical landmarks. In 1191 AD, during the conflict between Gori and King Prithvi Raj, Jhajjar was an uninhabited forest. The nearby town of Malokan, occupied by Jats, was severely affected by the war, leading to the relocation of its residents. Chajju Jat is a local appealed for the rehabilitation of Malokan, but Emperor Gori rejected the request and instructed that the village be relocated elsewhere. Consequently, the Jats from Malokan settled in what is now Jhajjar.

Study Area

District Jhajjar is located between latitudes 28° 21' 31" N and 28° 50' 19" N and longitudes 76° 17' 06" E and 76° 58' 15" E. Cover a total area of 1,834 sq. km. it includes 1,752.88 sq. km. of rural land and 81.12 sq. km of urban land. Jhajjar is a key location in southern Haryana, situated south of the Rohtak district and adjacent to Delhi. To the north are the districts of Rohtak and Sonipat, to the south are Rewari and Gurgaon, to the west is the Bhiwani district, to the east is Delhi, the nation's capital.

Map 2.1: Community Development Blocks of the Study Area



Source: Prepared by Research Scholar with help of the ArcGISIn Jhajjar district, as of the District Census Handbook Jhajjar, 2011, all 247 occupied villages utilize electricity for domestic, agricultural and other purposes, according to information provided by the revenue authorities in the Village Directories.

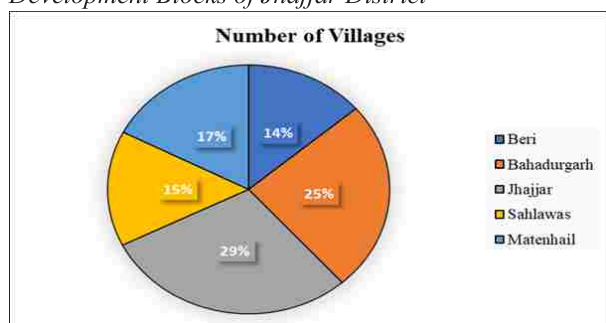
Table 1: Community Development Block-wise villages in Jhajjar District

Name of C.D Block	Number of Villages
Beri	34
Bahadurgarh	61
Jhajjar	72
Sahlawas	37
Matanhail	43
Total	247

Source: District census hand book of Jhajjar, 2011

Figure 2.1: Number of villages in Community

Development Blocks of Jhajjar District



Source: Based on the table 1

Source of Data

This study combines data from the District Census Handbook (DCHB) of Jhajjar (demography, settlement, amenities) National Family Health Survey-5 (NFHS-5) state-level health and gender indicators, Periodic Labour Force Survey (PLFS) annual estimates of employment structure, Pradhan Mantri Krishi Sinchai Yojana (PMKSY) state and district irrigation plans on water infrastructure, Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA) MIS data on employment and funding flow the Haryana Economic Survey or Statistical Abstract (infrastructure and sectoral context) and recent scholarship on deprivation, caste or gender disparities and agrarian change in Haryana.

Demography Status and Educational Consequences in Jhajjar

The demographic and educational background of Jhajjar provides critical visions into the structural roots of rural poverty and inequality. Distribution of population, caste composition and sex ratios reproduce long-standing outlines of social stratification and gender bias, while literacy rate and schooling changes highlight persistent barriers to human capital formation, specially for marginalised groups.

Table 2: Demographic Indicators of Jhajjar (Census 2011)

Indicator	Value
Total Population	957,204
Rural Population	74.6 per cent
Sex Ratio	861
Child Sex Ratio	778
Schedule Caste Population	18 per cent
Literacy Rate	81 per cent

Source: District census handbook of Jhajjar, 2011

Together, these indicators show how demographic burdens and unequal access to education shape future livelihood occasions and intergenerational poverty risks. Within this context, two dimensions stand out:

i. Population and Rural population: Jhajjar had

0.96 million persons in 2011, 75 per cent of which were rural. Rural sex ratio was 861 females per 1,000 males, child sex ratio 778. Those classified as Scheduled Castes made up 18 per cent of the population. These indicators are due to ancient gender bias and social stratification. (Census India 2011)

ii. Literacy and Education: Inclusive literacy was

81per cent in 2011, though village level works show determined gender gaps within marginalized castes (example Balmiki) particularly at Senior-Secondary levels, inhibiting future earnings and action for women.

Agriculture and Natural Resources

In 2001, 51.2 % of main workers in the district were engaged in Agricultural activities, cultivators and agricultural manual workers. By the 2011 Census this proportion was 42.9%. The share of 'marginal workers' working in agriculture, home-built accounts for a high 64.3 percent of marginal workers. The focus of these activities shifted with the closing of industrial units within the National Capital Region (NCR) and subsequent growth of industries on its periphery, thus making room for increased focus on tertiary activities. There is government promotion of agricultural production in several forms. These involve supply of high yielding seeds, fertilizers and pesticides, application of advanced technology and multiple cropping patterns, expansion of irrigation facilities and cheap loans for modern agricultural machinery:

I. Landholding structure: Most landholdings are small or marginal and do not provide economies of scale, bargaining power or buffer against risk. While a NABARD (National Bank of Agriculture and Rural Agriculture) district appraisal sees that 68 per cent of holdings in Jhajjar are with small or marginal farmers, they possess a disproportionately small share of the operated area. (NABARD)

ii.Irrigation & water stress: The district's irrigation system relies on canals and tube-wells, as it is situated in a region prone to frequent droughts. The seasonal and

variable nature of rainfall necessitates artificial irrigation. In the fiscal year 2009-10, irrigation was provided to 79,000 hectares through canals and 42,000 hectares through tube-wells, covering 74.2 percent of the net sown area. Traditional tank and well irrigation methods are becoming nearly outdated. During the same period, there were 22,288 diesel pumping sets and 7,024 electric pumping sets in the district, which extracted groundwater from deeper layers in sandy areas and near irrigation channels. There are canal networks but with incomplete and uneven command area and potential for irrigation. The Haryana PMKSY plans and irrigation profile of Jhajjar highlight the need for micro-irrigation and on-farm water management. State reports in 2024-25 emphasize critical groundwater over extraction and the need for treated water reuse and demand-side management. These increase costs, volatility and risk of crop failure for smallholders. (PM Kisan Samman Nidhi, The Times of India, 2022)

iii. Cropping and risks: The high levels of pumping, coupled with the presence of water-intensive paddy in some areas of Haryana, worsen the depletion of the aquifer and the delayed monsoons and heat stress affect yield variability all pressures that fall unequally on farmers without the cash to pay for crop diversification or post-harvest infrastructure. (Inference from state water/irrigation/aquifer reports). (The Times of India, PM Kisan Samman Nidhi)

Table 3: Landholding Distribution of Jhajjar

Holding Size	Share of Holdings in %	Share of Operated Area %
Small/Marginal (≤2 ha)	68	36
Semi-medium (2-4 ha)	20	28
Medium/Large (>4 ha)	12	36

Source: District census handbook of Jhajjar, 2011

The subtleties of rural poverty in Jhajjar district cannot be understood without examining the connection of labour market structures and gendered constraints within agricultural society. Shifts in employment patterns, as emphasised by state and national surveys, reveal a measured decline in agricultural dependence, yet opportunities in non-farm sectors remain uneven and largely informal. At the same time, rooted gender rules and structural barriers continue to shape the economic

participation of women, influencing household income safety:

- i. Employment structure:** Though the PLFS (Periodic Labour Force Survey) data shows a steady decrease of share of agricultural employment in Haryana with a movement into non-farm and casual work, the participation of female workers in rural areas is relatively stagnant from the standpoint of men. In the case of Jhajjar's villages, proximity to NCR offers a commuting or seasonal option but one that is uneven and often informal.
- ii. Gendered constraints:** Rural Haryana studies cite male out-migration (short-term), women incorporated into low-paid, seasonal or unpaid family farm work reflecting land fragmentation and limited irrigation. These patterns cap women's earnings and bargaining power, feeding intergenerational poverty risks. (Taylor & Francis Online, ResearchGate)

Social Inequality

Understanding the determination of rural poverty in Jhajjar requires attention to deep-rooted social structures and gender. These dimensions shape access to resources, opportunities and results, often in combination with economic vulnerabilities.

Caste-based inequalities remain to influence patterns of lack in housing, landholding and employment, though gender-based disparities are reflected in adverse demographic gauges, educational gaps and labour market exclusion. These machetes of disadvantage support intergenerational poverty traps and constrain inclusive rural development. Within this framework, two critical aspects stand out:

- i. Caste:** At the district level, analyses of deprivation in Haryana yield Jhajjar as one of the more deprived or higher MPI districts for some time periods, which suggests clustered deprivations in housing in assets as well as in

basic amenities. SC households are also at the intersection of multiple disadvantages in education in land access and quality of employment.

- ii. **Gender:** Jhajjar has historically had one of the lowest child sex ratios in India, indicative of a strong preference for sons and more recent analyses at the level of the state reveal significant gender disparities in literacy and work participation. Gender bias reduces women's human capital and labour supply, limiting the household income frontier. (Wikipedia, humanitiesjournals.com, researchguru.net)

Infrastructure and Public Services

Beyond land as well as labour dynamics, the state of infrastructure and human development plays a significant role in shaping poverty outcomes in the Jhajjar district. While official documents climax developments in basic services such as electricity, schools and roads, critical discrepancies remain in irrigation, transport and marketing infrastructure, limiting agricultural attractiveness and rural incomes. At the same time, gaps in health services and uneven human development outcomes continue to burden rural households, often translating into higher out-of-pocket expenses and reduced work capacity:

- i. **Physical and market infrastructure:** Government and planning documents show progress on roads, schools, electricity and health facilities, but acknowledge lags in irrigation, transportation or marketing (Agri logistics) and some health system gaps affecting farm gate prices, input access and productivity. ([NABARD, Jhajjar District, ncrpb.nic.in](#))
- ii. **Health and Human Development:** NFHS-5 for Haryana underscores persistent rural gaps in

maternal or child health indicators and service coverage (district-disaggregated public reports are limited but state values indicate challenges that typically map onto poorer, remote villages). These add to poverty via out-of-pocket spending and lost labour days. ([DHS Program](#))

Social Protection and Public Works

District MIS shows active financial flows and works each year however, limited 100-day completions and seasonality can restrict income smoothing for the poorest. Strengthening durable asset creation (water harvesting, field channels) could align MGNREGA with Jhajjar's water/soil needs. ([NREGA State Portal](#))

Persistence of Rural Poverty

The determination of rural poverty in Jhajjar is closely tied to structural and systemic limitations that limit household resilience and income divergence. A combination of resource stress, deep-rooted social inequalities and institutional gaps continues to trap many rural families in cycles of defencelessness. Small and uneven landholdings, caste-linked barriers and gender-based eliminations interact with underdeveloped infrastructure and weak risk-sharing mechanisms to intensify both economic and social insecurities. Together, these factors reduce the capacity of households to endure shocks or take advantage of new occasions. Within this framework, five interrelated dimensions are particularly relevant:

- i. **Resource stress and small holdings:** Water constraints and small, fragmented plots raise per-unit costs, limit mechanization benefits and increase climate risk pushing households toward low wage casual work or distress migration. ([NABARD, PM Kisan Samman Nidhi, The Times of India](#))
- ii. **Caste-linked disadvantages:** SC households face higher barriers to quality schooling, non-farm jobs and land or credit, perpetuating low returns to labour and assets.

- iii. **Gender inequality:** Skewed sex ratios, education gaps and low female labour force participation suppress dual-earner potential and reduce resilience to shocks. ([DHS Program](#))
- iv. **Infrastructure and market access gaps:** Irrigation and marketing bottlenecks keep farm incomes low, health and transport gaps add hidden costs. ([NABARD](#))
- v. **Limited risk-sharing:** Thin insurance uptake and shallow social protection depth (irregular MGNREGA days, limited formal credit for smallholders) leave households exposed to idiosyncratic and covariate shocks.

Policy Recommendations

Addressing the multidimensional backgrounds of rural poverty in Jhajjar needs not only identifying structural constraints but also advancing forward-looking plans and programmatic solutions. Effective strategies must, at the same time, tackle resource stress, enhance farm and non-farm opportunities and expand social and human capital investments. Policy documents, field lessons and district-level assessments point to a set of interventions that can help reduce weaknesses while building flexibility for marginalised groups, especially smallholders, Scheduled Castes and women. Within this context, six interrelated priorities stand out:

- i. **Water-smart agriculture:** Expand micro-irrigation (drip or sprinkler) and on farm water management, scale treated-water reuse pilots, prioritize crop diversification away from paddy in stressed blocks, pair with solar-pumping plus telemetry for tubewells. ([PM Kisan Samman Nidhi, The Times of India](#))
- ii. **Support smallholders:** Promote FPOs (Farmer Producer Organizations) and custom-hiring centres to overcome scale constraints, expand warehouse receipts and primary processing in village clusters of Bahadurgarh, Beri, Matenhail to raise farm gate prices. (Inference grounded in

district plan gaps) ([NABARD](#)).

- iii. **Gender-forward inclusion:** Target scholarships and bridge courses for girls at the senior-secondary transition, link SHGs to non-farm micro enterprises in NCR value chains, expand safe commuting options to unlock women's wage work. ([ResearchGate](#), [DHS Program](#)).
- iv. **Caste-responsive measures:** Prioritize SC hamlets for irrigation assets under MGNREGA or PMKSY, reserved stalls in mandis and forward purchase tie-ups for SC farmer collectives. (Policy application of deprivation findings) ([ResearchGate](#)).
- v. **Strengthen social protection:** Aim for predictable MGNREGA provisioning in lean months and emphasize water-harvesting/field channels, converge with PM-Fasal Bima and KCC outreach via village camps, ([NREGA State Portal](#)).
- vi. **Health and human capital:** Bolster sub-centres or PHCs with outreach for maternal or child health, integrate nutrition and girls schooling drives in low-sex-ratio gram panchayats, [DHS Program](#).

Conclusion

Rural poverty in Jhajjar is less about absolute isolation and more about a stack of structural disadvantages: stressed water and small farms, caste-linked opportunity gaps, gender inequality and uneven last-mile services. Because Jhajjar is also plugged into NCR markets, well-designed water-smart farming, women's economic participation and market access interventions can yield outsized gains. If they are targeted to the most deprived village clusters and social groups. The case of Jhajjar district demonstrates how rural poverty is not the outcome of an only factor but rather the communication of economic, community and institutional constraints.

At the same time, social orders and gender disparities compound these physical constraints. Scheduled Caste households face overlying disadvantages in land access, education and labour markets, while women continue to bear the problem of limited occasions, unpaid care work, and controlled mobility. These factors reinforce cycles of withdrawal and reduce the adaptive bulk of rural households. Although progress has been recorded in organisation, electrification, education and healthcare, gaps continue in irrigation, health outreach and agricultural logistics, which explain into hidden costs and lost incomes. Risk-sharing tools, including MGNREGA, crop cover and credit access, remain inefficiently deep to shield households from shocks.

Addressing these challenges requires combined solutions, such as water-smart agriculture, farmer collectives, gender-inclusive strategies, caste-responsive advantage formation, solidier social safety and savings in human capital. These strategies, grounded in evidence from district and state-level intelligences, have the potential to decrease multidimensional poverty and foster comprehensive growth.

Eventually, the fight against rural poverty in Jhajjar is both an economic and a social challenge. It calls for connecting infrastructure gaps, dismantling entrenched inequalities and making enabling situations for women, smallholders and disregarded communities to participate fully in the rural economy. Sustainable poverty reduction in Jhajjar will hang on on balancing agricultural flexibility, non-farm modification and equitable human development paths.

References

1. Central Ground Water Authority. (2013). *Information booklet on groundwater, Jhajjar district of Haryana*. Ministry of Water Resources, Government of India.
2. Craig, J. (1988). *Population density and concentration in England and Wales, 1971 and 1981*. Office of Population Census and Survey.
3. District Administration, Jhajjar. (n.d.). 2016-2017 *Agriculture and Development Profile District Jhajjar*. Government of Haryana.
4. Rani, N., & Cahmar, C. V. (2025). Gender disparity in literacy among the Balmiki caste in Jhajjar district: Village-level evidence. *Emerging Geosustainability Transformations in India*. page no 391-407.
5. GoH. (2020). *Statistical Abstract 2019-20*. Department of Economic & Statistical Analysis, Government of Haryana.
6. GoH. (2023). *Statistical abstract 2020-21*. Department of Economic & Statistical Analysis. Government of Haryana.
7. GoH. (2025). *Haryana Economic Survey 2024–25*. Department of Economic & Statistical Analysis. Government of Haryana.
8. GoH. (2016–2022). *Pradhan Mantri Krishi Sinchai Yojana (PMKSY): State & district irrigation plans (Haryana/Jhajjar)*. Ministry of Agriculture & Farmers' Welfare. Government of Haryana
9. IIPS & ICF. (2021). *National Family Health Survey (NFHS-5), 2019–21, Haryana*. International Institute for Population Sciences.
10. Kumar, P. (2019). *Transformation of a rural society in Haryana: A case study of Jhajjar District*, Doctoral dissertation, Maharshi Dayanand University.
11. Ministry of Rural Development. (2023). *MGNREGA Management Information System (MIS): Jhajjar District Employment and Financing Dashboards*. Government of India.
12. Ministry of Statistics and Programme Implementation. (2025). *Periodic Labour Force Survey (PLFS): Employment and labour indicators*. Government of India.
13. National Bank for Agriculture and Rural

- Development. (2016-2017, 2019-2020). *District appraisal report: Jhajjar*.
14. Office of the Registrar General & Census Commissioner, India. (2011). *District census handbook: Jhajjar, series-07, part XII-A & B*. Government of India.
 15. Rengalakshmi, R., Ravula, P., Pratheepa, C. M., Bhanjdeo, A., Sogani, R., & Rao, N. (2025). *Gendered agrarian change in India: Land fragmentation, irrigation access, and women's work*. Taylor & Francis Online.
 16. Sharma, R., & Vashishth, A. (2017). *District-wise multidimensional poverty index and deprivation in Haryana*. ResearchGate.
 17. The Times of India. (2024–2025). *Reporting on groundwater stress and policy responses in Haryana*. The Times Group.
 18. Weather Underground. (2022). *Jhajjar, India weather history for January 2022*. <https://www.wunderground.com/history/monthly/in/jhajjar/VIDP/date/2022-1>

Dr. Sudhir Malik

Professor of Geography
Department of Social Sciences
Baba Mastnath University
Asthal Bohar-124021, Rohtak (Haryana)
sudhirmalik@bmu.ac.in

Amrita

Professor of Geography
Department of Social Sciences
Baba Mastnath University
Asthal Bohar-124021, Rohtak (Haryana)
vishaladeswal222@gmail.com

Abstract

This paper explores the interwoven themes of racism, domestic violence, and the suppression of female creativity in Buchi Emecheta's *Second-Class Citizen* (1974) and *Kehinde* (1994). Through a postcolonial feminist lens, the study examines how Emecheta portrays African women's struggles in both diasporic and patriarchal contexts, revealing how race and gender intersect to perpetuate multiple layers of subjugation. The paper argues that the violence faced by Emecheta's protagonists Adah and Kehinde are both physical and symbolic, functioning as a means of silencing their intellectual and emotional autonomy. Drawing upon the insights of critics such as Florence Stratton, Carole Boyce Davies, and Molaria Ogundipe-Leslie, the study demonstrates that Emecheta's narratives not only expose systemic inequalities but also affirm women's resilience and creative resistance. Ultimately, Emecheta's fiction underscores that the liberation of African women lies in reclaiming voice, authorship, and selfhood against the intertwined forces of racism and patriarchy.

Key words: racism, domestic violence, feminist lens, emotional autonomy

1. Racism, Domestic Violence, and the Silencing of Female Voices

Buchi Emecheta's fiction poignantly exposes the intersection of racism and patriarchy in the lives of her female protagonists, particularly in *Second-Class Citizen* and *Kehinde*. Adah, the heroine of *Second-Class Citizen*, migrates to Britain with dreams of freedom and opportunity, only to encounter the harsh reality of systemic racism that pervades every aspect of her life. She becomes a victim of social exclusion, denied access to decent housing and fair employment simply because of her skin colour. As Florence Stratton observes, Emecheta demonstrates how colonial hierarchies of race and gender persist in postcolonial societies, relegating African women to a perpetual state of marginality (Stratton 89).

Adah's experience of racism is compounded by the domestic oppression inflicted by her husband, Francis, who embodies patriarchal authority within the private sphere. His

destruction of Adah's manuscripts symbolizes not only his contempt for her ambitions but also the erasure of women's creative voices within both familial and cultural contexts. Similarly, in *Kehinde*, the protagonist faces the double bind of being Black and female in a society structured by racial exclusion and gender subjugation. As bell hooks aptly terms it, this is "the politics of silence" the systematic suppression of women's voices in both domestic and public domains (hooks 34). Through such depictions, Emecheta reveals that women's oppression is not confined to cultural traditions but is reinforced by racialized structures of inequality in diasporic contexts.

1.1 Racial Discrimination and the Burden of Otherness

Emecheta's *Second-Class Citizen* dramatizes the paradox of postcolonial migration, a movement driven by dreams of empowerment that instead exposes Black immigrants to racialized exclusion. Adah's migration to London, envisioned as a journey toward self-realization, becomes a confrontation with the entrenched hierarchies of race. She experiences rejection in employment, housing, and social life, as racism continually positions her as an outsider. Landlords refuse to rent to her family, employers deny her promotions, and society marks her as "the other." As Ogundipe argues, Emecheta "lays bare the racialized hierarchies of British society, which continuously remind Black immigrants of their marginal status" (Ogundipe 87).

In *Kehinde*, the protagonist's return to London after years in Nigeria demonstrates the persistence of racial prejudice across time. Despite her education and experience, Kehinde remains ensnared in a system that views her as inferior. Emecheta thereby critiques the illusion of multicultural inclusivity in Britain, exposing how racism continues to structure access to opportunities and social mobility. Both Adah and Kehinde's experiences reveal that racial discrimination is not merely an external challenge but a psychological burden that fractures identity and belonging. Through them, Emecheta dismantles the myth of postcolonial progress, exposing how race remains a powerful determinant of identity and marginalization.

1.2 Domestic Violence as a Tool of Patriarchal Control

If racism marginalizes Adah in public spaces,

patriarchy dominates her private life. Francis, her husband, personifies the patriarchal belief that a woman's duty is submission. His violence both physical and emotional enforces silence and compliance. Emecheta writes, "Francis beat her as if she were his child, reminding her that women had no right to speak against their husbands" (*Second-Class Citizen* 112). Similarly, in *Kehinde*, Albert insists that his wife abandon her independence and return to Nigeria with him, declaring that "a wife must follow her husband, no questions asked" (*Kehinde* 54).

As Carole Boyce Davies notes, Emecheta's male characters often replicate the mechanisms of colonial domination within the household, becoming "internal colonizers" who use violence as a means of asserting authority (Davies 123). Francis and Albert thus embody the internalized patriarchy that mirrors imperial control. Domestic spaces, conventionally idealized as sites of love and safety, become battlegrounds of domination and resistance. Emecheta transforms the home into a metaphor for colonial oppression, where women's bodies and voices are subjected to continuous policing and control.

1.3 Suppression of Female Creativity and Agency

In *Second Class Citizen*, young Ada has beaten up mercilessly for pursuing her dream to get good education. Adah's passion for writing symbolizes her refusal to accept silence. Her manuscripts represent intellectual self-assertion and creative independence. When Francis burns them, he does not simply destroy paper; he annihilates a woman's emerging authorship. As Ogunyemi (1985) explains, this act "reasserts male authority and denies the woman the power of narrative" (67). The destruction of Adah's creative work is thus a metaphor for the broader silencing of women's voices in patriarchal societies.

In *Kehinde*, the protagonist experiences a subtler but equally potent suppression. Torn between her personal ambitions and her husband's expectations, Kehinde embodies what Molaria Ogundipe-Leslie calls "double colonization" the compounded subjugation of women by both colonial and patriarchal systems (Ogundipe-Leslie 42). Emecheta herself reinforces this theme in her autobiography *Head Above Water*, where she recalls:

"Whenever a woman begins to write seriously, she is told she is neglecting her duty as a wife and mother" (Emecheta 89). Through these parallels between fiction and autobiography, Emecheta makes visible the systemic mechanisms that silence women's creativity, demonstrating that literary self-expression becomes an act of rebellion against both domestic and cultural confinement.

1.4 Psychological and Emotional Impact of Oppression

The intersection of racism and domestic violence in Emecheta's fiction produces profound psychological wounds. Adah's internal turmoil oscillating between defiance and despair captures the emotional toll of sustained oppression. Similarly, Kehinde's guilt and displacement upon returning to Nigeria reflect the psychic consequences of being caught between conflicting identities. Chandra Talpade Mohanty's concept of "double colonization" aptly describes this condition: women of colour are doubly marginalized as racialized subjects within Western society and as women within patriarchal culture (Mohanty 56).

Emecheta's characters internalize these forms of subjugation, leading to self-doubt and emotional fragmentation. Yet, Emecheta does not portray her protagonists merely as victims. Through persistence, creativity, and inner strength, they transform suffering into self-awareness. Their struggles highlight that liberation is not only external against systemic racism and gendered violence but also internal, involving the reclaiming of self-worth and agency. Thus, Emecheta's fiction dramatizes both the damage and the resilience of women living under the weight of intersecting oppressions. The novel, *Kehinde*, ends with Kehinde's declaration of autonomy by claiming her rights on the house. Thus Emecheta delineates in her novel that education is the panacea to combat all the problems in women's life and put the society on the road to reform.

Conclusion

Buchi Emecheta's *Second-Class Citizen* and *Kehinde* reveal that racism and patriarchy are not discrete structures but intertwined systems of domination that shape every facet of women's lives. Through Adah and Kehinde, Emecheta exposes how Black women in both

colonial and postcolonial settings are rendered “second-class” silenced in the public sphere by racism and in the private sphere by domestic violence. Yet, her fiction also insists on the possibility of resistance. By articulating their experiences and asserting their right to speak, Emecheta's protagonists reclaim agency in spaces designed to silence them. Emecheta's work remains profoundly relevant to contemporary feminist and postcolonial discourse. Her novels challenge readers to confront the ongoing realities of racial and gendered inequality, urging recognition of women's voices as central to the narrative of liberation. In turning oppression into narrative power, Emecheta transforms silence into speech, victimhood into authorship, and marginalization into a powerful testimony of survival.

References:

1. Davies, Carole Boyce. *Black Women, Writing and Identity: Migrations of the Subject*. Routledge, 1994.
2. Emecheta, Buchi. *Second-Class Citizen*. Heinemann, 1974.
3. .*Kehinde*. Heinemann, 1994.
4. .*Head Above Water*. Heinemann, 1986.
5. hooks, bell. *Talking Back: Thinking Feminist, Thinking Black*. South End Press, 1989.
6. Mohanty, Chandra Talpade. “Under Western Eyes: Feminist Scholarship and Colonial Discourses.” *Boundary 2*, vol. 12, no. 3, 1984, pp. 333–358.
7. Ogundipe-Leslie, Molar. *Re-Creating Ourselves: African Women and Critical Transformations*. Africa World Press, 1994.
8. Ogunyemi, Chikwenye Okonjo. *Women and Nigerian Literature*. Nigerian Magazine, 1985.
9. Stratton, Florence. *Contemporary African Literature and the Politics of Gender*. Routledge, 1994.
10. Nasta, Susheila. *Motherlands: Black Women's Writing from Africa, the Caribbean and South Asia*. The Women's Press, 1991.

Rinku Rani
Research Scholar,
Department of English
Om Sterling Global University, Hisar

Dr. Sneha Sharma
Assistant Professor,
Department of English
Om Sterling Global University, Hisar

Rinku Rani
W/O Azad Kumar
House No. 964, Sector 13P,
Hisar, Haryana,
PIN Code: 125001

Abstract

Parenting practices are deeply influenced by cultural values, religious ideologies, and socio-economic structures, shaping children's cognitive, emotional, and social development. This study provides a comparative analysis of parenting styles in India and developed nations, emphasizing the role of religion and belief systems in shaping child-rearing practices. While Indian parenting traditionally follows a collectivist, hierarchical approach rooted in religious values, Western models often prioritize autonomy, emotional support, and open communication. This study assesses the influence of religious teachings using a mixed-method research technique that includes both qualitative interviews and quantitative questionnaires, socio-economic factors, and modernization on parenting styles. Findings suggest that an optimal parenting model incorporates structured discipline with emotional warmth, fostering well-rounded child development. The study recommends integrating best practices from Western models while preserving core Indian family values to develop a balanced and effective parenting framework.

Keywords: Parenting styles, cultural beliefs, religious influence, child development, and comparative analysis.

1. Introduction

Parenting plays a major influence on how a kid develops socially, emotionally, and cognitively. It is a multifaceted process influenced by cultural values, religious beliefs, societal expectations, and socio-economic factors. Parenting styles vary significantly across different cultures, often reflecting broader ideological frameworks and historical traditions. While some cultures emphasize independence and self-expression, others prioritize discipline and familial hierarchy as essential components of child-rearing [1].

In India, parenting is deeply rooted in collectivist traditions, where family values and social structures significantly shape child-rearing practices. This contrasts with developed nations, where parenting styles often lean towards fostering autonomy, open communication, and emotional support [2]. The transmission of religious values through parenting further differentiates these approaches, as religious doctrines influence parental expectations,

disciplinary strategies, and the overall upbringing of children [3].

The interplay between culture, religion, and parenting has been a subject of academic inquiry, highlighting how belief systems shape family dynamics. For instance, religious transmission plays a crucial role in parenting, particularly in societies where faith-based teachings are integrated into daily life [4]. In contrast, secular societies may adopt more flexible parenting approaches, emphasizing psychological well-being and personal growth over rigid disciplinary methods [5]. These cultural and religious differences necessitate a comparative analysis to identify the best parenting practices and their implications for child development.

1.1 Background and Significance

India's religious beliefs, social systems, and cultural legacy all have a significant impact on parenting. Indian parenting is often characterized as authoritarian, emphasizing strict discipline, obedience, and academic success as primary goals for children [6]. The hierarchical family structure reinforces these values, with parents expecting children to adhere to family traditions and social norms. This collectivist approach contrasts with Western societies, where parenting styles focus more on autonomy and self-expression [6].

Religion plays a significant role in shaping parenting styles across different cultures. In India, religious teachings influence how parents raise their children, instilling moral values and behavioral expectations rooted in tradition. Similarly, in other regions, such as Kenya, religious beliefs and socio-economic status have a significant influence on parental practices, how children are disciplined, and how they are raised in school [7].

Early childhood parenting practices further illustrate these cultural distinctions. In Indonesia, for example, traditional parenting approaches emphasize social harmony and collective responsibility, which mirror the structured and disciplined environment seen in Indian households [8]. In contrast, Western parenting methods prioritize warmth, open communication, and emotional support, leading to more permissive and authoritative parenting styles [9].

Parenting beliefs also directly affect children's conduct, academic achievement, and social development. Studies on Latino adolescents show that parental expectations and peer influences significantly affect their academic success and overall behavior [10]. Similarly, religious teachings shape child-rearing values in Turkey, reinforcing moral responsibility, respect for elders, and family cohesion as core parenting principles [11].

Given these cultural and religious variations, it is essential to explore how different parenting models impact child development and well-being. The purpose of this study is to compare parenting practices in India and developed nations, highlighting the influence of cultural beliefs, religious doctrines, and socio-economic factors. Furthermore, it seeks to identify best practices from Western parenting models that can be adapted to the Indian context to create a balanced and effective child-rearing approach.

1.2 Research Objectives

This study aims to analyze the cultural, religious, and socio-economic factors influencing parenting styles in India and developed nations. It seeks to understand their impact on child development and recommend adaptable strategies for improving parenting practices in the Indian context. The specific objectives of this study are:

1. To examine the influence of cultural background on parenting styles in India and developed nations, focusing on traditional values, societal norms, and family structures.
2. To assess the role of religious beliefs in shaping parenting practices, particularly how faith-based teachings influence discipline, moral education, and child development.
3. To investigate the correlation between socio-economic status, educational background, and parenting styles, analyzing how financial and educational factors impact child-rearing approaches.
4. To compare Indian and Western parenting models, identifying key differences and recommending adaptable best practices that balance structure with flexibility.

1.3 Scope of the Study

This study examines how parenting styles in India and

industrialized countries are influenced by the convergence of culture, religion, and socioeconomic circumstances. It offers a comparative analysis to show how parenting philosophies affect kids' social, emotional, and cognitive growth. The study focuses on parenting styles that are permissive, authoritarian, and authoritative, examining their variations across different cultural and economic backgrounds. Through this analysis, the research aims to identify effective parenting strategies that can be adapted within the Indian framework while preserving traditional family values.

Using a mixed-methods approach, the study gathers data through both qualitative interviews and quantitative questionnaires from parents in India and developed nations. Statistical techniques such as correlation matrices and Garrett ranking methods will be used to analyze the relationship between parenting styles and external influencing factors. The findings will contribute to improved parenting frameworks, providing practical recommendations for educators, policymakers, and child development experts to support effective child-rearing strategies in India.

2. Related Work

Cultural values, religious beliefs, and educational frameworks all have a significant impact on parenting styles, which in turn shape kids' social, emotional, and cognitive development. In faith-based and faith-inspired schooling systems, value-based frameworks play a pivotal role in transmitting moral and ethical principles, reinforcing parental expectations and shaping child-rearing approaches (Amin, 2024) [13]. The integration of religion in education has sparked discussions on how faith influences parenting styles, particularly in designing holistic curricula that balance religious teachings with modern pedagogical methods (Moslimany Otaibi & Shaikh, 2024) [14]. Additionally, cultural beliefs surrounding social equity in education impact parenting attitudes, particularly in how ability groupings are structured in subjects like mathematics, where societal norms dictate perceived intelligence and achievement levels (Alam & Mohanty, 2023) [15]. Beyond education, faith-based organizations significantly influence family decision-making, particularly in matters

of public health, as seen in India's multi-faith collaboration during the COVID-19 vaccine rollout, where religious institutions played a central role in parental trust and acceptance of medical interventions (Soni *et al.*, 2023) [16]. Studies have also explored the relationship between prayer frequency and psychological well-being, showing how deeply religious parents in countries like India, the USA, and Turkey adopt structured, value-driven parenting approaches (Babula, 2023) [17]. These findings align with broader research on cultural variations in parenting, demonstrating that parenting ideals differ across regions, reinforcing traditional disciplinary approaches in some societies while promoting autonomy and emotional expressiveness in others (Novianti *et al.*, 2023) [18]. Parenting within Islamic families, for example, is guided by religious frameworks that emphasize family resilience and intergenerational responsibility, ensuring that children are raised within structured moral boundaries (Abubakar *et al.*, 2023) [19].

A global perspective on parenting ideals further highlights how societal norms shape perceptions of what constitutes "good" parenting, as demonstrated in a cross-cultural study of 37 countries that revealed substantial variations in how parents prioritize emotional warmth, discipline, and independence (Lin *et al.*, 2023) [20]. Socio-economic factors also play a critical role, with research showing that workplace structures and financial stability influence how parents engage with their children, as observed in human resource management studies examining multilevel relational influences on parenting styles (Malik *et al.*, 2022) [21]. However, religious parenting presents a paradox, often referred to as a "mixed blessing," where parental religiosity fosters strong moral foundations but can also impose rigid social norms that may affect a child's psychological development and integration into secular societies (Bornstein *et al.*, 2022) [22]. Gender dynamics further shape parental interactions, with studies highlighting differences in communication styles between mothers and fathers, particularly in discussions on morality, emotional support, and personal development (Scull *et al.*, 2022) [23]. Moreover, parenting styles and religious beliefs play a critical role in shaping children's digital literacy, with studies showing that parents who

adhere to stricter religious frameworks often regulate their children's access to technology more rigidly, influencing their behavioral development in both positive and restrictive ways (Purnama *et al.*, 2022) [24]. While religion often serves as a unifying force within families, it can also lead to ideological tensions, particularly in highly devout households where strict adherence to religious teachings may conflict with modern societal norms, affecting parent-child relationships (Kelley *et al.*, 2022) [25].

The evolving landscape of education and technology has further transformed parenting challenges, particularly regarding gender and sexuality diversity in school curricula, where parental responses vary based on cultural and religious backgrounds (Ullman *et al.*, 2022) [26]. The rise of artificial intelligence in religious education has introduced new ethical considerations, as faith-based institutions navigate the role of AI in shaping children's spiritual and intellectual growth (Tran & Nguyen, 2021) [27]. In more collectivist societies, religiosity plays a crucial role in parental psychological well-being, serving as a coping mechanism for emotional and financial stressors in child-rearing, as seen in Filipino parental spirituality studies (Jocson & Garcia, 2021) [28]. Additionally, research on collectivist versus individualist parenting attitudes highlights how globalization is reshaping traditional parenting models, with younger generations adopting more independent decision-making approaches compared to their predecessors (Lansford *et al.*, 2021) [29]. The transmission of faith within families remains central to religious sociology, illustrating how ideological beliefs are passed across generations, shaping moral education and long-term belief retention (Smith, 2021) [30]. Beyond ideology, parenting is also influenced by health-related challenges, such as raising children with congenital conditions, which place additional emotional and psychological burdens on caregivers (Nayeri *et al.*, 2021) [31]. Lastly, mental health stigma within ethnic minority communities in the United States has emerged as a critical factor affecting parenting, emphasizing the need for culturally inclusive intervention strategies to support child development in diverse socio-economic settings (Misra *et al.*, 2021) [32]. Together, these studies demonstrate that parenting is not a static concept but

rather a complex interplay of cultural, religious, and socio-economic forces, requiring a nuanced understanding to develop adaptable, effective child-rearing strategies across different societies.

3. Research Methodology

Research methodology refers to the systematic approach used to conduct a study, ensuring the collection, analysis, and interpretation of data are structured and reliable. In this research, a combination of qualitative and quantitative methods was employed to gain a deeper understanding of the influence of religion, beliefs, and culture on parenting practices. The methodology encompasses study design, sample size determination, data collection techniques, and statistical tools used for analysis. By adopting a structured research methodology, this study aims to provide empirical insights into the parenting styles in India and Western countries, identifying key differences and commonalities.

Study Design

The present research employs an empirical investigation to explore parenting practices and the influence of religion, beliefs, and culture on them. The research is conducted using a descriptive research design, which facilitates data collection through surveys and interviews. The study primarily gathers qualitative and quantitative data from parents, psychiatrists, and social care agencies in India using a structured questionnaire. A 5-point Likert scale was used to evaluate responses, ensuring the quantification of subjective opinions and perceptions.

A mixed-method approach was adopted to strengthen the findings, integrating both qualitative and quantitative techniques. The qualitative data was obtained from open-ended questions and interviews, while the quantitative data was derived from structured multiple-choice questions and rating scales. This combination provided a comprehensive understanding of the relationship between parenting styles and sociocultural influences.

The study design included a pilot study involving 50 respondents to test the reliability and validity of the questionnaire. After minor refinements, the final version was distributed for full-scale data collection.

Sample Size and Data Collection

A convenience sampling technique was adopted to collect data. A total of 500 questionnaires were distributed among

the targeted respondents, out of which 463 valid responses were received. The sample included 296 adolescents, 113 parents, 10 psychiatrists, and 22 officials from social care agencies. This diverse respondent pool ensured the representation of various perspectives on parenting practices.

The study assumes that the data follows a normal distribution and applies a 95% confidence level, with a margin of error of 0.04%. The sample size was determined using the proportion-based sampling technique, calculated as follows:

$$n = \frac{NZ^2p(1-p)}{Nd^2 + Z^2p(1-p)}$$

Where:

- N = Population size (50,000 estimated)
- n = Required sample size
- Z = Standard normal variate (1.96 at 95% confidence level)
- p = Proportionate sample distribution (0.35 assumed)
- d = Margin of error (0.04)

Both primary and secondary data sources were utilized:

- Primary data collection methods: Surveys, structured interviews, direct observation, and online interactions. The structured questionnaire was designed to capture detailed insights into how religious beliefs and cultural values shape parenting practices.
- Secondary data collection methods: Research articles, reports from psychiatrists, publications from WHO and UNO, economic surveys, and journal articles. These sources provided theoretical grounding and validated the study's findings with existing literature.

Statistical Tools Used

The collected data was analyzed using quantitative statistical methods with the help of SPSS (Statistical Package for the Social Sciences) version 20 and Microsoft Excel. These tools facilitated efficient data management, correlation analysis, and interpretation of patterns.

The statistical methods applied included:

- Descriptive Statistics (mean, frequency, percentage) to summarize the demographic data and understand general

trends.

- Pearson Correlation Analysis to examine relationships between parenting styles and cultural, societal, and religious values.
- Henry Garrett Ranking Method to rank the parenting challenges based on survey responses. This method provided a numerical hierarchy of the most pressing issues faced by parents.
- Chi-Square Test to determine the significance of relationships between categorical variables, such as the influence of religious affiliation on parenting approaches.
- ANOVA (Analysis of Variance) to compare multiple groups and analyze differences in parenting behaviors across various demographic categories.
- Categorization and Tabulation of responses for ease of interpretation and visualization.

4. Results and Analysis

This section presents the findings of the study through structured tabular representation and statistical analysis. The results focus on demographic characteristics, the impact of culture and religion on parenting, correlation analyses, and ranking of parenting challenges using Henry Garrett's method. Each dataset is supplemented with graphical visualizations to enhance interpretability and provide a clear comparison of variables. The insights gained from these analyses contribute to understanding the complex interplay of sociocultural factors in shaping parenting practices.

1. Demographic Analysis of Respondents

Demographic characteristics of respondents provide essential insights into their backgrounds, ensuring a diverse representation of perspectives on parenting practices.

Table 1: Class or Category Wise Analysis of Respondents

Respondent Category	Frequency	Percentage
Adolescents	296	63.2%
Parents	113	24.4%
Psychiatrists	10	2.15%
Officials from Social Care Agencies	22	4.75%
Total	463	100%

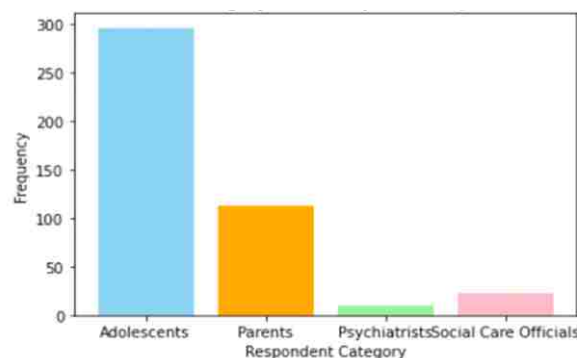


Figure 1: The Class or Category Wise Analysis of Respondents

2. Gender Distribution of Respondents

Understanding gender representation ensures balanced perspectives on parenting practices.

Table 2: Gender Distribution of Respondents

Gender	Frequency	Percentage
Male	312	67.38%
Female	151	32.61%
Other	0	0%
Total	463	100%

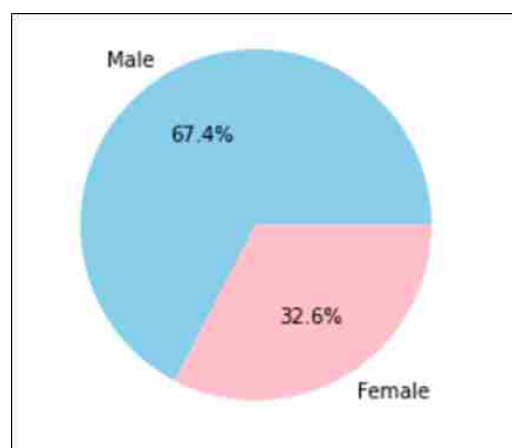


Figure 2: The Gender Distribution of Respondents

3. Age Distribution of Respondents

Age classification helps in analyzing generational differences in parenting styles.

Table 3: Age Distribution of Respondents

Age Group	Frequency	Percentage
10-20	296	63.2%
20-45	113	24.4%
46-55	22	4.75%
56 & Above	10	2.15%
Total	463	100%

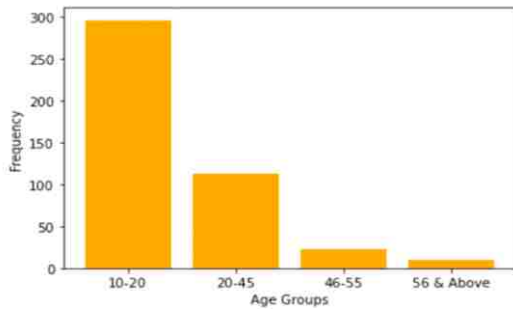


Figure 3: The Age Distribution of Respondents

4. Education Level of Respondents

Educational background is analyzed to understand its influence on parenting decisions.

Table 4: Education Level of Respondents

Education Level	Frequency	Percentage
Primary	53	11.44%
Secondary	198	42.76%
Graduate	180	38.87%
Master/Doctorate	32	6.91%
Total	463	100%

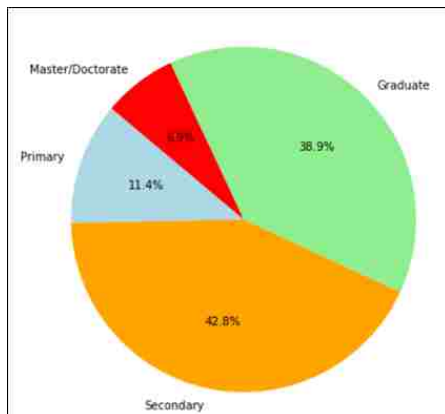


Figure 4: The Education Level of Respondents

5. Correlation Analysis

Correlation analysis identifies relationships between parenting styles and child development factors.

Table 5: Correlation Between Parenting Styles and Child Development Factors

Parenting Style	Growth	Behavior	Cognitive Skills	Social & Emotional Skills
Authoritarian	0.515	0.679	0.386	0.631
Authoritative	0.689	0.656	0.569	0.691
Permissive	0.812	0.489	0.778	0.916

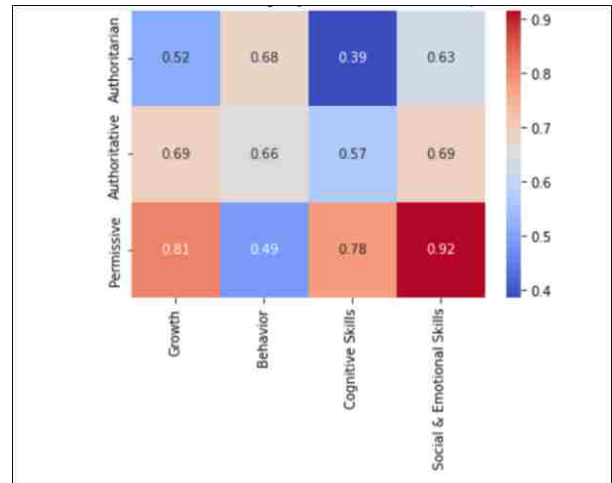


Figure 5: The Correlation Between Parenting Styles and Child Development Factors

6. Garrett Ranking for Parenting Challenges

Henry Garrett Ranking method is used to rank the most significant parenting challenges.

Table 6: Henry Garrett Ranking of Parenting Challenges

Rank	Parenting Challenge	Garrett Score
1	Multicultural Environment	26.09
2	Peer Pressure	25.12
3	Contradictory Beliefs and Modern Ideologies	21.47
4	Cultural Expectations and Gender Roles	20.00
5	Communication Gaps	19.64
6	Socioeconomic Status	18.19

121

5. Discussion

This section interprets the key findings from the study, evaluates their implications for parenting differences, and provides recommendations for improvement. The analysis highlights how cultural and religious backgrounds shape parenting approaches and identifies major challenges faced by parents in diverse sociocultural settings.

Key Findings

- **Demographic Trends:** The study reveals that adolescents make up the majority of respondents, providing direct insights into their experiences with different parenting styles.
- **Parenting Influences:** The findings demonstrate a strong correlation between religious beliefs and parenting approaches, with

authoritative parenting being the most favored.

- **Cultural Variations:** Western parenting styles emphasize independence and self-expression, while Indian parenting is rooted in collectivism and discipline.
- **Challenges Identified:** Garrett ranking highlights **peer pressure, communication gaps, and socioeconomic factors** as key issues affecting parenting.

Implications of Parenting Differences

- **Impact on Child Development:** Authoritative parenting is linked to better social and cognitive development, whereas authoritarian styles may lead to emotional distress.
- **Education and Socialization:** Different educational levels among parents influence their child-rearing beliefs, impacting children's academic and social skills.
- **Generational Conflicts:** Rapid modernization has created tensions between traditional and contemporary parenting approaches, leading to conflicts in values and discipline strategies.

Recommendations for Improvement

- **Enhancing Parent-Child Communication:** Workshops on effective communication strategies can help bridge generational and ideological gaps.
- **Promoting Balanced Parenting Styles:** Awareness programs can guide parents toward adopting a mix of structure and emotional support.
- **Addressing Socioeconomic Challenges:** Policy initiatives should support low-income families in providing better educational and emotional environments for children.
- **Cultural Sensitivity in Parenting Programs:** Parenting interventions should consider cultural differences to provide contextually relevant recommendations.

Introduction to Tabular Representation

Tables provide a structured format to present numerical and categorical data effectively. The study utilizes tabular representation to showcase demographic distributions, correlation analyses, and ranking of parenting challenges.

Tables help in summarizing large volumes of data, improving readability, and facilitating comparative analysis. Below, each table is presented in a separate section with its relevant discussion.

6. Conclusion and Implications

This study provides valuable insights into the relationship between cultural and religious influences on parenting styles. The findings highlight the importance of adopting balanced parenting approaches that integrate traditional values with modern developmental needs. Understanding the impact of cultural expectations and religious teachings on parenting can help create more effective family interventions and child-rearing strategies.

The implications of this research extend beyond individual households to broader social and educational policies. Policymakers, educators, and psychologists can utilize these findings to develop parenting programs that are culturally sensitive and socially inclusive. Addressing key challenges such as peer pressure, communication gaps, and socioeconomic barriers can contribute to healthier child development outcomes.

Future research should focus on longitudinal studies that track changes in parenting styles over time, as well as exploring the effects of globalization on parenting practices. By fostering awareness and promoting evidence-based parenting strategies, society can work toward a more holistic and inclusive approach to child upbringing.

References

1. Riany, Y. E., Meredith, P., & Cuskelly, M. (2017). Understanding the influence of traditional cultural values on Indonesian parenting. *Marriage & Family Review*, 53(3), 207-226.
2. Vermeer, P., Janssen, J., & Scheepers, P. (2012). Authoritative parenting and the transmission of religion in the Netherlands: A panel study. *International Journal for the Psychology of Religion*, 22(1), 42-59.
3. Coleman, J. C. (1997). The parenting of adolescents in Britain today. *Children & Society*, 11(1), 44-52.
4. Kelley, H. H., Galbraith, Q., & Korth, B. B. (2021). The how and what of modern

- religious transmission and its implications for families. *Journal of Family Psychology*, 35(4), 423.
5. Djasas, M. (2022). The Construction of Islamic Inheritance Law_ A Comparative Study of the Islamic Jurisprudence and the Compilation of Islamic Law.
 6. Sondhi, R. (2017). Parenting adolescents in India: A cultural perspective. In *Child and adolescent mental health*. IntechOpen.
 7. Igoki, M., & Changwony, D. (2019). Influence of religion and socio-economic status on parenting styles for students in public secondary schools in Nairobi City County, Kenya. *European Journal of Education Studies*, 6(3), 79.
 8. Puspitasari, M. D., Rahmadhony, A., Prasetyo, S., & Fadila, W. (2020). Early childhood parenting practices in Indonesia. *Population Review*, 59(2).
 9. Davis, A. N., Carlo, G., & Knight, G. P. (2015). Perceived maternal parenting styles, cultural values, and prosocial tendencies among Mexican American youth. *The Journal of Genetic Psychology*, 176(4), 235-252.
 10. Hayes, D., Blake, J. J., Darensbourg, A., & Castillo, L. G. (2015). Examining the academic achievement of Latino adolescents: The role of parent and peer beliefs and behaviors. *The Journal of Early Adolescence*, 35(2), 141-161.
 11. Acevedo, G. A., Ellison, C. G., & Yilmaz, M. (2015). Religion and child-rearing values in Turkey. *Journal of Family Issues*, 36(12), 1595-1623.
 12. Amin, H. (2024). Value-based frameworks and peace education in faith-neutral, faith-based and faith-inspired schools in Islamabad: A comparative analysis. *Journal of Peace Education*, 21(1), 54-81.
 13. Moslimany, R., Otaibi, A., & Shaikh, F. (2024). Designing a holistic curriculum: Challenges and opportunities in islamic education. *Journal on Islamic Studies*, 1(1), 52-73.
 14. Alam, A., & Mohanty, A. (2023). Cultural beliefs and equity in educational institutions: exploring the social and philosophical notions of ability groupings in teaching and learning of mathematics. *International Journal of Adolescence and Youth*, 28(1), 2270662.
 15. Soni, G. K., Bhatnagar, A., Gupta, A., Kumari, A., Arora, S., Seth, S., ... & Fields, R. (2023). Engaging faith-based organizations for promoting the uptake of COVID-19 vaccine in India: a case study of a multi-faith society. *Vaccines*, 11(4), 837.
 16. Babula, M. (2023). The association of prayer frequency and Maslow's hierarchy of needs: A comparative study of the USA, India and Turkey. *Journal of religion and health*, 62(3), 1832-1852.
 17. Novianti, R., Suarman, & Islami, N. (2023). Parenting in cultural perspective. *Journal of Ethnic and Cultural Studies*, 10(1), 22-44.
 18. Abubakar, B., Sanusi, S., Razali, R., Yeniningsih, T. K., & Mujiburrahman, M. (2023). Parenting Education in Islamic Families within the Framework of Family Resilience in Aceh, Indonesia. *Samarah: Jurnal Hukum Keluarga Dan Hukum Islam*, 7(2), 1121-1147.
 19. Lin, G. X., Mikolajczak, M., Keller, H., Akgun, E., Arikan, G., Aunola, K., ... & Roskam, I. (2023). Parenting culture (s): Ideal-parent beliefs across 37 countries. *Journal of Cross-Cultural Psychology*, 54(1), 4-24.
 20. Malik, A., Pereira, V., Budhwar, P., Froese, F. J., Minbaeva, D., Sun, J., ... & Xue, S. (2022). Multilevel relational influences on HRM practices: a cross-country comparative reflective review of

- HRM practices in Asia. *Asian Business & Management*, 21(5), 745.
21. Bornstein, M. H., Putnick, D. L., Lansford, J. E., Al-Hassan, S. M., Bacchini, D., Bombi, A. S., ... & Alampay, L. P. (2022). 'Mixed blessings': parental religiousness, parenting, and child adjustment in global perspective. In *Parenting: Selected Writings of Marc H. Bornstein* (pp. 392-415). Routledge.
 22. Scull, T. M., Carl, A. E., Keefe, E. M., & Malik, C. V. (2022). Exploring parent-gender differences in parent and adolescent reports of the frequency, quality, and content of their sexual health communication. *The Journal of Sex Research*, 59(1), 122-134.
 23. Purnama, S., Wibowo, A., Narmaditya, B. S., Fitriyah, Q. F., & Aziz, H. (2022). Do parenting styles and religious beliefs matter for child behavioral problem? The mediating role of digital literacy. *Heliyon*, 8(6).
 24. Kelley, H. H., Marks, L. D., & Dollahite, D. C. (2022). Uniting and dividing influences of religion on parent-child relationships in highly religious families. *Psychology of Religion and Spirituality*, 14(1), 128.
 25. Ullman, J., Ferfolja, T., & Hobby, L. (2022). Parents' perspectives on the inclusion of gender and sexuality diversity in K-12 schooling: Results from an Australian national study. *Sex Education*, 22(4), 424-446.
 26. Tran, K., & Nguyen, T. (2021). Preliminary research on the social attitudes toward AI's involvement in Christian education in Vietnam: Promoting AI technology for religious education. *Religions*, 12(3), 208.
 27. Jocson, R. M., & Garcia, A. S. (2021). Religiosity and spirituality among Filipino mothers and fathers: Relations to psychological well-being and parenting. *Journal of Family Psychology*, 35(6), 801.
 28. Lansford, J. E., Zietz, S., Al-Hassan, S. M., Bacchini, D., Bornstein, M. H., Chang, L., ... & Alampay, L. P. (2021). Culture and social change in mothers' and fathers' individualism, collectivism and parenting attitudes. *Social Sciences*, 10(12), 459.
 29. Smith, J. (2021). Transmission of faith in families: The influence of religious ideology. *Sociology of religion*, 82(3), 332-356.
 30. Nayeri, N. D., Roddehghan, Z., Mahmoodi, F., & Mahmoodi, P. (2021). Being parent of a child with congenital heart disease, what does it mean? A qualitative research. *bmc Psychology*, 9, 1-8.
 31. Misra, S., Jackson, V. W., Chong, J., Choe, K., Tay, C., Wong, J., & Yang, L. H. (2021). Systematic review of cultural aspects of stigma and mental illness among racial and ethnic minority groups in the United States: Implications for interventions. *American journal of community psychology*, 68(3-4), 486-512.

Inderpal Singh Kohli

Shri Venkateshwara University,
Gajraula, Amroha, Uttar Pradesh
ips.kohli@yahoo.co.in

7331131091

Dr. Nahid Parveen

Research Supervisor
Shri Venkateshwara University,
Gajraula, Amroha, Uttar Pradesh

Inderpal Singh Kohli

H.No. 2596, Phase -1, Sas Nagar
Mohali (Panjab)
Pin - 160062

Abstract :

The Government of India, along with various State Governments, has undertaken a range of constitutional and administrative measures to ensure the socio-economic upliftment of the Scheduled Caste (SC) population. Nevertheless, significant disparities continue to exist in the socio-economic well-being of SC and Non-SC populations across the country. The Indian Constitution provides for several reservation policies aimed at the upliftment of Scheduled Castes (SCs), Scheduled Tribes (STs), and Other Backward Classes (OBCs). The primary objective of these policies is to integrate the socially and economically backward sections of society with the mainstream. However, despite these efforts, considerable differences persist in the level of socio-economic development between the deprived castes and the general castes from the village to the national level. One of the most evident indicators of this disparity is the relatively low literacy rate among the Scheduled Caste population, particularly among SC women, both at the national and village levels. This paper focuses on analyzing the literacy levels of Scheduled Caste women and comparing them with the Non-SC female population in Haryana. The study is based on secondary data sources, and each district has been taken as the unit of analysis.

Keywords: Scheduled, Caste, Population, conditions, Haryana, Female Population, data

Introduction: Education plays a vital role in bringing about social, economic, and political development in society. It is one of the most significant indicators of human development and serves as a key asset in broadening an individual's perspective. A minimum level of education is essential for a person to overcome backwardness and ignorance. It expands the mental horizon, opens new avenues of knowledge and progress, and fosters social awareness. Through education, social values are strengthened, and the overall quality of life in society is enriched.

For women, literacy is an important social experience as it opens the door to a new world beyond the confines of their homes and household responsibilities. It enables them to gain self-esteem, confidence, and self-reliance. Education empowers women to adopt innovative ideas and helps in

eliminating traditional social evils. The Scheduled Castes are among the most socially and educationally disadvantaged groups in India. They have experienced long histories of social and economic deprivation, and the underlying causes of their educational marginalization are complex and distinct. Both at the state and national levels, the Scheduled Castes remain one of the most backward sections in terms of educational attainment. Moreover, literacy levels across India are far from uniform; they vary not only between different regions but also between males and females, rural and urban areas, and among various castes and sub-castes.

If we focus on a particular caste group, especially Scheduled Caste (SC) women, their condition remains highly disadvantaged. The literacy rate among SC women is significantly lower compared to both SC men and Non-SC women. Despite various government initiatives and constitutional safeguards, the gap in educational attainment continues to persist. Low literacy among SC women reflects deep-rooted social and economic inequalities that restrict their access to education. Social discrimination, poverty, lack of awareness, and traditional barriers are the major factors contributing to their educational backwardness. Improving female literacy within the Scheduled Castes is crucial for achieving inclusive social and economic development. This paper aims to analyze the spatial pattern of SC female literacy in Haryana and examine the disparities between SC male and Non-SC female literacy rates across districts. The study is based on secondary data sources and uses districts as the unit of analysis.

Study area:- Haryana state is located in the north-western part of India, covering a total geographical area of 44,212 square kilometers. It lies between 27°39'N to 30°55'N latitudes and 74°27'E to 77°36'E longitudes. The state of Haryana was formed on November 1, 1966, after being separated from the erstwhile state of Punjab. It shares its boundaries with Uttar Pradesh in the east, Punjab in the west, Himachal Pradesh in the north, and Rajasthan in the south. The National Capital Territory of Delhi also lies close to its southeastern border, giving the state strategic importance. Haryana is well known for its fertile soil and agricultural

productivity, often referred to as the “Green Land of India.” The state has made significant contributions to the Green Revolution and food grain production in the country. Physiographically, the region can be divided into two major units: (i) the Sub-Himalayan Terai region in the north and (ii) the Indo-Gangetic plain covering the central and southern parts. The terrain is generally flat, suitable for intensive agriculture and settlement.

The climate of Haryana is characterized by extreme conditions, being very hot in summer when the temperature rises up to 47°C, while in winter it drops to between 5°C and 9°C. The state experiences a predominantly tropical and semi-arid climate with distinct seasonal variations. At present, Haryana comprises twenty-two districts. Despite its relatively small size, it has achieved remarkable progress in agriculture, industry, and infrastructure. Today, Haryana stands as one of the most economically developed and progressive states in India.

Map 1: Location of the study area



Source: Prepared by the research scholar with the help of Arc-GIS

Objectives:

1. To analyze the spatial pattern of literacy levels among Scheduled Caste women.
2. To analyze the differences between SC male-female literacy levels and SC–Non-SC female literacy levels.

Methodology : This study is primarily based on secondary sources of data collected from the Census of India. The analysis focuses on two main aspects: the spatial pattern of Scheduled Caste female literacy levels and their differentials. Data have been analyzed using simple percentage methods along with relevant statistical

tools for clarity and accuracy. Tables and diagrams have been used for effective presentation and visualization of results. The study aims to highlight the regional variations and spatial distribution of SC female literacy across different districts of Haryana.

The present paper discusses the spatial pattern of Scheduled Caste (SC) female literacy and its comparison with SC male and Non-SC female literacy in Haryana. The state records an SC female literacy rate of 56.73%, indicating a relatively poor condition of SC women. Since literacy is a key indicator of women's status, low literacy reflects their continued social and economic disadvantage. A literate woman enjoys better status and participation in society, while a community with illiterate women cannot achieve true development.

Table 1.1 : District level Scheduled Caste Female Literacy Rate

Name of Districts	SC Female Literacy Rates (%)	Name of Districts	SC Female Literacy Rates (%)
Panchkula	63.67	Hisar	51.93
Ambala	65.24	Bhiwani	56.06
Yamunanagar	61.50	Rohtak	60.03
Kurukshetra	58.54	Jhajhar	63.43
Kaithal	48.40	M/Garh	60.40
Karnal	55.75	Rewari	63.58
Panipat	57.95	Gurugram	66.07
Sonapat	60.46	Mewat	57.89
Jind	51.88	Faridabad	57.90
Fatehabad	46.60	Palwal	51.38
Sirsa	47.04	Haryana	56.73

Sources:

Statistical Abstract of Haryana

Table 1.1 presents the district-wise Scheduled Caste (SC) female literacy rate in Haryana. The highest literacy rate among SC females is recorded in Gurugram (66.07%), followed by Ambala (65.24%), Rewari (63.58%), and Jhajjar (63.43%). These districts fall under the highly developed and urbanized regions of the state, where better educational facilities and awareness programs are available. In contrast, the lowest SC female literacy is observed in Fatehabad district (46.60%), followed by Sirsa and Kaithal, indicating poor educational conditions and limited access to learning opportunities. Overall, the data shows wide regional disparities in SC female literacy across Haryana. To analyze these variations, the districts have been grouped into four categories based on literacy levels: very high, high, medium, and low. This

classification helps to identify the spatial pattern and regional imbalance in educational attainment among Scheduled Caste women in the state.

(i) Low Literacy Rate (Below 57%): Two districts, namely Karnal and Bhiwani, are included in the low literacy category. The very low literacy rate (below 52%) category comprises seven districts Kaithal, Jind, Fatehabad, Sirsa, Hisar, Mewat, and Palwal. Among these, two districts (Kaithal and Jind) are located in the central part of Haryana, while three districts (Fatehabad, Sirsa, and Hisar) lie in the western region. The remaining two districts, Mewat and Palwal, are situated in the south-eastern part of the state. These regions reflect poor educational development among Scheduled Caste females, mainly due to socio-economic backwardness, lack of awareness, and limited access to educational facilities. The spatial pattern clearly shows regional imbalance in female literacy across Haryana.

(ii) Medium Literacy Rate (57% to 60%): Seven districts fall under the medium level category of Scheduled Caste (SC) female literacy, namely Yamunanagar, Kurukshetra, Panipat, Sonipat, Rohtak, Mahendragarh, and Faridabad. Most of these districts are located in the eastern and southern parts of Haryana. Several of them, such as Sonipat, Rohtak, and Faridabad, are part of the National Capital Region (NCR), benefiting from better connectivity, urban influence, and educational infrastructure. However, despite their proximity to urban centers, SC female literacy in these districts remains at a medium level, indicating that socio-economic disparities still persist. The educational facilities are relatively better than in the western region, but awareness, social barriers, and economic limitations continue to affect the progress of SC women. Overall, these districts represent transitional zones between the highly literate and low-literate regions of the state.

(iii) High Literacy Rate (Above 60%): Five districts fall under the high literacy category, namely Panchkula, Ambala, Jhajjar, Rewari, and Gurugram. This classification has been made solely for the purpose of data presentation and comparison. These districts are relatively more urbanized and developed, with better educational facilities and higher awareness levels.

However, despite showing comparatively higher literacy rates, the literacy level of Scheduled Caste (SC) females remains lower than that of the general female population across all districts. At the state level as well, SC women continue to lag behind in educational attainment. Their condition reflects persistent social and economic inequalities, highlighting the need for focused educational and empowerment initiatives.

Differences between SC Male - Female & Non-SC, SC Female Literacy Rate : There exists a significant gap between the literacy rates of SC males, SC females, and Non-SC females in Haryana. SC male literacy is considerably higher than that of SC females, reflecting gender disparity within the same community. Similarly, Non-SC females show much higher literacy levels compared to SC females, indicating persistent caste based educational inequality. These differences highlight the dual disadvantage faced by SC women both social and gender based which continues to hinder their overall development and empowerment.

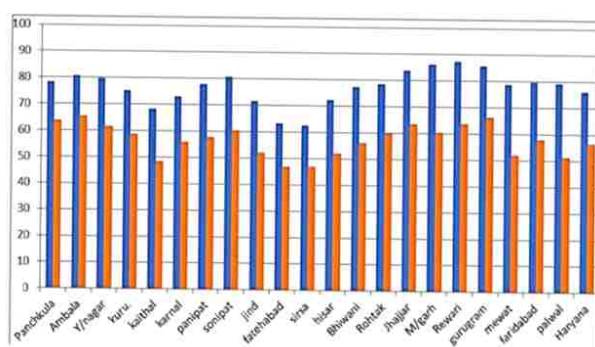
Table no.1.2 : Differences between SC Male - Female & Non-SC, SC Female Literacy Rate

Sr.no.	Districts	Male - Female Literacy Differences	Non-SC, SC Female Literacy Differences
1	Panchkula	14.64	15.09
2.	Ambala	15.46	13.78
3	Yamunanagar	18.12	12.07
4	Kurukshetra	16.43	13.02
5	Kaithal	19.88	13.7
6	Karnal	17.14	14.15
7	Panipat	19.9	10.93
8	Sonipat	20.2	11.44
9	Jind	19.58	11.16
10	Fatehabad	16.53	17.34
11	Sirsa	15.43	18.88
12	Hisar	20.18	13.32
13	Bhiwani	21.49	9.45
14	Rohtak	18.51	11.62
15	Jhajjar	20.3	8.79
16	M/Garh	25.83	4.96
17	Rewari	23.93	7.54
18	Gurugram	19.42	13.7
19	Mewat	26.9	-16.71
20	Faridabad	21.72	18.1
21	Palwal	28.01	0.57
22	Haryana	19.28	11.61

Source: statistical Abstract of Haryana

(i) SC male-female literacy : Table 1.2 shows the male-female literacy differences among the Scheduled Caste (SC) population in Haryana. The highest gap is recorded in Palwal district (28.01%), followed by Mewat (26.9%) and Mahendragarh (25.83%). On the other hand, the lowest difference is observed in Panchkula (14.64%), followed by Ambala and Sirsa. These figures indicate a significant gender disparity in literacy across all districts. The data clearly reflects the unequal position of women in Indian society, where gender inequality persists even within marginalized groups. Among Scheduled Castes, women face multiple layers of disadvantage due to caste, class, and gender discrimination. This triple burden severely restricts their access to education, employment, and empowerment, highlighting the urgent need for targeted social and educational interventions.

Figure 1.1: Scheduled Caste male-female literacy

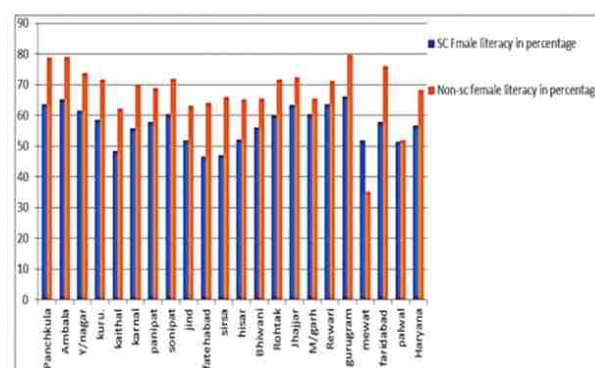


Source: Based on table no.1.2

(ii) Non-SC and SC Female Literacy : Table 1.2 also presents the differences between Scheduled Caste (SC) and Non-SC female literacy rates in Haryana. This difference has been calculated by subtracting the literacy rate of SC females from that of Non-SC females. The analysis reveals significant disparities across districts. The widest gap is observed in Sirsa district, where the difference reaches 18.88%, followed by Fatehabad with 17.34%. Such wide variations indicate the educational disadvantage faced by SC women compared to their Non-SC counterparts. In contrast, the lowest difference is recorded in Palwal district, where the gap is only 0.57%. At the state level, the overall difference between SC and Non-SC female literacy stands at 11.61%, reflecting persistent caste-based inequality in educational attainment. Interestingly, there is only one district Mewat

where the SC female literacy rate is found to be higher than the Non-SC female literacy rate by 16.71%. This exception can be attributed to the demographic composition of the district, which is predominantly inhabited by the Muslim population. The literacy rate among Muslim women in Mewat is comparatively lower, which results in SC women showing relatively higher literacy levels. However, despite this exception, both Scheduled Caste and Muslim women in Mewat continue to face severe educational and socio-economic challenges. Overall, the data highlights the stark regional and community-wise disparities in female literacy and underscores the need for focused educational policies to uplift SC women across Haryana.

Figure 1.2 Scheduled Caste and Non-SC female literacy rates in Haryana



Source: Based on table no.1.2

Conclusion: From the above discussion, it can be concluded that the literacy rate of Scheduled Caste (SC) women in Haryana is extremely low, reflecting their continued socio-economic marginalization. The study reveals a wide gap in literacy between SC males and females, as well as between SC and Non-SC females across the state. The main causes behind this low literacy among SC women include poverty, social discrimination, limited educational opportunities, and overall socio-economic and political backwardness. Although the government has introduced several initiatives to promote education and equality such as the Mid-Day Meal Scheme, free uniforms, free books, and scholarships for SC students these measures have not been sufficient to bring substantial improvement. A large section of the SC female population still remains outside the reach of basic education, particularly in rural and economically weaker

districts. Awareness about the importance of education among Scheduled Caste families is also very limited. Therefore, there is an urgent need for more targeted interventions to bridge this literacy gap. The government should focus on improving access to quality education, especially in areas with low female literacy, and strengthen monitoring of educational schemes. Special attention must be given to empowering SC women through adult education, vocational training, and community-based awareness programs. Only through sustained and inclusive efforts can the educational and social status of Scheduled Caste women in Haryana be significantly improved.

References :

1. Kundu, A., & Rao, J. M. (1986). Inequality in Educational Development. In M. Raza (Ed.), *Educational Planning: A Long Term Perspective* (pp. 435–466).
2. Romatra, K. C. (1988), "Scheduled Caste Literacy in North Western India: A Spatial Perspective", *National Geographer*, Vol. 23, No. 2, pp. 148.
3. S Kumar, Ashok (1990), "Educational Structure of Women in India", *Developing Women and Children in India*, Common Wealth Publication.
4. Census of India. (1991 & 2001). Series 6, Haryana: Scheduled Caste and Scheduled Tribe Tables. Registrar General of India, New Delhi.
5. Raju, S. (1991). Caste and Gender Disparities in Literacy in Urban Areas: Some Developmental Implications. *Demography India*, 20, 113–126.
6. Chakraborty, G. (1999, June). Quality of Life of Scheduled Castes and Tribes in Rural India. *Yojana*, 38.
7. Rao, D. P. (2004). Women's Education and Maternal and Infant Mortality in India: An Empirical Analysis. *IASSI Quarterly*, 22(4), 107–122.
8. Saroja, K., & Kukanur, H. (2004, July). Dynamics of Discontinuation of School among the SC, ST and Non-SC, Non-ST Rural Girls. *The Indian Journal of Social Work*, 64(3), 401–407.
9. Drèze, X., & Hussherr, F. X. (2003, January). Internet Advertising: Is Anybody Watching? *Journal of Interactive Marketing*, 17(4), 8–23.
10. Azim, S. (2005, April). Literacy Growth Disparities in Karnataka. *Economic and Political Weekly*, 40(16),

1647–1649.

11. Kumar M, Kumar V. (2011) Spatial Pattern and Differential in Literacy: A District Level Analysis of Haryana, *International Journal of Advance Research in Management and Social Sciences*. 2012; 1(6):137-145.
12. Dutta, Mahua., (2012), "Status of Literacy in Purba Medinipur District, West Bengal An Overview", *Geographical Review of India*, 74 (2) : 140 -149.13. Kumar, M. and Kumar, V. (2012), Spatial Pattern and Differential in Literacy: A District Level Analysis of Haryana, 2011, *International Journal of Advance Research in Management and Social Sciences*, 1, pp 137-145.14. Jangra R, Kaushik SP.(2016), Level of Female Literacy and Its Differentials in Haryana: A Lowest Sex Ratio State of India. *International and Journal of Science and Research (IJSR)*. ; 5(4):2173-2177.

Dr. Pardeep Kumar Sharma

Professor of Geography.
Department of Social Sciences
Baba Mastnath University
Asthal Bohar, Rohtak Haryana

Sonu

Professor of Geography.
Department of Social Sciences
Baba Mastnath University
Asthal Bohar, Rohtak Haryana

Abstract

This research paper presents a comprehensive analysis of the profound and enduring influence of the Indian Knowledge System (IKS) on the development, resilience, and global significance of India's traditional industries. It posits that these industries—far from being mere historical artifacts—are dynamic, living embodiments of a sophisticated knowledge system that integrated economic activity with cultural expression, ecological stewardship, and ethical frameworks. For centuries, this IKS-enabled ecosystem was the bedrock of regional and international trade, positioning India as a central node in a global network of material and cultural exchange.

The historical trajectory of these industries reveals a narrative of immense global influence. During the ancient and early medieval periods, India was not just a participant but a driving force in transcontinental commerce. Its artisans and merchants leveraged sophisticated knowledge of monsoon winds for maritime voyages across the Indian Ocean and supplied coveted goods to the world via the Silk Road and Spice Routes. Legendary products such as the gossamer Dhaka muslin, whose weaving techniques remain a marvel; the vibrant indigo dye that colored continents; the legendary spices of Malabar; the intricate block-printed cottons of Gujarat; and the fragrant sandalwood from Mysore, became synonymous with quality and luxury, establishing India's brand identity in the pre-modern global marketplace.

However, the subsequent era, marked by colonial imperialism and rapid industrialization, precipitated a significant disruption. This paper critically examines the challenges that now threaten the survival of these heritage sectors: the erosion of intergenerational skill transmission as youth migrate to other sectors; the intense competition from standardized, machine-made goods; the economic marginalization of artisans due to exploitative market intermediaries; and a critical lack of understanding of modern global branding and intellectual property rights.

Viewed through the theoretical lens of IKS, this research argues that these industries represent more than economic

units; they are complex cultural systems. They are repositories of intangible cultural heritage, embodying principles of Dharma that ensured fairness, honesty, and community welfare in trade practices. Their inherently sustainable methods—from natural dyeing and resource-conscious harvesting to closed-loop production cycles—offer valuable paradigms for contemporary sustainable development.

Ultimately, this study underscores an urgent imperative: to foster a synergistic model where traditional wisdom converges with modern innovation. It explores pathways for revitalization, suggesting how digital platforms, ethical branding, geo-tagging, and design innovation can empower rural communities, preserve intangible heritage, and re-establish these industries in the modern global value chain. By bridging the rich legacy of the Indian Knowledge System with the demands of the 21st-century economy, this research contends that India's traditional industries can once again become powerful contributors to a future where commerce is equitable, culturally-grounded, and ecologically sustainable.

KEYWORDS: *Indian Knowledge System (IKS), Traditional Industries, Global Trade, Cultural Heritage, Sustainable Development, Artisan Empowerment, Intangible Cultural Heritage, Economic History, Dharma, Decolonizing Economies.*

INTRODUCTION

The contemporary global landscape is characterized by a triple planetary crisis: climate change, biodiversity loss, and escalating pollution, compounded by persistent socio-economic inequalities and a search for economic models that prioritize well-being over mere GDP growth. In confronting these multifaceted challenges, the limitations of dominant, largely Western, paradigms of development have become starkly apparent. This has precipitated a critical re-evaluation of alternative knowledge systems that offer more holistic and sustainable pathways. The Indian Knowledge System (IKS), a vast and intricate corpus of wisdom cultivated over millennia, provides one such compelling framework. IKS is not merely a historical artifact but a dynamic and sophisticated lens through which to re-evaluate

contemporary notions of progress. Its philosophical foundations, which view the cosmos as an interconnected web of life (*loka-saṅgraha*), inherently link economic activity with environmental custodianship, social equity, and spiritual well-being. It posits that true economic growth must be aligned with *Dharma* (ethical duty) and the sustainable management of *Prakriti* (nature), offering transformative insights for global challenges in sustainability, holistic health, pedagogy, and ethical governance (Ministry of Education, Government of India, 2021; Singh, n.d.).

Within this framework, India's traditional industries are the tangible, living manifestations of IKS. They transcend simplistic categorization as "crafts" or "handicrafts"; they are, in essence, sophisticated, place-based knowledge economies. Each industry—from the legendary weaving of Varanasi's brocades to the intricate metalwork of Thanjavur—represents a deep, empirical understanding of local ecology, a mastery of material science, and a complex social organization for skill transmission. The Ministry of Education's delineation of IKS through the triadic framework of *Parampara*, *Drsti*, and *Laukika-Prayojana* provides a robust structure for understanding this phenomenon (Ministry of Education, Government of India, 2021):

a) Parampara (The Continuum of Lineage): This principle embodies the living channel of intergenerational knowledge transfer. It is an active, dialogic process where techniques—such as the enzymatic fermentation in Ayurvedic pharmacology (*asava-arishtha*), the seismic-resistant principles of traditional architecture, or the complex algebraic calculations embedded in textile patterning—are not merely inherited but refined and re-contextualized by each generation, ensuring the heritage remains both authentic and adaptive (Khan & Sharma, 2024).

b) Drsti (The Holistic Worldview): The *Bhartiya Drsti* is a perspective of pervasive unity and interdependence. It rejects the compartmentalization of knowledge, seeing no divide between the sacred and the secular, or the economic and the ecological. This worldview enables a unique synergy; for instance, allowing ancient astronomical knowledge (*Jyotisha*) to inform agricultural calendars, or principles of *Yoga* to enhance the ergonomics and well-

being of artisans. It is this integrative capacity that allows IKS to offer systemic solutions where fragmented approaches fail (Kumar, 2024).

c) Laukika-Prayojana (Purposeful Praxis for Community Welfare): The ultimate validation of IKS lies in its tangible application for the benefit of the community (*loka*). This principle of pragmatic utility ensures that knowledge is not esoteric but is directed toward solving real-world problems. This is evident in traditional water harvesting systems that ensured water security, in agricultural practices that enhanced soil fertility through crop rotation and organic manures (*Panchagavya*), and in the community-based ownership models that underpinned many craft guilds, ensuring equitable distribution of wealth (Jadon, Dixit, & Jadon, 2025).

Historically, these IKS-driven industries were the engines of India's economy and the cornerstone of its cultural identity on the world stage. For over two millennia, India was not a passive participant but a central architect of global trade networks, from the maritime Spice Routes to the overland Silk Roads (Roy, 2012). Commodities like Kashmiri saffron, Assam silk, Goan shipbuilding timber, and the surgical steel of the Medieval Hyderabad were globally renowned, not just for their quality but for the embodied knowledge they represented. Crucially, from the IKS perspective, this commerce was conducted within a *Dharmic* framework, where profit was balanced with purpose. Concepts like *Sattvic* trade (purity and honesty), the prohibition of exploitation (*anaṣṭana*), and a deep-seated respect for the raw materials provided by nature ensured that industrial activity reinforced, rather than eroded, social and ecological harmony (Jain, 2020).

It is this powerful synthesis of economic vitality, cultural profundity, and ethical integrity that this research paper seeks to investigate. By examining traditional Indian industries through the theoretical lens of IKS, this study will:

- (1) trace their historical evolution and pre-eminence in regional and international trade;
- (2) analyze the inherent principles of sustainability and social equity embedded in their practices;
- (3) diagnose the contemporary challenges—from cultural

disenfranchisement and supply chain exploitation to intellectual property appropriation—that threaten their survival; and

(4) propose forward-looking strategies for a synergistic future, where the timeless wisdom of the Parampara can be empowered by modern technology, design innovation, and ethical branding to once again position these industries as vanguards of a sustainable and equitable global economy.

HISTORICAL EVOLUTION OF TRADITIONAL INDUSTRIES IN INDIAN TRADE

The trajectory of India's traditional industries is not merely a chronicle of commercial activity, but a profound narrative of civilizational excellence, global integration, and subsequent systemic disruption. These industries, particularly textiles, were for centuries the cornerstone of the global economy, establishing India as a manufacturing powerhouse and a primary exporter of high-value finished goods. However, this position of prosperity was systematically dismantled, culminating in a catastrophic decline initiated during the colonial era, which orchestrated a deliberate deindustrialization and a massive "Drain of Wealth" that fundamentally altered India's economic destiny (Kumar, 2005; Chari, 2019).

1. Ancient and Early Classical Period (c. 3000 BCE – 600 CE)

The foundations of India's industrial prowess were laid in the meticulous urban planning of the Indus Valley Civilization (c. 3300–1300 BCE). Archaeological evidence from sites like Harappa and Mohenjo-Daro reveals highly advanced and standardized practices in:

- **Textile Production:** The early use of cotton, a plant native to the Indian subcontinent, for spinning and weaving.
- **Metallurgy:** Sophisticated craftsmanship in bronze, copper, and gold, as seen in intricate figurines and utilitarian objects.
- **Bead-Making & Stoneworking:** The mass production of meticulously drilled carnelian, steatite, and lapis lazuli beads, which were traded across Mesopotamia and the Persian Gulf.

This legacy was formally codified in the Mauryan period. The Kautilya's Arthashastra (c. 4th century BCE) is not merely a political treatise but a comprehensive economic manifesto. It outlines a sophisticated framework for

statecraft that directly supported industry, including (Kautilya's Arthashastra, c. 4th Century BCE):

- **State-Owned Workshops (Sangrahana):** For the production of high-quality textiles and armor.
- **Guild Systems (Shreni):** Powerful autonomous corporations of artisans and merchants that set quality standards, regulated prices, and facilitated skill transmission.
- **Robust Infrastructure & Trade Regulation:** Detailed policies on customs duties, taxation (sulka), and the protection of trade routes, both overland (e.g., the Uttarapatha) and maritime.

2. Medieval and Early Modern Epoch (c. 1200 – 1750 CE)

This period marked the zenith of India's traditional industries, fueled by strong empires and burgeoning global demand. The subcontinent became the world's premier manufacturer, with its products being coveted from Japan to the Atlantic (Roy, 2012).

- **Textile Supremacy:** Indian textiles became a global currency of luxury and utility.
- **Muslin of Bengal:** Woven so fine it was called "woven air" (ab-e-rawan) or "evening dew," with legendary varieties like Ab-e-Rawan (flowing water).
- **Kashmiri Shawls:** Intricate Kani and Pashmina shawls that became status symbols in European courts (Goswami, 1992).
- **Regional Specialties:** The gold-threaded brocades of Varanasi (Banarasi), the resist-dyed Bandhani of Gujarat and Rajasthan, and the painted Kalamkari of Coromandel.
- **Diverse Commodities:** Beyond textiles, a vast array of goods fueled international trade.
- **Spices:** Pepper, cardamom, and cinnamon from the Malabar Coast.
- **Indigo:** A premier blue dye from the Gangetic plains, essential for European textile industries.
- **Handicrafts:** Lacquerware, metalware (Bidriware), ivory carving, and exquisite jewelry.
- **Global Trade Networks:** This era saw the full integration of India into the world system, supplying goods through the Indian Ocean trade network to Southeast Asia, the Swahili Coast, the Middle East, and later, Europe.

3. Colonial Disruption and Systemic

Deindustrialization (c. 1757 – 1947)

The arrival of European trading companies in the 16th century began a shift from trade to political control, which culminated in the British East India Company's territorial conquests and the establishment of the British Raj. This period represents a calculated and devastating rupture (Kumar, 2005; Chari, 2019):

·Policy of Deindustrialization: The British implemented a three-pronged strategy to systematically dismantle India's industrial base:

1. Discriminatory Tariffs: Heavily taxing Indian finished goods (like textiles) upon entry into Britain, while allowing British machine-made goods (like Lancashire cotton) to flood the Indian market duty-free or with minimal tariffs, making local products uncompetitive.
2. Forced Raw Material Export: India was forcibly converted from a manufacturer to a supplier of raw materials (like raw cotton, indigo, and jute) to feed the factories of Britain.
3. Destruction of the Guild System: The traditional Shreni system was undermined and replaced by a colonial administrative structure that served British mercantilist interests, breaking the backbone of artisan organization and finance.

·The "Drain of Wealth": This was not merely an economic downturn but a systematic extraction of capital. Huge tributes, inflated salaries for British officials, and profits from monopolistic trade were siphoned out of India without any equivalent return, crippling capital formation for domestic investment.

·Human Cost: The resulting collapse led to widespread impoverishment of artisans, forcing a mass migration from crafts to overcrowded and exploitative agrarian subsistence. Renowned weaving centers like Dacca and Murshidabad became ghost towns, and legendary skills were lost within a few generations (Chari, 2019).

This historical evolution underscores a critical transition from a globally integrated, sophisticated industrial economy to a subjugated, raw-material-producing colony, a legacy whose challenges and echoes the modern revival movement for traditional industries must still contend with today.

CHARACTERISTICS OF TRADITIONAL INDIAN INDUSTRIES: EMBEDDEDNESS IN THE INDIAN

KNOWLEDGE SYSTEM

Traditional Indian industries—encompassing the vibrant handloom sector, intricate metalwork, pottery, coir, leatherwork, and brick-making—represent far more than mere economic activities. They are the operational expressions of a deeply rooted, sustainable, and community-centric knowledge system. These industries are characterized by their profound integration with the local ecology, social structures, and cultural values, forming a holistic economic model that stands in stark contrast to modern capital-intensive industrialism (Khare & Kumar, 2025).

The foundational principles of these industries can be analyzed through the following key characteristics:

a) Production and Technology: The Intelligence of Hand and Mind

The production paradigm in traditional industries is not defined by the accumulation of capital but by the refinement of skill and the efficient use of local resources.

1. Skill and Labour-Intensive Techniques: These industries are fundamentally human-centric. The value is created through the dexterity, patience, and specialized knowledge of the artisan. For instance, the weaving of a Kanchipuram silk sari involves thousands of meticulous hand movements, and the art of Meenakari (enameling) requires an understanding of metallurgy and chemistry that is physically applied by hand. This reliance on skilled labor creates high-value, unique products while sustaining extensive employment.
2. Intergenerational Transmission of Technique (Parampara): Technology here is not based on blueprints but on embodied knowledge passed orally and through practice from master to apprentice (ustad-shagird). This Parampara ensures the survival of complex techniques—such as the natural dyeing process using indigo vats, the lost-wax casting (Dhakka) method for metal icons, or the specific clay-slapping technique in terracotta—that are often impossible to replicate perfectly by machine. This living knowledge system is a form of intangible cultural heritage (UNESCO, 2021).
3. Hyper-Local and Sustainable Resource Utilization: Production was inherently place-based, creating a symbiotic relationship with the immediate environment.

Artisans used:

- **Region-Specific Materials:** Bamboo and cane in the Northeast, rosewood and sandalwood in Karnataka, Dhokra metal in tribal belts, and specific local clays for distinct pottery styles (e.g., the blue pottery of Jaipur).

- **Deep Ecological Knowledge:** This included understanding the optimal season for harvesting raw materials, using plant-based dyes and mordants, and designing products suited to the local climate, such as the lightweight, breathable Khadi cloth for tropical heat.

b) Inherent Environmental Sustainability: A Circular Economy

Long before the term "sustainability" was coined, traditional industries operated on a circular, zero-waste model. Production was consciously designed to be in harmony with nature (Prakriti) (Jain, 2020).

- **Biodegradability and Reuse:** Virtually all materials were organic or mineral, ensuring they returned to the earth. Waste was minimized; fabric scraps were repurposed into quilts (Gudri), and broken pottery was crushed and used as temper for new batches.

- **Low Carbon Footprint:** The entire production chain—from sourcing to manufacturing—was localized, requiring minimal transportation and running on human or animal energy, resulting in an exceptionally low carbon footprint.

- **Renewable Inputs:** The dependence on annually renewable resources like cotton, jute, and bamboo ensured that the resource base could regenerate, preventing long-term ecological damage.

c) Community Orientation and Collective Organization

The production unit was rarely an isolated individual; it was the community. This fostered collective resilience, quality control, and social welfare.

- **The Guild System (Shreni/Vaishya):** Historically, powerful guilds of artisans and merchants regulated production standards, set prices, managed training, provided credit, and acted as a collective voice for their members, ensuring fair practice and economic security (Kautilya's Arthashastra, c. 4th Century BCE).

- **Village Clusters and Craft Homesteads:** Entire villages or towns specialized in a single craft (e.g., Moradabad for metalwork, Pochampally for ikat weaving), creating

concentrated hubs of excellence, shared infrastructure, and collective marketing power.

- **Social Capital:** Trust, reciprocity, and shared cultural identity formed the invisible infrastructure that facilitated collaboration and mutual support within the craft community.

d) Social Inclusivity and Empowering Employment

These industries have historically been a critical source of livelihood and social agency for marginalized sections of society.

- **Role of Women:** Many crafts are predominantly female domains, providing flexible and dignified employment. Women are the primary weavers in the Manipuri Phanek tradition, embroiderers in Kutch, and makers of Lakhori bangles, allowing them to contribute significantly to household income while managing domestic responsibilities.

- **Integration of Marginalized Communities:** Numerous artisanal traditions are rooted in tribal and Dalit communities, such as the Warli painters of Maharashtra, the bamboo craft of the Adivasis, and the leatherwork of specific communities. These crafts provided a stable, skill-based identity and economic sustenance outside the rigid agrarian hierarchy.

- **Dignity of Labour:** The artisan (karigar) was revered, and their skill was seen as a divine gift. This ethos provided not just employment but a deep sense of purpose, cultural identity, and social standing (Goswamy, 1992).

In conclusion, the characteristics of traditional Indian industries reveal a sophisticated socio-economic ecosystem where economic production was seamlessly woven with environmental ethics, community welfare, and cultural meaning. Understanding these core characteristics is essential for any meaningful effort to revitalize them in the modern context.

TRADITIONAL INDUSTRIES IN REGIONAL AND INTERNATIONAL TRADE: FROM SELF-RELIANT ECOSYSTEMS TO GLOBAL DOMINANCE

The economic architecture of pre-colonial India was a sophisticated, multi-layered system where traditional industries thrived at both the self-sufficient regional level and as powerhouse exporters in international trade. This

dual structure created a resilient economy that balanced local needs with global ambitions (Roy, 2012).

1. Traditional Industries in Regional Trade: The Engine of the Self-Reliant Village Economy

At the grassroots level, traditional industries were the linchpin of a decentralized and highly sustainable economic model. This system was not merely about exchange but about fostering a deeply interdependent ecosystem known as the Jajmani system, which bound agricultural and artisan communities in a web of mutual obligation and support.

- **Vibrant Local Marketplaces:** The rhythm of local commerce was maintained through a network of weekly haats (markets) and seasonal melas (fairs). These were more than just points of sale; they were crucial nodes for social interaction, information exchange, and cultural celebration. The barter system was prevalent, often supplemented by local currency, facilitating the direct exchange of goods like grains for tools or cloth for pottery.

- **Symbiotic Agrarian-Artisanal Nexus:** The interdependence was absolute:

- Farmers supplied food grains, cotton, indigo, and other raw materials to the artisans.

- Artisans returned finished goods essential for agrarian life and daily living: the blacksmith (Lohar) produced ploughshares, axes, and nails; the potter (Kumhar) created storage jars, cooking pots, and roofing tiles; the carpenter (Suthar) built carts, tools, and looms; and the weaver (Julaha) provided clothing for the community.

- **Specialized Craft Clusters:** Entire villages often specialized, such as those producing the distinctive Kullu shawls of Himachal or the Madhubani paintings of Bihar, which were then traded regionally.

- **Socio-Economic Outcomes:** This system ensured full employment within the local economy, preserved intergenerational skills, prevented rural-to-urban migration, and created a circular economy that was inherently sustainable and resilient to external shocks.

2. Traditional Industries in International Trade: India as the "Industrial Workshop of the World"

For centuries, India was not just a participant but a dominant force in global trade, renowned as an exporter of high-value, luxury, and specialty goods. Its products were carried across the Silk Road, the Spice Routes, and the

Indian Ocean trade network, creating a legendary brand identity (Roy, 2012; Kumar, 2005).

- **a. Luxury Crafts and Precious Goods:** Indian craftsmanship in luxury items was unparalleled and sought after by royalty and elites worldwide.

- **Ivory Carving and Sculpture:** Intricately carved ivory from Goa and Bengal was exported to Rome, Africa, and later Europe. Temple sculptures of exquisite stone and bronze were also traded across Southeast Asia, influencing local art forms (Goswamy, 1992).

- **Jewellery and Gemstones:** Golconda diamonds, renowned for their size and quality, along with polished precious and semi-precious stones, were central to trade with the Roman Empire, the Islamic world, and Europe.

- **b. Textile Supremacy:** Indian textiles were the cornerstone of its international trade, a true global commodity.

- **Cottons:** The Muslin of Bengal was legendary for its fineness. Chintz from the Coromandel Coast, with its vibrant, fast-dyed patterns, was massively popular in Europe for clothing and furnishings. Calico (from Calicut) became a generic term for cotton cloth in Europe.

- **Silks:** The gold-woven Baluchari silks of Bengal and Patola double-ikat silks from Gujarat were highly prized in Indonesia and West Asia.

- **c. Ayurveda and Wellness:** The Export of Knowledge and Products: India exported not just goods, but a holistic system of wellness.

- **Medicinal Formulations:** Products like Chyawanprash and various medicinal oils and herbs were traded with Tibet, China, and the Arab world.

- **Wellness Goods:** Sandalwood, turmeric, neem, and aloe vera were exported for their cosmetic and therapeutic properties, forming an ancient global wellness industry.

- **d. Spices and Indigo:** The Catalysts of Global Exploration:

- **Spices:** "Black Gold" (pepper) from Malabar, cardamom from Kerala, and cinnamon were not just culinary items but essential for food preservation in Europe. The intense demand for these spices directly triggered the Age of Exploration.

- **Indigo:** The brilliant blue dye derived from the *Indigofera tinctoria* plant was a major export, so dominant

that the color itself was named after the country. It colored the uniforms of European armies and the fabrics of the aristocracy.

3. Contemporary Relevance: A Resurgence in the Global Market

In the 21st century, these traditional industries are experiencing a powerful resurgence, aligning perfectly with evolving global consumer consciousness. The modern world, in its search for authenticity and sustainability, is rediscovering the value inherent in Indian heritage products.

- **Ethical and Slow Fashion:** The global Slow Fashion movement champions handloom textiles for their uniqueness, low carbon footprint, and rejection of exploitative labor practices.

- **Demand for Sustainable and Eco-Friendly Goods:** Products made with natural dyes, organic materials, and traditional, zero-waste techniques are increasingly preferred over mass-produced, synthetic alternatives (Jain, 2020).

- **Market Access and Identity:** Initiatives like Geographical Indication (GI) tags (e.g., for Kanchipuram Silk, Pashmina) and digital platforms like e-Charkha and dedicated craft marketplaces are connecting artisans directly with global consumers, allowing these timeless industries to reclaim their prestigious position in a modern, ethical global marketplace (Sharma & Gupta, 2021).

CHALLENGES AND REVIVAL STRATEGIES: NAVIGATING GLOBALIZATION AND CRAFTING A SUSTAINABLE FUTURE

The advent of globalization and liberalization has presented a dual-edged sword for India's traditional industries. While opening up new markets, it has also intensified competition, exposing systemic vulnerabilities and threatening the very survival of these heritage sectors. The displacement of these industries by capital-intensive, mass-produced alternatives is not merely an economic shift but a profound cultural and social loss. Consequently, a multi-faceted approach, blending robust government support with community-led innovation and market-driven strategies, is an urgent imperative to ensure their resilience and relevance in the 21st century (Khare & Kumar, 2025).

A Multifaceted Web of Challenges

The challenges confronting traditional industries are deeply interlinked, creating a cycle of disadvantage that is difficult to break.

1. Market Access and Economic Viability:

- **Lack of Branding and Marketing Acumen:** Artisans often possess unparalleled skill but lack the knowledge and resources to build brands, narrate their product stories, or access premium markets. This results in their work being undervalued and perceived as commonplace rather than the luxury, heritage items they are.

- **Exploitative Intermediary Networks:** A long chain of middlemen often stands between the artisan and the consumer, capturing the majority of the profit margin. This exploitation ensures that artisans receive minimal wages, trapping them in cycles of debt and poverty, and severely limiting their economic mobility and the global reach of their products.

- **Unfair Competition with Machine-Made Goods:** Handmade products, which require days or weeks of labor, cannot compete on price with identical-looking, mass-produced machine-made replicas. Consumers often choose cheaper alternatives, unaware of the vast difference in quality, durability, and cultural value.

2. Socio-Cultural and Structural Erosion:

- **Declining Intergenerational Skill Transmission (Erosion of Parampara):** The younger generation, witnessing the financial instability of their elders and lured by the perceived prestige of white-collar jobs, is increasingly abandoning traditional crafts. This threatens a permanent severance of knowledge lineages that have been nurtured for centuries (Khan & Sharma, 2024).

- **Inadequate Institutional and Infrastructural Support:** Challenges include a lack of access to formal credit, inadequate workspace, difficulties in sourcing authentic raw materials at reasonable prices, and an absence of modern design inputs to refresh traditional patterns for contemporary tastes.

- **Marginalization of Artisan Communities:** Despite being the backbone of these industries, many artisans, particularly women and those from marginalized communities, remain socially and economically disempowered, with little voice in the systems that govern

their livelihoods.

A Strategic Framework for Revival and Renaissance

Addressing these challenges requires a synergistic strategy that honors tradition while embracing innovation.

1. Market-Linked Revival and Brand Building:

- Strategic Branding as "Heritage Luxury": Government and industry bodies must actively promote traditional products not as cheap souvenirs, but as eco-friendly, culturally authentic, and sustainable "heritage luxury" goods. This involves creating compelling narratives around the craftsmanship, history, and ethical values embedded in each product.

- Leveraging and Protecting Intellectual Property: Aggressively pursuing Geographical Indication (GI) tags for products like Banarasi Silk, Kashmiri Pashmina, and Kanchipuram Silk is crucial. A GI tag provides legal protection, assures authenticity, and enhances brand value, allowing artisans to command premium prices (Sharma & Gupta, 2021).

- Disintermediation through Digital Platforms: Promoting direct-to-consumer models via e-commerce platforms, dedicated artisan websites, and social media marketing can drastically reduce the role of intermediaries, ensuring a greater share of profits reaches the creators.

2. Educational and Institutional Reinvention:

- Revitalizing Skill Transmission: This involves a two-pronged approach:

- Formalizing the Guru-Shishya Parampara: Supporting master artisans to take on apprentices through state-sponsored scholarships and incentives.

- Integrating Craft into Modern Education: Introducing design and vocational programs in schools and universities that blend traditional techniques with contemporary design, marketing, and business management skills (Jadon, Dixit, & Jadon, 2025).

- Fostering Design Innovation and Entrepreneurship: Establishing design workshops where artisans collaborate with national and international designers to create new product lines that appeal to modern sensibilities while retaining traditional soul.

3. Community Empowerment and Sustainable Practices:

- Strengthening Collective Entrepreneurship: Empowering artisans, especially women, by forming and

strengthening Self-Help Groups (SHGs) and Producer Companies. These collectives can pool resources, achieve economies of scale, negotiate better prices, and access credit and larger markets collectively.

- Targeted Government Schemes and Infrastructure: Policies must go beyond subsidies to include providing common facility centers, access to raw material banks, facilitated export promotion, and ensuring the effective implementation of existing welfare schemes for artisans' health and social security.

- Promoting Sustainable and Ethical Consumption: Tapping into the global demand for ethically sourced, handmade, and eco-friendly products by certifying and marketing these industries as pillars of the sustainable and circular economy (Jain, 2020).

By implementing this comprehensive framework, India can not only safeguard its intangible cultural heritage but also transform its traditional industries into dynamic, future-proof sectors that empower communities, promote sustainable development, and reclaim their prestigious position in the global marketplace.

CONCLUSION: INTEGRATING TRADITION AND MODERNITY FOR A SUSTAINABLE FUTURE

This research has systematically charted the profound and enduring influence of the Indian Knowledge System (IKS) on the evolution, resilience, and global significance of India's traditional industries. The investigation reveals that these industries are far more than historical economic activities; they are the dynamic, living embodiment of a sophisticated philosophical framework that seamlessly integrated economic production with cultural identity, ecological stewardship, and ethical conduct. From the ancient guilds to the bustling ports of the medieval era, the principles of IKS provided the foundational logic for an economic model that was both prosperous and sustainable, establishing India as a preeminent force in regional and international trade for centuries (Roy, 2012; Kumar, 2005).

The analysis underscores several core tenets of IKS that were instrumental in shaping this unique economic ecosystem. The principle of Dharma instilled a culture of fairness, honesty, and trust in commercial transactions, ensuring that trade was a means of building community

rather than mere profit maximization (Jain, 2020). The deep interconnection between cultural identity and the economy meant that every product—from a Kanchipuram silk sari to a piece of Bidriware—was a carrier of stories, symbols, and civilizational values, creating an inimitable brand identity (Goswamy, 1992). Furthermore, the ethos of Swadeshi and Gandhian thought, particularly through the promotion of Khadi and village industries, can be seen as a modern reinterpretation of IKS, emphasizing self-reliance, decentralized production, and the dignity of human labor. Most critically, the inherent sustainability of these industries, evident in their use of local resources, circular production models, and low carbon footprint, offers a vital paradigm for addressing the environmental crises of the modern world (Jain, 2020).

The historical decline of these sectors, precipitated by colonial deindustrialization and exacerbated by the pressures of globalization, underscores a critical juncture. The future of India's traditional industries does not lie in nostalgic preservation but in a strategic and respectful synergy between heritage and innovation. The path forward requires blending the timeless wisdom of the guru-shishya parampara with digital marketing tools; protecting artisan rights through Geographical Indication (GI) tags while fostering contemporary design interventions; and empowering artisan collectives to access global markets directly (Sharma & Gupta, 2021; Jadon, Dixit, & Jadon, 2025). By doing so, these industries can continue to protect vulnerable communities, preserve India's intangible cultural heritage (UNESCO, 2021), and strengthen the nation's role in a global trade system increasingly oriented toward ethical and sustainable products.

The implications of this research are significant for a diverse range of stakeholders. For policymakers, it provides a robust, indigenous framework for designing more effective and culturally-grounded industrial and trade policies. Leveraging IKS principles can lead to initiatives that are more sustainable, socially inclusive, and beneficial to all stakeholders, from the rural artisan to the national economy (Ministry of Education, Government of India, 2021). For academics and researchers, this study highlights the urgent need to further decolonize economic thought and engage deeply

with IKS to develop alternative models for development. Future research could quantitatively analyze the ecological benefits of traditional techniques or explore the integration of IKS into modern management and entrepreneurship education (Kumar, 2024; Singh, n.d.).

In conclusion, this research affirms that the Indian Knowledge System is not a relic of the past but a vital reservoir of solutions for the future. By critically engaging with IKS and creatively integrating its principles into modern economic frameworks, India can empower its traditional industries to become vanguards of a more equitable, sustainable, and culturally vibrant global economy. The revival of these industries is not just an economic imperative but a civilizational responsibility, ensuring that the knowledge of the past continues to illuminate the path to a more harmonious future.

References

1. Chari, M. S. (2019). Deindustrialization Revisited: The Handloom Weavers of the Madras Presidency. *The Indian Economic & Social History Review*.
2. Goswamy, B. N. (1992). *The Spirit of Indian Painting*. Thames & Hudson.
3. Jadon, A., Dixit, A., & Jadon, S. (2025). Indian Knowledge System and Enterprise Evolution. *International Journal of Innovations in Science, Engineering And Management*.
4. Jain, S. (2020). Dharma and the Circular Economy. *Journal of Human Values*.
5. Kautilya's Arthashastra (c. 4th Century BCE).
6. Khare, P. S., & Kumar, J. (2025). Indian Knowledge System and Globalization. *International Journal of Research and Review*.
7. Khan, S., & Sharma, M. (2024). An Overview on Indian Knowledge System. *Integrated Journal for Research in Arts and Humanities*.
8. Kumar, D. (2005). *The Cambridge Economic History of India, Vol. 2*. Orient Longman.
9. Kumar, S. (2024). *Indian Knowledge System and Business: A Historical Perspective*. Anusandhanvallari.
10. Ministry of Education, Government of India. (2021). *Indian Knowledge Systems (IKS)*.
11. Roy, T. (2012). *India in the World Economy*. Cambridge University Press.

12. Sharma, R., & Gupta, A. (2021). Geographical Indications as a Tool for Artisan Empowerment. Journal of Intellectual Property Rights.
13. Singh, R. P. The Role of Indian Knowledge Systems in Shaping Modern Economic Thought.
14. UNESCO. (2021). Living Heritage and Sustainable Development.

Dr. Priyanka Singh

Assistant professor, Department of Economics, J.D.

Women's College, Patna (Bihar)

A Comparative study on the Wrist Width and Hand length of high and low performance volleyball players.

Dr. Mohd Khalid Khan

ABSTRACT

Structural differences in body segments affect the quality and quantity of movements. The segmental length and breadth determines force outcome from the lever formed by these segments. The purpose of this research work was to compare the Wrist Width & Hand length of high and low performance Indian volleyball players. 50 subjects each from High and low performance volleyball players were selected, from Senior national, All India inter-varsity, State, North zone Inter-varsity, District tournaments. Z-test analyses revealed the mean Wrist Width & Hand length, of high performance volleyball players to be significantly greater, than the mean Wrist Width & Hand length of low performance volleyball players.

INTRODUCTION

Structural differences in body segments affect the quality and quantity of movements. The segmental length and breadth determines force outcome from the lever formed by these segments. Hirata (1966) studied 116 Olympic volleyball players who were found to be tall and lean. Their average height was 183.8cm and weight 79kg respectively. Less rating of endomorphic component than the controls, considerably greater length of the trunk, broad shoulders and hips, greater size of hand span, larger chest, upper arm, thigh and calf circumference than the control. All the above characteristics mechanically help for better performance. Sodhi et al. (1990) conducted a study on the north Indian junior volleyball players aged between 16 to 18 years. The results were based on the cross-sectional data of 90 volleyball players and 94 control subjects. The data were divided age-wise into three subgroups of each category. The results of the study revealed that the volleyballers in each age group were significantly taller and heavier than the controls. The volleyballers in each age group possessed considerably greater length of their trunk, broader shoulders and hips, wider humerus and femurs, greater size of hand span, larger chest, upper arm, thigh and calf circumference than the controls. Mokha and Sidhu (1988) took anthropometric measurements of Indian female volleyball players having International level of participation. They found that the volleyballers were taller and heavier than the

controls. The taller stature of volleyball players was mainly due to the longer lower extremity because the mean values of the sitting height in both the groups were almost comparable. Upper extremities were also longer for volleyball players and they also possessed broader shoulders, wider knees and wrist.

Thus we see that the size and shape of the athletes play a significant role in the performance. Numerous factors are responsible for the performance of volleyball players. Fundamental skills of volleyball like servicing, passing, setting, smashing and blocking, requires a specific type of physique having specific proportions. The Hand length is a very significant factor in the performance structure of volleyball. The purpose of this research work was to assess the difference existing in the Wrist Width & Hand length of high and low performance volleyball players.

PROCEDURE

Keeping in view the objectives of our study 50 subjects each from high and low performance volleyball players of our country were selected.

High performance volleyball players; Were selected from;

- Senior national tournament held at "Choutala", Haryana.
- All India inter-varsity championship finals held at "Ajmer".
- East & Northeast zone championship held at "Agra".

Low performance volleyball players; Were selected from;

- State championship held at "Moradabad" ..
- North zone championship held at "Gadhwal" Uttranchal University, .
- Inter-varsity tournament held at "Ajmer".
- District tournament Moradabad, .

COLLECTION OF DATA

Wrist width-

It means the width between the most medial and lateral points of the distal epiphyses of radius and ulna. The subject was made to sit with hand extended downwards and palm facing forward. The measurements were taken with sliding caliper at right angles to the axis of forearm, with firm pressure on the cross bars of sliding caliper. It was measured in cms.

Hand length (palm & fingers)–

The subject was made to stand normally with arms hanging down. Right arm was made erect with palm and fingers directed towards thigh and then we measured the straight distance from the point stallion radial to dactyl ion 3, with the help of measuring tape was measured in cms.

Statistical Procedure

Z- Test was used to test the significant difference in Wrist Width& Hand length of high and low performance volleyball players at 0.05 level of significance.

ANALYSIS OF DATA

Table -1 - Wrist width

Measure	High-performance volleyball players	Low-performance volleyball players
Mean	6.28	6.00
Standard Deviation	0.45	0.57
Obtained value $ Z $	2.80*	
The mean of High performer is > than mean of Low performer $\overline{X}_1 > \overline{X}_2 = 4.67\%$		

* Significant at 0.05 level

** Z value for one tail test to be significant at 0.05 level 1.64

Table 1- Shows significant obtained Z value for one tail test, which leads us to conclude that the mean wrist width of high performance volleyball players is significantly greater (4.67%) than the mean wrist width of low performance volleyball players.



ANALYSIS OF DATA

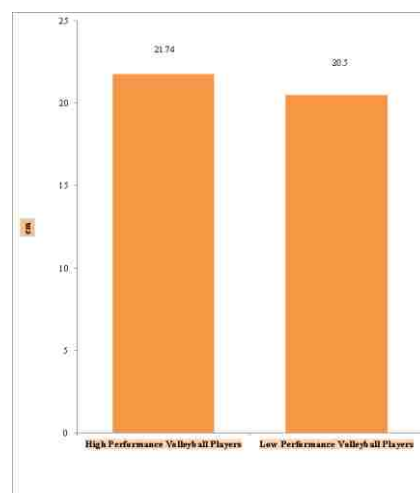
Table:2- Hand length (Palm and Fingers)

Measure	High-performance volleyball players	Low-performance volleyball players
Mean	21.74	20.50
Standard Deviation	0.99	1.04
Obtained value $ Z $	6.20*	
The mean of High performer is $>$ than mean of Low performer $\bar{X}_1 - \bar{X}_2 = 6.05\%$		

* Significant at 0.05 level

** Z value for one tail test to be significant at 0.05 level 1.64

Table 2- Shows significant obtained Z value for one tail test, which leads us to conclude that the mean hand length of high performance volleyball players is significantly greater (6.05%), then the mean hand length of low performance volleyball players.



Discussion of findings

Discussion of findings for Wrist Width& Hand length of the High and Low performance volleyball players is presented. Z test was used to test the significant difference between the chosen variables of high and low performance volleyball players

It is observed that mean wrist width of high performance volleyball players is significantly (4.67%) greater than the low performance volleyball players.

Mokha and Sidhu (1988), Took anthropometric measurements of Indian female volleyball players having International level of participation. They found that the volleyballers were possessed wider wrist.

It is observed that mean hand length of high performance volleyball players is significantly (6.05%), greater than low performance volleyball players.

Sodhi et al. (1990) conducted a study on 116 Olympic volleyball players and observed that they had greater hand length than the controls.

Increase Wrist Width& Hand length is directly proportional to strength, which helps in spiking, lifting, blocking and defense. It gives them advantage in flicking the ball in various directions, giving spin to the

References

- **Hirata, Kin-Itsu.** “Physique and age of Tokyo Olympic Champions. J.Sports Med.Phys.Fitness, 1966.
- **Sodhi et al.,** Kinnanthropometric characteristic of Indian junior volleyball players. In Origins of kinanthropometry, Patiala. (1990)
- **Mokha and Sidhu ,** Physique and body composition of Indian female basketball players at different levels of competition. In : O.G.Eiben (Ed), current development in Kinanthropometry. Humanbiologia Budapestensis, 18, 193-201. 1988
- **Pervez Shamim and Singh Brij Bhushan,** A Comparative study of selected physical and physiological parameters of high and low performance Basketball players. Completed PhD. Thesis Department of Physical Education, A.M.U., Aligarh. (2002)
- **McArdle W.D., Katch F.J. and Katch V.L.,** “Sports and Exercise Nutrition” Lippincott Williams and Wilkins, (New York: A Walter Kluwer Co., 1999.

Dr. Mohd Khalid Khan

Assistant Prof. (Dep. of Physical Education)
Y.M.D. College, Nuh,
Gurugram University, Haryana

Abstract

The Directive Principles of State Policy are written in Part IV of the Indian Constitution to guide the governments in building a fair and equitable society. Even though they are not enforceable in courts, they provide important guidelines and directions to the government for making policies that improve people's lives and provide them justice. This paper explains how Directive Principles were made, how they work, and what is their significance in a welfare state. It also shows how the courts have given strength to these Directive Principles through various landmark judgements. Many government programs have tried to put these principles into reality. Still, there are various problems like inequality, poverty, and lack of resources. These problems hinder the full success of the Directive Principles. In the end, this chapter shows how Directive Principles have helped India move towards achieving social and economic justice, but real change still needs a lot of effort.

Keywords- Directive Principles, Indian Constitution, Welfare State, Social Justice

Introduction

Modern constitutionalism has a very deep connection with economic justice. In developing countries where social and economic inequality still prevails today, the objective of the constitution is not merely to provide political rights but has a broader purpose, which is to establish an egalitarian society. India gained independence from British rule in 1947, but at the time of independence, the country faced numerous challenges. Our constitution makers thought that merely establishing political democracy would not fulfill their objective; for this, it is essential to strengthen social and economic democracy. In this context, our constitution included the Directive Principles of State Policy in Part IV. These are principles that guide the government and indicate how to establish a welfare state so that social and economic disparities can be eliminated.

Before independence, India's economic condition was not good; inequality existed in India, and the country suffered from backwardness. The British economic policies were responsible for this, as they focused more on exploiting

India. During British rule, whether it was industry, agriculture, or trade, everything was affected. Due to their flawed policies, people became increasingly poor and sank deep into debt. Famine, disease, and death became very common during British rule.

At the time of independence in 1947, India's economy was in shambles. Per capita income was very low, the standard of education was extremely poor, and the average life expectancy of people was also very low. On top of all this, various forms of inequality existed in society—whether in terms of caste, gender, or region. The worst situation was that of the tribals, Dalits, and backward classes in India, who had neither land, education, nor employment. It was against this backdrop that our Constitution was framed. The biggest challenge before the constitution-makers was not only to establish democratic institutions in the country but also to build a welfare state so that social and economic changes could be seen on the ground.

The Constituent Assembly was well aware that its biggest challenge was to eliminate economic inequality. Whether it was Nehru, Ambedkar, or Shah, all believed that freedom would only be meaningful in the true sense when social and economic changes were visible on the ground.

The Constitutional Vision of Economic Justice

The Constitution of India is not merely a law book. It has a very large objective, and that is to bring about change in society. Our constitution makers were well aware that without social and economic democracy, political democracy has no meaning.

The Preamble of the Constitution states that the objective of the Indian Constitution is to achieve justice. Justice is of various kinds, such as social, economic, and political. Jawaharlal Nehru had said in his speeches that political democracy has no meaning if a large population is economically weak.

To achieve the goals outlined in the Preamble, our constitution makers added a new part to the Constitution, which was Part IV, Articles 36 to 51, and it was called the Directive Principles of State Policy. Although these principles are not binding, they serve to guide governments.

The objective of the Directive Principles of State Policy is to establish a welfare society. Governments should formulate policies that uplift the poor and help the weaker sections rise. The constitution makers thoughtfully created both the Fundamental Rights and the Directive Principles of State Policy. While the purpose of Fundamental Rights is to protect individual freedom, the purpose of the Directive Principles of State Policy is to promote the welfare of society.

The inspiration for formulating the Directive Principles of State Policy has been drawn from several sources, such as the Constitution of Ireland, the Soviet Union model, and the Universal Declaration of Human Rights. The Constitution of Ireland grants citizens certain social and economic rights, but like in India, these are non-justiciable—meaning their enforcement depends on the will of the state to enact laws for their implementation. On the other hand, the Constitution of the Soviet Union also inspired India to incorporate various types of social and economic rights into its own constitution. The Universal Declaration of Human Rights, adopted by the United Nations General Assembly in 1948, includes several social and economic rights in Articles 22 to 26, such as the right to social security, the right to work, the right to education, etc. Since India was a founding member of the United Nations, it also bears the responsibility to ensure these social and economic rights reach the people.

When the Indian Constitution was being drafted, a heated debate arose in the Constituent Assembly over whether socio-political rights should be made justiciable or not. K.T. Shah and others believed that if socio-political rights were not made enforceable, they would remain confined to paper and have no real impact. On the other hand, some members, such as Alladi Krishnaswamy Ayyar and B.N. Rau, argued that implementing the Directive Principles outlined in Part IV would not be so easy. They were aware that India lacked the economic capacity to immediately provide these rights to the people. Even Dr. Bhimrao Ambedkar was in full agreement with this view. Ultimately, a middle path was chosen: the Fundamental Rights described in Part III were made justiciable, while the Directive Principles of State Policy in Part IV were not made enforceable. The principles in Part IV were left to the discretion of the states to decide when and how to

implement them. The framers of the Constitution intended that these directive principles should gradually become part of policies and programs over time.

Directive Principles and Welfare Policy Framework in India

The Directive Principles of State Policy are regarded as a compass in governance. Their objective is to continuously guide the state towards achieving social and economic democracy. Although these are non-justiciable, they have still played their role in shaping numerous laws and policies. Whether it is land reforms, welfare of workers, education, health, or food security.

Influenced by the Directive Principles, land reforms were first carried out in independent India. The aim of land reforms was to reduce inequality and prevent the concentration of wealth. Several laws and decisions were taken in this direction. In 1950, the Zamindari Abolition Act was enacted—this law was implemented in many states with the objective of eliminating intermediaries between the state and the cultivators. Land Ceiling Laws were made so that those who do not have land could receive it. Land Ceiling Laws can also be linked with Article 39(b) and Article 39(c). However, their implementation was not uniform. Although land reform laws were enacted, several challenges emerged, such as political interference and poor implementation.

Several laws were also made for the welfare of workers, such as the Factories Act of 1948, the Minimum Wages Act of 1948, the Maternity Benefit Act of 1961, the Bonded Labour System (Abolition) Act of 1976, and the Unorganized Workers Social Security Act of 2008. All these laws can be linked with Articles 39, 41, 42, and 43. However, challenges exist here as well. The biggest challenge is that a very large section of the country's workforce is engaged in the unorganized sector, and there is no system of monitoring there.

Education holds immense importance for the development of any country. Provisions for this are written in Articles 41 and 45 of the Directive Principles of State Policy. The Kothari Commission (1964-66) first suggested that Mid-Day Meals be introduced in schools and that 6% of GDP be spent on education. Later, in 2009, the Right to Education Act was enacted, which gave recognition to Articles 41 and 45. It ensured free and

compulsory education in schools, better basic facilities, teacher-student ratios, and special provisions for children from weaker sections. The Mid-Day Meal scheme was launched in 1995. It is influenced by Article 47, under which the large Mid-Day Meal Programme operates. Its objective is to increase school enrollment and simultaneously provide nutrition to children.

Better nutrition and good health are related to Article 47. It states that it is the duty of the state to take care of the nutrition of the people. In this direction, many schemes and laws have been made, such as the Public Distribution System, the Integrated Child Development Services started in 1975, the Mid-Day Meal Scheme, and the National Food Security Act, 2013. Today, under the National Food Security Act, 67% of the country's population is being provided subsidized grains by the government.

Social security can be linked with Articles 41 and 43. In this direction, the government has also enacted several laws, such as the MGNREGA Act of 2005, which guarantees at least 100 days of employment in villages. The National Rural Health Mission launched in 2005 aimed to improve the health of women and children in rural areas. In 2018, the Ayushman Bharat Pradhan Mantri Jan Arogya Yojana was introduced. It is the world's largest insurance scheme, and today nearly 50 crore Indians are covered under this insurance scheme.

Reservation holds great importance for social justice. For this purpose, the provisions given in the Fundamental Rights are linked with the provisions of the Directive Principles of State Policy. Articles 15 and 16 described in the Constitution are related to Articles 38, 39, and 46. The Indian Constitution initially provided reservation benefits in education, employment, and the political sphere for Scheduled Castes and Scheduled Tribes. Reservation for Other Backward Classes was implemented based on the Mandal Commission Report. In 2019, through the 103rd Constitutional Amendment, economically weaker sections were granted reservation benefits in education and jobs.

Directive Principles and Economic Justice: The Reality Check

Although the Directive Principles were thoughtfully

included in the Constitution with a very broad objective—to eliminate inequality in the country and simultaneously fulfill social and economic justice—it is noteworthy that even after 75 years of independence, many gaps remain visible. What was envisioned is not happening as planned.

Although the Constitution has written numerous provisions to remove inequality, yet Oxfam's recent report reveals that nearly 77% of the country's wealth is concentrated in the hands of about 10% of the rich. 60% of the people possess less than five percent of the wealth. Despite development, people living in rural areas still lack education, face health issues, and do not have access to basic facilities. Although Article 41 provides the right to work, schemes like MGNREGA have to grapple with several challenges, such as fund shortages and delays in wages.

Land reforms were introduced to provide economic justice to the people, but the problem still persists. The first issue is that small farmers have no security. Although land ceilings were imposed by the states, redistribution of land occurred only minimally. By the end of the 1990s, only about two percent of cultivable land had been redistributed. Small farmers living in rural India still struggle with problems like the burden of debt. The cost of agriculture is increasing day by day, environmental changes are occurring, and the government is withdrawing its support from the agricultural sector. The way farmers are committing suicide today indicates that somewhere we have failed in achieving our goal.

The Directive Principles have also laid down numerous provisions for workers. However, challenges exist here as well. The biggest challenge is that nearly 85% of India's laborers work in the unorganized sector. In the unorganized sector, they lack security and have no form of social security. Although the Minimum Wages Act exists, its compliance is still inadequate—many workers are not even paid the minimum wage. During the COVID-19 pandemic, there were countless laborers in India who had no wages, no homes, and no social security.

Although improvements have been made in the fields of education and health, a lack of quality is still observed. The Right to Education Act, 2009, is not being fully implemented. There are many schools where there is

a shortage of classrooms, cleanliness, and trained teachers. Children from weaker sections, especially girls, are still dropping out of school at an early age due to poverty. There are several other reasons behind school dropouts, such as early marriage or lack of family support. During COVID-19, while children in urban areas benefited from online education, children in rural areas, particularly those from poor backgrounds, could not take advantage of it because they lacked mobile phones and internet accessibility.

Article 47 of the Constitution states that it is the duty of the state to improve public health. However, it is a matter of shame that India spends only two percent of its GDP on health. This is far below the global average. In rural areas, hospitals still face shortages of doctors, medicines, and nurses. Although the government launched Ayushman Bharat in 2018, its implementation is not being carried out effectively in many places. There are several reasons for this, such as a lack of basic facilities and dependence on private institutions for services. Although health-related provisions are written in the Constitution, the reality is that in the field of health or medicine today, most of the work is being done by private institutions that treat patients at high costs.

Although the Constitution has special provisions for weaker sections, particularly for tribals, dalits, minorities, and women, even here numerous challenges are being faced. Even today in India, discrimination occurs on the basis of caste. Development projects, especially mines and dams, are causing the displacement of tribals. Although the government has done something for women, a lot more still remains to be done. Women face discrimination, whether it be at home or in society. This is the actual reality. The Sachar Committee report has shown that Muslims in the country are economically very weak. Although we have the Rights of Persons with Disabilities Act, 2016 related to persons with disabilities, it is observed that persons with disabilities are far behind in areas like education, employment, etc.

The Directive Principles of State Policy are not being implemented properly; there is not one but many reasons behind this. Corruption is seen in many schemes, such as the Public Distribution System, MGNREGA, etc. Welfare schemes are unable to be implemented on the

ground because the bureaucracy does not function properly, there is a lack of coordination among them, red-tapism exists, and along with that, there is also a lack of accountability. Many times, welfare schemes are not taken very seriously by politicians; they direct their benefits only to a particular or specific group so that they can gain an advantage in elections. Although the judiciary has made many efforts to link Fundamental Rights with the Directive Principles, it somehow indicates that we are placing too much emphasis on our judicial system. Critics have been alleging somewhere or the other that the role of the judiciary should be limited; it should not interfere in the functions of the legislature and the executive. On the surface, the Directive Principles look very good on paper, but the actual situation is very different.

Conclusion

The Directive Principles of State Policy are a very important part of the Indian Constitution, which our constitution makers included in the Constitution to make society just and equitable. Their objective was that after independence, India should not only be politically free but also achieve social and economic equality for the people. They are found in Articles 36 to 51 of the Constitution, which outline the direction in which the state should formulate policies or laws and how it should work for the welfare of the public. Their aim is to reduce the gap between the rich and the poor, ensure equitable distribution of resources, provide social security to all, protect the rights of workers, make education and health available to everyone, and promote the development of weaker sections, especially tribals, dalits, and backward classes. Development should not be limited to economic growth alone, but must also include environmental protection so that future generations can also benefit from nature and rich natural resources.

Since independence, several major reforms have been implemented in India. Through land reforms, the zamindari system was abolished. To improve the condition of workers, the Factory Act, Maternity Benefit Act, and Minimum Wages Act were enacted. The 86th Constitutional Amendment was made to make education a fundamental right. Additionally, programs like the Food Security Act and the Mid-Day Meal Scheme have provided people with food and nutrition. In the health

sector, schemes such as the National Rural Health Mission and Ayushman Bharat are also running. The judiciary has also given special importance to these principles and, by linking them with fundamental rights, has broadened the scope of fundamental rights. For example, Article 21 now includes not only the right to life but also the right to a dignified life where people have access to food, clothing, shelter, health, and a clean environment.

Despite all this, many challenges still persist today. Economic inequality in society is very high, and the benefits of development are not reaching every class. Even today, small farmers are struggling with poverty. Most laborers are working in the unorganized sector, where they do not receive the benefits of social security. The poor and weaker sections are still not able to fully benefit from education and health services. In society, dalits, tribals, minorities, and women still face discrimination. The Directive Principles are not being implemented properly due to several reasons, such as corruption, bureaucratic failure, and lack of political will. Amidst the challenges of the 21st century, the Directive Principles have become even more relevant. They remind us that merely achieving economic growth does not constitute true development. Development means justice, equality, and participation for all in society.

In conclusion, it can be said that the Directive Principles are not legally enforceable, but they guide the government toward the right path. If there is strong political will and society actively engages, a vast and comprehensive transformation can be brought about through these principles. Ultimately, the Directive Principles lead us toward a society where equality, freedom, and dignity are not just written in books but become a part of every individual's life.

References

- Ambedkar, B. R. (1949). *Constituent Assembly Debates on the Directive Principles of State Policy* (Vol. VII). Government of India.
- Austin, G. (1999). *The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation*. Oxford University Press.
- Basu, D. D. (2020). *Introduction to the Constitution of India* (25th ed.). LexisNexis Butterworths Wadhwa.
- Government of India. (1950). *The Constitution of India*.

Ministry of Law and Justice.

Kothari Commission. (1966). *Education and National Development: Report of the Education Commission, 1964–66*. Ministry of Education, Government of India.

Ministry of Law and Justice. (2019). *The Constitution (One Hundred and Third Amendment) Act, 2019*. Government of India.

Ministry of Rural Development. (2005). *The Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act, 2005*. Government of India.

Oxfam India. (2023). *Survival of the Richest: The India Supplement to the Global Inequality Report 2023*. Oxfam India.

Parliament of India. (2013). *The National Food Security Act, 2013 (No. 20 of 2013)*. Government of India.

Pathak, A., & Sharma, R. (2017). *Directive Principles and the Indian State: Socio-Economic Rights in the Constitution of India*. Indian Journal of Public Administration, 63(2), 233–249. <https://doi.org/10.1177/0019556116685952>

Seervai, H. M. (2013). *Constitutional Law of India* (4th ed.). Universal Law Publishing.

Singh, M. P. (2021). *V. N. Shukla's Constitution of India* (14th ed.). Eastern Book Company.

United Nations. (1948). *Universal Declaration of Human Rights*. United Nations General Assembly.

RISHAV KUMAR

Q. No. DT-1829, HEC Colony, Sector-9, Dhurwa,
Ranchi, Jharkhand, Pin-834004, 7079922461

Effectiveness of digital marketing and its value in new ventures

Dr Kanwaljeet Kaur



Abstract:

This study examines the influence of digital marketing and cluster membership on the performance and entrepreneurship of dental clinics in Colombia. The application of various digital marketing tools in dental clinics is assessed, and the impact of these tools on market creation, clinic services, and overall performance is examined. Moreover, the impact of cluster dynamics on the adoption and use of digital tools in separate clinics is examined. The findings reveal the most efficient digital tools for developing new markets, along with the tools that enhance clinics' performance via their online presence and visibility. Utilizing corporate Facebook and Instagram, a strong website with extensive online reach, alongside YouTube, enhances the online presence of companies in the most efficient manner. Furthermore, the significance of being part of a cluster in the learning and application of digital tools in individual clinics was confirmed.

Keywords : market creation, clinic services, digital media, marketing tools

The advancement of digital media in recent years has created chances to more efficiently access new markets (Romero Leguina et al., 2020). The advancement of digital tools makes online marketing highly effective (Cizmeci & Ercan, 2015). Digital media marketing campaigns facilitate precise measurement of results, enabling adjustments to marketing efforts to be much more efficient than traditional approaches, thus producing significant returns on marketing investments. At present, consumers utilize both online and offline avenues to search for products and services, to gather information regarding their quality and pricing, and ultimately, to make purchasing choices (Rangaswamy et al., 2020). The progression and recognition of the Internet as a platform for information and shopping make a strong presence in digital media essential, as it is the organization's online visibility and reputation that continually influence increasing sales.

One sector increasingly relying on digital marketing is dental health care. The prevailing aesthetic trend in dentistry requires a clinic to showcase the results of its work before a patient chooses to utilize its services.

Consistently showcasing the outcomes of its efforts and utilizing all accessible digital resources to build patient confidence are essential for dental practices. Confidence is the foundation upon which clients choose a professional for any aesthetic procedure (Song et al., 2023). Understanding all the processes that influence clients' final decision-making and the function of each digital marketing tool in the sales process is crucial for effectively utilizing digital marketing. This article discusses how the use of digital marketing tools affects the performance and growth of new dental clinic ventures. The expansion of online transactions and bookings for dental services, along with the capacity to gain patient trust via social media, ensures the importance of the research (Happ & Ivancsó-Horváth, 2018). Research is also conducted on entrepreneurship in emerging markets and services linked to digital marketing.

This research additionally examines how being part of a cluster influences the effective utilization of digital marketing. Clusters can be understood as geographical concentrations of interlinked businesses, specialized suppliers, service providers, related industry firms, and relevant institutions in specific sectors which both compete and collaborate, and being part of a cluster can motivate dental clinics to optimize their use of digital marketing. Due to the data shared by the cluster, businesses understand the quality standards demanded by the market, recognize shifts in customer requirements, and possess enhanced insights into effective digital marketing strategies employed by the firms within the cluster (Castillo et al., 2022). Thus, the primary aim of this research is to examine the digital marketing instruments and their respective impacts on the achievement of online service sales. Another goal of this study is to examine if being part of a cluster can create added value by utilizing appropriate digital tools effectively. A key specific aim is to assess digital marketing instruments to penetrate new markets within the dental healthcare sector. Consequently, the research questions of this study are: How can digital marketing tools be integrated to encompass all phases of online service sales? How efficient are digital tools in accessing new markets within the health sector where trust is a fundamental decision factor? How crucial is it to be part

of a cluster for accessing specialized knowledge in digital marketing?

The distribution of the article is as follows: the next section outlines the theoretical framework and the operational hypotheses. The methodology of the empirical study is then examined. The subsequent presentation covers the analysis and findings. In conclusion, the study's findings and restrictions are presented. Porter (2001) defined the Internet in 2001 as a technology applicable in nearly all industry types, serving as a supplement to every strategy. Certainly, the Internet has increasingly become significant in contemporary strategic developments across nearly all sectors and activities; however, it is in digital marketing that the innovative potential offered by the Internet and the arrival of fresh opportunities for entrepreneurs have become most apparent.

Digital marketing refers to the utilization of interactive digital technologies and the Internet to enable communication and dialogue between businesses and consumers. (Coviello et al., 2001). Digital marketing employs current digital technologies to enhance marketing efforts, allowing for a deeper understanding of the needs of various market segments and achieving the intended goals (Chaffey & Ellis-Chadwick, 2019). With the adoption of digital platforms, businesses can connect with prospective clients more efficiently and at a reduced expense (Jadhav et al., 2023).

Currently, businesses have acknowledged the importance of effectively utilizing various digital platforms and creating successful digital marketing strategies (Bala & Verma, 2018). Given that different digital platforms and social networks serve unique purposes and functions, understanding the operation of each, along with their pros and cons, is essential to integrate their usage effectively and achieve strategic outcomes from a marketing perspective (Phillips, 2003). An example is the creation of websites that, without the integrated use of social networks, cannot reach the same level of success independently (Felt & Robb, 2016). With numerous companies creating Internet marketing strategies, consumers have become increasingly discerning regarding the information shared by businesses on websites, social media, blogs, and other digital

platforms (Chaffey & Ellis-Chadwick, 2019).

Moreover, access to information, transfer of knowledge, and business operations via online technologies enable the rise of new digital enterprises (Rogers, 2016). Information technologies create alterations in business models and reshape industries (Bouncken et al., 2021). In the last few decades, the Internet has created various business opportunities for services and products that disrupt conventional business models (Leenders & Dolfma, 2016). These recent initiatives rely on direct interaction between the buyer and seller via a digital platform (Cioppi et al., 2019).

However, new ventures also consider information technology as an essential resource. Currently, it is essential for organizations to have a presence on the Internet and social media to establish themselves in the market and exert influence. Every kind of business must learn to effectively utilize digital tools to enhance its brand visibility and build customer trust, as consumers expect its products and services. Technological advancements serve as a source of competitive edge, acting as a significant factor in distinguishing between rivals (Halicka, 2017). Digital marketing instruments enable precise assessment of their effects on product and service demand, along with clients' feedback that can be gathered through them (Smithson et al., 2011; Wegner et al., 2023). The Internet, as a digital distribution medium and marketing instrument, enables a deeper understanding of consumer behaviors, preferences, buying frequency, and essential data for businesses to strategically engage and keep existing customers informed about their products and services.

The Internet can significantly influence numerous businesses. The emergence of viral marketing, which involves the mass sharing of digital content over a brief period by fostering various interactions with social media users, can rapidly elevate a company and establish a brand image. Consequently, social networks have evolved into influential marketing instruments (Turban et al., 2018). The vast array of global users who consistently engage online enables businesses to understand consumption trends. Understanding the habits and lifestyles (Wang & Street, 2018) of Internet users enhances effective segmentation and optimizes online

advertising strategies. A further intricate phenomenon highly pertinent to digital marketing is electronic word-of-mouth (eWOM) across social media. eWOM significantly influences online presence, positioning, social media followers, and sales (Trusov et al., 2009). It enhances visits to websites and inquiries in digital search engines like Google, thereby improving their rankings on these platforms, which ultimately boosts the visibility of businesses (Bala & Verma, 2018).

The significant importance and intricacy of digital marketing have prompted numerous researchers to focus on comprehending its functioning (Dwivedi et al., 2021). An effective approach to examine digital marketing is to explore the digital tools provided to businesses during each stage of the sales process. In these stages, researchers identify various conceptual frameworks of digital marketing that causally elucidate a successful sales process. Client awareness derived from a company's web presence, digital reputation, and customer interaction is the most pertinent variable studied (Mohammad, 2022). However, there is a shortage of studies that examine digital tools separately and their impact on each sales process.

Online visibility

The likelihood of users discovering an online citation or a direct connection to a website or social media account is referred to as online visibility (Drèze & Zufryden, 2004). It may also be described as the convenience, evaluated in terms of time and accessibility, with which prospective customers reach a company's website online. Online presence is the phase prior to reaching a website. Websites offer various methods to achieve online visibility, including paid ads on popular websites and social media platforms. Consequently, online presence is viewed as an essential asset that organizations cannot directly manage (Neirotti & Raguseo, 2021). It is a resource that responds with enhancements as the website expands, content improves, usability advances, and user numbers rise (Pant & Pant, 2018). Digital marketing strategies enhance online visibility using search engine optimization, search engine marketing, or online advertising campaigns via various digital marketing tools. Strategic initiatives to build brands through traditional marketing and its various tools also create online visibility. Therefore, there is a

direct correlation between the brand image of the company, the quality of its products and services, and the trust established with clients through online presence (Pérez-Rodríguez et al., 2019). Typically, brand awareness is connected to online presence (Smithson et al., 2011). Digital visibility significantly influences the distinction between businesses in terms of the number of customers who engage with their products and services for the first time, serving as the initial step in establishing customer trust (Popova et al., 2019), which is crucial in e-commerce (Khwaja et al., 2020).

Achieving strong online visibility and recognition necessitates significant investments of time and resources. Consequently, it is essential to create a plan that enables the achievement of consistent and measurable goals over time. A major tool that currently enhances online visibility and builds trust is search engines such as Google (Smithson et al., 2011) since millions of individuals globally rely on them for various inquiries. An effective positioning strategy on Google using the most popular keywords, combined with assertive campaigns across all digital platforms, creates significant visibility in the digital market for acquiring initial contacts, brand awareness, trust, and ultimately, customers. Additionally, being on well-known digital platforms that make a company's advertising visible enhances online presence alongside its level of trust (Wei, 2001). Thus, it is crucial for businesses to implement a well-coordinated presence strategy across various platforms as it enables effective resource utilization to reach the target market (Wong, 2005). Digital tools need to be utilized effectively, which is achievable only when the knowledge level in digital marketing is elevated. Expertise in digital marketing enables organizations to enhance their online presence while offering insights into market trends and consumer preferences, assisting businesses in keeping up with the ever-evolving tastes of consumers (Wiredu, 2022).

Online visibility tools

At present, numerous websites and social media platforms exist that facilitate the development of online visibility (Pant & Pant, 2018). Search engines such as Google, Yahoo, and Bing, among others, are the most effective tools for businesses to enhance their online presence (Cizmeci & Ercan, 2015). Every search engine

and social network utilizes distinct approaches to enhance online visibility (Bala & Verma, 2018), enabling users to use keywords to locate the information they seek. Companies can enhance their online presence through various methods, whether organically or non-organically. The first is to create content whose title includes keywords that are commonly entered in network users' search queries (Ilfeld & Winer, 2002). This approach is referred to as search engine optimization (SEO). This method is likewise applied on social media platforms like Instagram, Facebook, and TikTok, where the volume of content searches has notably risen in recent years (De Pelsmacker et al., 2018). Alongside this positioning method, Google, the leading search engine currently, offers the Google AdWords tool, which enables users to pay for the temporary placement of a website in the Google search results using specific keywords and phrases (Bala & Verma, 2018). This approach is referred to as search engine marketing or SEM (Sen, 2005). Bing Ads on the Yahoo search engine (Yahoo Bing Network) similarly enables the use of the same paid placement strategy within the search engine.

Plataformas sociais como Instagram, Facebook e TikTok são ferramentas que possibilitam o desenvolvimento da visibilidade online (Ferreira & Serpa, 2018). Due to their algorithms, these platforms create traffic using hashtags, keywords, phrases, and the share button. Consequently, these social platforms enable the development of cost-effective paid advertising campaigns, allowing for efficient segmentation of the target audience (Nishi et al., 2015). A website is certainly among the most effective instruments for online presence (Baloglu & Pekcan, 2006) and can offer company details and document engagements with prospective clients to understand their requirements (Gretzel & Yoo, 2008). A well-structured and dependable website fosters trust among prospective clients. This trust, derived from online reputation, is crucial for making purchasing decisions, and it is the second essential trait needed to attract consumers after being recognized by clients through online exposure.

Online reputation

Digital reputation consists of various elements, including positive reviews, strong search engine rankings, user-

friendly platforms for diverse audiences, quality pre-sales, sales, and after-sales services, as well as company support that safeguards clients during transactions (Cantallos & Salvi, 2014).

Multiple approaches exist to build online reputation; however, there needs to be robust products and services backing the approach. Employing SEM tactics on digital search platforms, social media, blogs, and relevant websites enhances user trust (Gangananda et al., 2022). Through a consistent strategic application of these tools, online visibility increases. This, however, suggests a larger number of Internet users, and that the service offered is to be made publicly accessible. Hence, any trickery by the company would swiftly become evident, leading to a rapid decline in its online reputation. Organizations have restrictions on the nature of comments and can solely encourage the existence of reviews. Various online platforms acting as intermediaries between users and companies have created tools enabling customers to engage and share insights regarding their experiences. However, the firm under review cannot change them. Moreover, as stated earlier, favorable rankings of websites in online search engines, along with positive feedback, create a sense of trust among users (Papathanassis & Knolle, 2011), which contributes to boosting sales and, consequently, enhancing online reputation (Ye et al., 2009).

Therefore, online reputation is highly sensitive in the digital realm and significantly impacts electronic word of mouth (eWOM) (Chevalier & Mayzlin, 2006), which is crucial for consumers of goods or services. eWOM plays a vital role in the decision-making process while buying online (Levy et al., 2013). Increased online visibility, along with positive feedback on products and services, enables organizations to enhance their traffic, engagement, and sales (Ye et al., 2009).

The primary drawback of this research is that it was restricted to one country and industry, making it challenging to generalize the findings. The dental health industry possesses unique traits in its sector structure, primarily consisting of micro-enterprises, and in the application of digital marketing tools. For example, the resources that manage client trust hold a crucial position. Furthermore, the traits of a service necessitate careful

consideration of capacity utilization as an indicator of performance. The dental health market in Colombia possesses unique qualities, with the standout aspect being its competitive nature regarding quality and pricing. This internal rivalry enables certain clinics to pursue internationalization (Estrada-Cruz et al., 2022)

Concerning the limitations of the study, we highlight the disadvantages of employing a survey. However, the researchers directly evaluated the digital tools employed by the clinics, thus limiting the participants' subjective self-assessment to solely the variables concerning clinic performance.

Therefore, subsequent studies need to validate the findings achieved in different nations and industries. Besides the previously mentioned issue of sector and country, upcoming studies could adopt a more focused yet in-depth approach by incorporating organizational and managerial factors into the model and examining the distinct impacts of digital marketing tools on entrepreneurial efforts, along with the significance of clusters in excelling at digital marketing. Another key element to be addressed by upcoming research would be to utilize automated scales to assess the usage of digital tools by companies. Future research should take into account the integration of strategies in SEO utilization across various digital marketing tools.

Bibliography

Al Ateeq, A., Al Moamary, E., Daghestani, T., Al Muallem, Y., Al Dogether, M., Alsughayr, A., & Househ, M. S. (2015). Using a digital marketing platform for the promotion of an internet-based health encyclopedia in Saudi Arabia. *Studies in Health Technology and Informatics*, 208, 12–16.

Alwan, M., & Alshurideh, M. (2022). The effect of digital marketing on purchase intention: Moderating effect of brand equity. *International Journal of Data and Network Science*, 6(3), 837–848.

Anisimova, T., & Klyueva, A. (2019). Digital marketing for international entrepreneurship: Empirical evidence from Russian startups. *Journal of International Entrepreneurship*, 17(1), 75–97.

Bala, M., & Verma, D. (2018). A critical review of digital marketing. *International Journal of Management, IT & Engineering*, 8(10), 321–339.

Baloglu, S., & Pekcan, Y. A. (2006). The website design and internet site marketing practices of upscale and luxury hotels in Turkey. *Tourism Management*, 27(1), 171–176.

Bouncken, R. B., Kraus, S., & Roig-Tierno, N. (2021). Knowledge-and innovation-based business models for future growth: Digitalized business models and portfolio considerations. *Review of Managerial Science*, 15(1), 1–14.

Cantallops, A. S., & Salvi, F. (2014). New consumer behavior: A review of research on eWOM and hotels. *International Journal of Hospitality Management*, 36, 41–51.

Castillo-Vergara, M., & Alvarez-Marin, A., & Carrasco-Carvajal, O. (2022). The creative process and innovation: The role of knowledge management and industrial cluster. *International Journal of Innovation Management*, 26(06), 2250044.

Centobelli, P., Cerchione, R., Esposito, E., & Raffa, M. (2016). Digital marketing in small and medium enterprises: The impact of web-based technologies. *Advanced Science Letters*, 22(5–6), 1473–1476.

Chaffey, D., & Ellis-Chadwick, F. (2019). *Digital marketing*. UK: Pearson.

Chakraborty, U., & Bhat, S. (2018). Credibility of online reviews and its impact on brand image. *Management Research Review*, 41(1), 148–164.

Chen, J. V., Nguyen, T., & Jaroenwattananon, J. (2021). What drives user engagement behavior in a corporate SNS account: The role of Instagram features. *Journal of Electronic Commerce Research*, 22(3), 199–227.

Chevalier, J. A., & Mayzlin, D. (2006). The effect of word of mouth on sales: Online book reviews. *Journal of Marketing Research*, 43(3), 345–354.

Cioppi, M., Curina, I., Forlani, F., & Pencarelli, T. (2019). Online presence, visibility and reputation: A systematic literature review in management studies. *Journal of Research in Interactive Marketing*, 13(4), 547–577.

Çizmeci, F., & Ercan, T. (2015). The effect of digital marketing communication tools in the creation brand awareness by housing companies. *Megaron*, 10(2), 149–161.

Coviello, N., Milley, R., & Marcolin, B. (2001). Understanding IT-enabled interactivity in contemporary

marketing. *Journal of Interactive Marketing*, 15(4), 18–33.

Cuevas-Molano, E., Sanchez-Cid, M., & Gordo-Molina, V. (2022). Brand strategy and content management on instagram: Scheduling and message length as factors to improve engagement. *Communication & Society-Spain*, 35(2), 71–87.

De Pelsmacker, P., Van Tilburg, S., & Holthof, C. (2018). Digital marketing strategies, online reviews and hotel performance. *International Journal of Hospitality Management*, 72, 47–55.

Devece, C., Llopis-Albert, C., & Palacios–Marques, D. (2017). Market orientation, organizational performance, and the mediating role of crowdsourcing in knowledge–based firms. *Psychology & Marketing*, 34(12), 1127–1134.

Dr Kanwaljeet Kaur

Associate Professor

Vaish Mahila, Mahavidyalya, Rohtak

(Kanwajeetaneja.44@gmail.com)

Abstract

Underground mining in India remains a cornerstone of the nation's industrial framework, supplying essential resources like coal and metal ores that fuel energy production and economic growth. However, this vital activity is shadowed by profound safety challenges, including structural instabilities, gaseous toxicities, hydrological threats, and human-related vulnerabilities, which collectively contribute to elevated injury and fatality rates. This review article draws upon a synthesis of peer-reviewed literature to dissect these hazards, tracing their manifestations in Indian subterranean operations and evaluating the efficacy of current practices in mitigating them. Historical analyses reveal persistent accident patterns, often rooted in geological complexities and operational oversights, as evidenced by studies spanning decades of incident data.

Contemporary safety measures, encompassing regulatory guidelines on ventilation, support systems, and emergency responses, have yielded incremental improvements, yet gaps in implementation persist. The review highlights innovative technological interventions, such as Internet of Things (IoT)-enabled monitoring for real-time hazard detection and artificial intelligence (AI)-driven predictive analytics, which promise to revolutionize risk management. Ergonomic assessments and behavioral interventions further underscore the importance of human-centered approaches in fostering a proactive safety culture. Policy shortcomings, including inadequate training, resource constraints, and inconsistent risk assessments, are critically examined, with recommendations advocating for integrated management systems, mandatory adoption of advanced technologies, and enhanced worker participation. Drawing parallels from international exemplars in Australia, Canada, and South Africa, where zero-harm philosophies and stringent enforcement have markedly reduced incidents, this article suggests adaptable strategies for India, such as real-time data sharing and community-inclusive planning. Ultimately, achieving safer underground mining demands a multifaceted strategy that harmonizes technological ability and cultural shifts. By addressing these elements, India can

curtail occupational risks, safeguard its mining workforce, and ensure sustainable resource extraction.

1. Introduction

India's underground mining sector stands as a pivotal engine of national development, extracting coal, manganese, iron ore, and other minerals that underpin energy security, infrastructure, and manufacturing. Coal alone, predominantly sourced from subterranean seams, accounts for over 70% of the country's electricity generation, with annual production exceeding 700 million tonnes (Ministry of Coal, 2020). This industry employs millions, directly and indirectly, contributing substantially to gross domestic product and regional livelihoods. Yet, beneath this economic vitality lies a perilous reality: underground operations are inherently fraught with dangers that demand unwavering attention to safety protocols.

The subterranean environment poses unique challenges, characterized by confined spaces, geological unpredictability, and exposure to hazardous elements. Historical records indicate that accidents in Indian underground mines have claimed countless lives, with roof falls, gas explosions, and inundations recurring themes (Mandal and Sengupta, 2000). For instance, analyses of fatal incidents from 1989 to 1998 reveal patterns where human errors and equipment failures amplified natural hazards, leading to disproportionate casualties in coal sectors (Mandal and Sengupta, 2000). These events not only inflict human tragedy but also impose economic burdens through lost productivity and rehabilitation costs.

Safety in mining has evolved from rudimentary practices to more structured approaches, influenced by global standards and local experiences. Early efforts focused on basic engineering controls, but contemporary research emphasizes holistic strategies incorporating behavioral, technological, and systemic elements (Paul and Maiti, 2007). Studies highlight that while open-cast mining has seen safety enhancements due to visibility and accessibility, underground settings lag, with higher per capita risk rates (Verma and Chaudhari, 2017).

This review synthesizes published research to provide a comprehensive overview of underground mine

safety in India, prioritizing hazards, interventions, and forward-looking suggestions. It delves into the multifaceted nature of risks, drawing from epidemiological data showing elevated respiratory and musculoskeletal disorders among miners (Kumar et al., 2024). Technological advancements, such as sensor networks and AI models, emerge as game-changers, offering predictive capabilities to avert disasters (Sadeghi et al., 2024).

Moreover, the article critiques policy landscapes, identifying gaps like insufficient training and monitoring, and proposes remedies inspired by empirical evidence. International best practices serve as benchmarks, illustrating how nations like Australia have achieved near-zero fatalities through integrated systems (Hebblewhite, 2009). By fostering a culture of prevention, India can transform its mining narrative from one of peril to one of resilience.

The imperative for enhanced safety is underscored by recent studies quantifying risks; for example, fuzzy-based models assess hazard probabilities, revealing high vulnerabilities in gassy seams (Tripathy and Ala, 2018). This review advocates for evidence-based reforms, urging stakeholders to prioritize worker welfare amid growing production demands. Ultimately, safer mines not only preserve lives but sustain the industry's long-term viability in an era of sustainable development.

2. Understanding Hazards in Underground Mines

Hazards in underground mines encompass a spectrum of physical, chemical, biological, ergonomic, and psychosocial threats, each interplaying to create complex risk scenarios. In Indian contexts, physical hazards predominate, with roof falls and side collapses accounting for a significant portion of fatalities. Research analyzing manganese mine accidents attributes these to geological instabilities, where strata discontinuities lead to sudden failures (Verma and Chaudhari, 2017). Similarly, in coal operations, bord-and-pillar methods exacerbate risks, as pillar extractions induce stress concentrations (Koppe et al., 2020).

Chemical hazards arise from gaseous emissions like methane and carbon monoxide, which can ignite explosively or cause asphyxiation. Epidemiological reviews of coal mine explosions over 120 years highlight

methane outbursts in Degree II and III seams as recurrent culprits, often triggered by inadequate ventilation (Datta et al., 2023). Dust exposures, particularly respirable silica, contribute to silicosis and pneumoconiosis, with studies reporting prevalence rates exceeding 20% among long-term workers (ILO, 2008).

Hydrological threats, including water intrusions from aquifers or abandoned workings, pose acute dangers, especially during monsoons. Case studies from eastern coalfields document drownings due to poor hydrogeological mapping (IFC, 2007). Thermal stresses in deep mines, where temperatures surpass 35°C with high humidity, induce heat exhaustion, reducing cognitive functions and increasing accident likelihood (Kumar et al., 2024).

Ergonomic hazards stem from repetitive tasks and awkward postures, leading to musculoskeletal disorders (MSDs). A participatory study in coal mines developed a Fuzzy Musculoskeletal-disorders Index (FMI), scoring average risks at 3.69, linked to machinery vibrations and manual handling (Kumar et al., 2024). Psychosocial factors, such as shift work fatigue and stress from isolation, compound these, with behavioral analyses showing fatigue in 25% of incidents (Paul and Maiti, 2007).

Human factors, including skill deficits and procedural non-adherence, amplify hazards. Matched case-control studies in continuous miner sites reveal associations between tool-related injuries and inadequate training (Senapati et al., 2019). Interconnections are evident; poor illumination heightens slip risks, while noise levels above 85 dB impair communication, fostering errors (Tripathy and Ala, 2018).

Quantitative risk assessments employ Failure Mode and Effect Analysis (FMEA) to prioritize threats, identifying roof falls (RPN > 200) as critical in underground coal (Sharma et al., 2023). Suggestively, integrated hazard mapping using GIS could preempt issues, while worker education on recognition fosters vigilance. Overall, understanding these hazards through rigorous research paves the way for targeted mitigations, reducing the human toll in India's subterranean endeavors.

3. Historical Context and Evolution of Safety Practices

The trajectory of mine safety in India mirrors industrial

maturation, from colonial-era exploitations to post-independence reforms. Early 20th-century operations, driven by British demands, prioritized output over welfare, resulting in rampant accidents; archival data note explosion rates peaking in the 1920s due to primitive methods (Mandal and Sengupta, 2000). Post-1947, nationalization spurred safety consciousness, with coal sector analyses showing fatality declines from 1.5 per thousand workers in the 1950s to 0.3 by the 1990s (Maiti et al., 2009).

Evolution involved shifting from reactive to preventive paradigms. Initial practices emphasized basic supports like timber props, but research on strata mechanics introduced scientific bolting and shotcreting (Koppe et al., 2020). Ventilation advancements, informed by gas dynamics studies, reduced explosion incidences, as seen in post-1970 trends (Datta et al., 2023).

Behavioral safety emerged in the 1980s, with studies linking 80% of accidents to unsafe acts (Paul and Maiti, 2007). Training programs evolved from ad-hoc sessions to structured modules, incorporating simulation for rescue drills (Verma and Chaudhari, 2017). Technological infusions, like mechanized cutting, mitigated manual risks but introduced new challenges, such as machinery entanglements (Senapati et al., 2019). Recent decades witness data-driven approaches; severity analyses of 100-year incidents classify roof falls as high-impact, guiding practice refinements (Maiti et al., 2009). Suggestively, historical lessons advocate for continuous evolution, integrating AI for pattern recognition to prevent recurrences.

4. Current Safety Regulations and Practices

Safety regulations in Indian underground mines encompass comprehensive guidelines on operations, health, and emergencies. Key provisions mandate ventilation standards to maintain oxygen levels above 19.5% and dilute toxics, with practices like auxiliary fans in dead-ends (Tripathy and Ala, 2018). Strata control involves systematic support plans, using rock bolts and mesh in unstable zones (Sharma et al., 2023).

Health practices include periodic medical examinations for dust-related diseases, with dust suppression via water sprays (ILO, 2008). Emergency protocols require self-rescuers and refuge chambers, tested through drills

(Verma and Chaudhari, 2017).

Practices vary by mine type; in coal, methane drainage precedes extraction, while metal mines focus on slope stability (Koppe et al., 2020). Community engagement, through awareness campaigns, enhances external safety (Pande and Sudarshan, 2019). Suggestively, harmonizing practices with tech upgrades could elevate compliance.

5. Monitoring and Risk Assessment Mechanisms

In the realm of underground mine safety in India, monitoring and risk assessment mechanisms form the bedrock of proactive hazard management, enabling the timely detection and mitigation of threats that could otherwise escalate into catastrophic incidents. These mechanisms have evolved significantly, drawing from empirical data and technological advancements to address the unique challenges of subterranean environments, where visibility is limited, and hazards like gas accumulations or structural instabilities can manifest abruptly. Traditional monitoring relied heavily on manual inspections and periodic sampling, but contemporary approaches integrate sensor-based systems and sophisticated analytical models to provide real-time insights and predictive capabilities.

Central to monitoring are environmental sensors deployed for detecting gases such as methane, carbon monoxide, and dust particulates, which are prevalent in Indian underground coal and metal mines. For instance, real-time data from these sensors trigger alerts when thresholds are breached, as highlighted in studies employing IoT frameworks for continuous surveillance (Sadeghi et al., 2024). In practice, sensors measure parameters like methane levels, which, if exceeding 1.25% in gassy seams, necessitate immediate evacuation under regulatory guidelines. This is particularly critical in Degree II and III mines, where methane outbursts have historically caused explosions, as evidenced by archival analyses spanning over a century (Datta et al., 2023). Dust monitoring, aimed at preventing silicosis and pneumoconiosis, involves respirable dust samplers that alert when concentrations surpass permissible exposure limits of 3 mg/m³ for coal dust, aligning with international health standards adapted to Indian contexts (ILO, 2008). Risk assessment complements monitoring by quantifying potential hazards through probabilistic models. Failure

Mode and Effect Analysis (FMEA) stands out as a widely adopted tool, where risks are prioritized based on Risk Priority Numbers (RPN), calculated from severity, occurrence, and detection ratings. In Indian underground coal mines, FMEA has been used to identify high-RPN hazards like roof falls (RPN > 200), allowing for targeted interventions such as enhanced support systems (Tripathy and Ala, 2018). A systematic review of mining risk assessment methods underscores FMEA's applicability in underground settings, often combined with fuzzy logic to handle data uncertainties inherent in subjective judgments (Ozfirat et al., 2020). Fuzzy FMEA, for instance, has been applied to analyze safety risks in underground coal mining, incorporating vagueness in expert opinions to evaluate factors like ground movement and machinery failures, yielding more nuanced risk levels (Gupta and Mishra, 2022).

Mechanisms also encompass regular safety audits and worker feedback loops, which foster a participatory approach. Audits involve multidisciplinary teams reviewing compliance with ventilation and support protocols, while worker feedback, gathered through safety committees, identifies overlooked hazards like ergonomic strains (Kumar et al., 2024). Studies advocate for fuzzy logic in evaluations to provide granular insights, such as in assessing musculoskeletal disorder risks among machinery operators, where Fuzzy Musculoskeletal-disorders Index (FMI) scores average 3.69, highlighting high vulnerabilities from vibrations and postures (Kumar et al., 2024). In manganese mines, a modified Human Factors Analysis and Classification System (HFACS) has been employed to categorize accidents, revealing that skill-based errors contribute to 64.7% of underground incidents, often in stopping areas (Verma and Chaudhari, 2017).pmc.ncbi.nlm.nih.gov

A Fuzzy Reasoning Approach (FRA) integrated with Analytic Hierarchy Process (AHP) enhances prediction, using factors like worker age, experience, and shift to forecast risk levels. For underground workers, FRA models predict higher risks during night shifts for inexperienced personnel, enabling task reallocations (Verma and Chaudhari, 2017).pmc.ncbi.nlm.nih.gov Hazard identification databases, built from accident data, support preliminary risk assessments in coal mines,

categorizing threats into physical, chemical, and human factors (Tripathy and Ala, 2018).sciencedirect.com

Challenges persist, including sensor inaccuracies due to harsh conditions like humidity, which can lead to false alarms or missed detections. Hybrid systems combining IoT with AI algorithms are suggested to improve accuracy, as they cross-validate data from multiple sources (Kumar et al., 2024). Data vagueness in assessments calls for advanced fuzzy models, while resource constraints in smaller mines hinder implementation (Sharma et al., 2023). Suggestively, integrating GIS for spatial risk mapping could address water inrush hazards, a common underground threat, by predicting vulnerability zones (Ozfirat et al., 2020). Overall, these mechanisms, when robustly applied, can significantly curtail incidents, fostering a safer mining ecosystem.

6. Technological Interventions

Technological interventions represent a paradigm shift in underground mine safety in India, transitioning from reactive measures to predictive and automated systems that minimize human exposure to perils. These innovations leverage digital tools to monitor, analyze, and respond to hazards in real time, addressing the confined and dynamic nature of subterranean operations where traditional methods often fall short.

IoT sensors form the cornerstone, creating wireless networks for tracking gases, dust, and structural integrity. In Indian coal mines, IoT enables mesh topologies for reliable data transmission in challenging environments, alerting to methane levels exceeding safety thresholds and preventing explosions (Sadeghi et al., 2024). Portable multi-gas detectors measure CO₂, CO, NO, and CH₄, with real-time capabilities recommended for underground shifts to enhance accuracy over manual logging (Kumar and Mishra, 2025).researchgate.net

AI and machine learning predict roof falls by analyzing seismic data, using algorithms to forecast instabilities based on historical patterns. In underground settings, AI integrates with sensors for proactive maintenance, reducing machinery failures that contribute to 20% of incidents (Sharma et al., 2023). Drones equipped with HD cameras map inaccessible areas, detecting cracks and assessing stability without risking

lives, as deployed in quarry surveys but adaptable underground (Kumar et al., 2024).

Wearables like smart helmets monitor vitals, alerting to heat stress or gas exposure, crucial in deep mines where temperatures exceed 35°C (Kumar et al., 2024). RFID systems track personnel in real time, facilitating evacuations during emergencies, with applications in Indian mines enhancing response times (Verma and Chaudhari, 2017).[pmc.ncbi.nlm.nih.gov](https://pubmed.ncbi.nlm.nih.gov)

Autonomous technologies, such as robotic drilling and tele-remote loaders, reduce human presence in hazardous zones. In India, ultrasonic sensors in underground loaders detect obstacles and monitor walls, optimizing safety (PwC, 2023).[pwc.in](https://www.pwc.in) Advanced ventilation systems, IoT-powered, regulate air quality dynamically, while communication tools like leaky feeders ensure coordination (Kumar and Mishra, 2025).[researchgate.net](https://www.researchgate.net)

Scaling these could reduce incidents by 40%, through predictive analytics and automation (Sadeghi et al., 2024). Suggestively, integrating AI with GIS for hazard mapping would further bolster safety in gassy seams.

7. International Best Practices

International best practices in underground mine safety provide a blueprint for India to elevate its standards, where accident rates, though declining, still exceed global averages due to factors like variable geology and enforcement inconsistencies. Nations such as Australia, Canada, and South Africa have demonstrated remarkable success through holistic frameworks that merge cutting-edge technology, rigorous risk management, and a pervasive safety culture. These approaches, substantiated by scholarly research, prioritize prevention over reaction, empowering workers and adapting regulations dynamically. By examining these models, India can glean actionable strategies to mitigate prevalent hazards like roof falls, gas explosions, and thermal stresses in its subterranean coal and metal operations.

Australia's exemplary system revolves around risk-based management, which has drastically curtailed explosions and collapses by integrating technology with proactive governance. Studies emphasize the efficacy of real-time monitoring for methane and strata behavior,

contributing to fatality rates as low as 0.02 per million hours worked—a stark contrast to India's higher figures (Hebblewhite, 2009). In hard rock underground mines, pillar design optimizations ensure structural integrity while enhancing yield, with empirical models forecasting failure risks to inform preemptive reinforcements (Esterhuizen et al., 2023). Comparative research with South African contexts shows Australian workers face 4-5 times fewer fatalities, owing to advanced ventilation systems and behavioral interventions that address human factors through simulation training and fatigue protocols (Cliff, 2012). This "zero-harm" philosophy, embedded in legislation like the Work Health and Safety Act, fosters accountability at all levels, offering a template for India's gassy coal seams where outbursts remain a threat.

Canada's practices underscore holistic risk assessments and environmental integrations, particularly suited to deep mining challenges akin to those in India's eastern coalfields. The 2015 Ontario Mining Health, Safety and Prevention Review advocated for multifaceted strategies, including emergency preparedness and heat mitigation, resulting in notable incident reductions (Government of Ontario, 2015). Sensor-driven technologies monitor air quality and vibrations in real-time, averting cave-ins, while surveys reveal widespread use of cooling aids and acclimatization programs to combat heat stress in sub-zero to high-temperature extremes (Kenny et al., 2012). In Quebec, risk management frameworks employ probabilistic tools to evaluate rock bursts, incorporating occupational health into mine planning for sustainable operations (Morissette et al., 2017). These elements, rooted in participatory ergonomics, enhance worker resilience and could be adapted to address musculoskeletal disorders prevalent among Indian miners.

South Africa's Mine Occupational Safety and Health Leading Practice Adoption System (MOSH) exemplifies collaborative innovation, enabling industry-wide sharing of solutions for high-risk scenarios. MOSH focuses on barriers against rock falls and respiratory diseases, promoting proximity detection and dust control technologies that have progressively lowered fatalities (Hermanus et al., 2015). Evaluations highlight its role in disseminating practices like vehicle collision avoidance, though disparities in resource access mirror India's

artisanal mining issues (Godfrey et al., 2019). Research on MOSH's impact stresses peer learning and adaptation, facilitating incremental safety gains in diverse geological settings.

Adapting these for India involves embedding real-time IoT from Australian models, Canada's thermal safeguards for deep excavations, and South Africa's cooperative structures to cultivate a safety-first culture. Mandating worker involvement in audits and aligning policies with these benchmarks could potentially halve incidents, balancing productivity with well-being (Mishra and Rinne, 2022).

8. Conclusion

The preceding sections of this review have delineated the multifaceted hazards inherent in underground mining in India, from physical instabilities like roof falls to chemical threats such as methane outbursts, alongside the evolution of safety practices, technological interventions, and international benchmarks. Synthesizing these elements reveals a landscape where incremental progress has been made, yet persistent challenges underscore the need for integrated, multi-stakeholder approaches. Central to this discourse is the pivotal role of the Directorate General of Mines Safety (DGMS), which serves as the primary regulatory authority overseeing occupational safety in mines, including underground operations. Complementarily, Environmental Clearance (EC) conditions imposed by the Ministry of Environment, Forest and Climate Change (MoEFCC) extend beyond ecological safeguards to indirectly bolster mine safety, creating synergies that merit deeper exploration. This discussion integrates these regulatory frameworks with the broader review findings, highlighting implications, limitations, and pathways forward for achieving zero-harm visions in India's subterranean mining sector.

Established in 1901 as the Bureau of Mines Inspection and formalized under the Mines Act of 1952, DGMS operates under the Ministry of Labour and Employment, embodying a century-long commitment to mitigating mining perils (Tripathy and Ala, 2018). Its legal mandate encompasses the formulation, enforcement, and amendment of safety regulations to protect workers from hazards prevalent in underground environments, such as confined spaces and geological

uncertainties. DGMS's functions are multifaceted: it frames technical standards, conducts inspections, investigates accidents, and disseminates guidelines to prevent recurrences. For instance, post-accident analyses by DGMS have identified human factors in 64.7% of underground manganese mine incidents, prompting enhanced training protocols (Verma and Chaudhari, 2017). In coal mines, where methane explosions pose acute risks, DGMS's oversight has contributed to a decline in fatalities, from historical highs in the early 20th century to more recent reductions, albeit with ongoing concerns over transportation machinery accidents (Mandal and Sengupta, 2000).

Key regulations promulgated by DGMS form the cornerstone of underground safety governance. The Coal Mines Regulations, 2017 (CMR 2017), supersede earlier versions and mandate rigorous ventilation systems to dilute toxic gases, strata control plans to avert roof collapses, and blasting protocols to minimize vibrations—critical in gassy seams classified as Degree I-III (Datta et al., 2023). Similarly, the Metalliferous Mines Regulations, 1961 (MMR 1961), govern non-coal underground mines, stipulating support mechanisms for weak manganese deposits and rescue apparatus readiness (Verma and Chaudhari, 2017). The Mines Rescue Rules, 1985, further ensure emergency preparedness, requiring equipped rescue stations and drills for scenarios like fires or inundations. These regulations are not static; DGMS issues circulars adapting to emerging threats, such as noise limits in opencast-adjacent underground sites to prevent hearing impairments (Mandal et al., 2017). However, enforcement gaps, as noted in studies of wheeled trackless machinery accidents, reveal limitations where human errors amplify risks due to inadequate investigation systems (Bhattacharjee et al., 2015).

DGMS's monitoring mechanisms are instrumental in translating regulations into practice, employing a tiered approach of routine, surprise, and post-accident inspections. Routine audits assess compliance with ventilation and support standards, while surprise visits deter negligence in high-risk underground zones. Post-accident inquiries, documented in annual reports, analyze root causes—such as skill-based lapses in 64.7% of cases—using tools like the Human Factors Analysis and

Classification System (HFACS) to inform preventive measures (Verma and Chaudhari, 2017). Safety audits incorporate worker feedback, and digital initiatives like online returns and e-SOPs facilitate real-time compliance tracking (DGMS Annual Report, 2009, as cited in Kirsch et al., 2013). Challenges persist, including staff shortages and reliance on manual methods, which hinder coverage in vast underground networks (Koppe et al., 2020). Fuzzy time series forecasting models applied to fatality data underscore the need for predictive monitoring to anticipate trends in underground coal accidents (Kher et al., 2015).

Intersecting with DGMS's domain, MoEFCC's EC conditions under the Environmental Impact Assessment (EIA) Notification, 2006, play a supportive role in enhancing underground mine safety by embedding sustainability into operational protocols. For mining projects exceeding 50 hectares (Category A), the EC process requires detailed assessments of environmental risks, which indirectly address safety through mandates on ground vibration control—aligned with DGMS thresholds to prevent structural failures—and subsidence monitoring via hydrogeological studies (Upadhyay, 2016). These conditions prescribe fire-fighting infrastructure and water drainage systems to avert inundations, a common hazard in monsoon-prone underground coal seams (Rajvanshi et al., 2018). Air quality stipulations, such as dust suppression, mitigate respiratory threats like silicosis, complementing DGMS's health surveillance (Mukherjee et al., 2005). Integration occurs as ECs reinforce DGMS regulations; for example, vibration limits in large-diameter blast hole stoping ensure the safety of primary underground structures (Patel et al., 2024).

Compliance monitoring for ECs involves MoEFCC regional offices, third-party audits, and biannual reports, fostering accountability that overlaps with DGMS inspections (Rajvanshi et al., 2018). Case studies from Talcher coalfields illustrate how EC-mandated drainage reduces flooding risks, enhancing worker safety amid local environmental impacts (Mishra et al., 2019). However, pre-decision EIA considerations often overlook cumulative underground hazards, leading to post-clearance issues like subsidence (Rajvanshi et al.,

2018). Suggestively, linking EC renewals to DGMS audit scores could strengthen this synergy, as seen in international models where environmental and safety regimes converge (Hermanus et al., 2015).

This interplay between DGMS and MoEFCC underscores a broader implication: safety in underground mines is not siloed but requires cross-agency collaboration to address interconnected hazards. Technological interventions, like IoT sensors for real-time gas monitoring, align with DGMS regulations and EC air quality mandates, potentially reducing incidents by 40% (Sadeghi et al., 2024). Yet, limitations in the Indian context—such as resource disparities in artisanal mines and inconsistent enforcement—mirror gaps in international adaptations, where Australia's zero-harm ethos succeeds through unified frameworks (Hebblewhite, 2009). Future directions should prioritize capacity building for DGMS, mandatory integration of AI in risk assessments under CMR 2017, and expanded EC conditions for emerging threats like climate-induced hydrological shifts.

In conclusion, DGMS's regulatory backbone, fortified by MoEFCC's EC safeguards, forms a robust yet improvable foundation for underground mine safety. By bridging these with technological and global insights, India can transcend reactive measures toward a proactive, sustainable paradigm, minimizing human and environmental costs while sustaining economic contributions.

References

- Datta, R. et al. (2023) *Coal mine explosions in India: Management failure, safety lapses and mitigations*. International Journal of Mining Science and Technology, 33(3), pp. 339-350.
- Hebblewhite, B. (2009) *Mine safety—through appropriate combination of technology and management practice*. Procedia Earth and Planetary Science, 1(1), pp. 13-19.
- Hermanus, M.A. et al. (2015) *Mine occupational safety and health leading practice adoption system (MOSH) evaluated for implementation*. Journal of the Southern African Institute of Mining and Metallurgy, 115(8), pp. 717-724.
- IFC (2007) *Environmental, Health, and Safety Guidelines*

- for Mining. International Finance Corporation.
- ILO (2008) *Safety and Health in Underground Coalmines*. International Labour Organization.
- Koppe, M. et al. (2020) *Occupational safety in Indian coal mines*. TU Delft Repository.
- Kumar, P. et al. (2024) *Promoting safety of underground machinery operators through participatory ergonomics and fuzzy model analysis*. Scientific Reports, 14(1), article 67375.
- Maiti, J. et al. (2009) *Severity analysis of Indian coal mine accidents – A retrospective study for 100 years*. Safety Science, 47(7), pp. 1033-1042.
- Mandal, A.K. and Sengupta, D. (2000) *The Analysis of Fatal Accidents in Indian Coal Mines*. Calcutta Statistical Association Bulletin, 50(1-2), pp. 95-118.
- Ministry of Coal (2020) *Annual Report*. Government of India.
- Pande, R. and Sudarshan, A. (2019) *Harnessing transparency initiatives to improve India's environmental clearance process for the mineral mining sector*. 3ie Impact Evaluation Report.
- Paul, P.S. and Maiti, J. (2007) *The role of behavioral factors on safety management in underground mines*. Safety Science, 45(4), pp. 449-471.
- Sadeghi, F. et al. (2024) *Applications of IoT Framework for Underground Mine Safety: A Comprehensive Review*. Journal of Mining Environment, 15(1), pp. 157-181.
- Senapati, A. et al. (2019) *Associations of job-related hazards and personal factors with occupational injuries at continuous miner worksites in underground coal mines*. Industrial Health, 57(4), pp. 441-453.
- Sharma, S. et al. (2023) *Risk Assessment & Safety Management Plan for Mines*. International Journal for Research Publication and Seminar, 3(3), pp. 1-10.
- Tripathy, D.P. and Ala, C.K. (2018) *Identification of safety hazards in Indian underground coal mines*. Journal of Sustainable Mining, 17(2), pp. 71-82.
- Verma, S. and Chaudhari, S. (2017) *Safety of Workers in Indian Mines: Study, Analysis, and Prediction*. Safety and Health at Work, 8(3), pp. 267-275.
- Datta, R. et al. (2023) *Coal mine explosions in India*. International Journal of Mining Science and Technology.
- DGMS (2006) *Emerging issues of safety in Indian mines*. Fossil Energy.
- EPA (2016) *Analysis of international best practices for coal mine methane*. US EPA.
- Gupta, S. and Mishra, R.K. (2022) *Fuzzy FMEA for underground coal mining*. Production & Manufacturing Research.
- Hebblewhite, B. (2009) *Mine safety*. Procedia Earth and Planetary Science.
- Hermanus, M.A. et al. (2015) *MOSH evaluated*. Journal of the Southern African Institute of Mining and Metallurgy.
- HSE India (2024) *Safety challenges in India's mining sector*. Medium.
- Human Rights Watch (2012) *Out of Control*. HRW.
- IFC (2007) *EHS Guidelines for Mining*. IFC.
- ILO (2008) *Safety in Underground Coalmines*. ILO.
- Koppe, M. et al. (2020) *Occupational safety in Indian coal mines*. TU Delft.
- Kumar, P. et al. (2024) *Participatory ergonomics in underground mines*. Scientific Reports.
- Kumar, A. and Mishra, R.K. (2025) *Safe mining through technological advancement*. ResearchGate.
- Maiti, J. et al. (2009) *Severity analysis of Indian coal mine accidents*. Safety Science.
- Mines.gov.in (2025) *Report on States' Best Practices in Mining*. Ministry of Mines.
- Mishra, R.K. and Rinne, M. (2022) *Review of preventive measures for explosions*. International Journal of Mining Science and Technology.
- Ozfirat, P.M. et al. (2020) *Risk assessment methods in mining*. Applied Sciences.
- Paul, P.S. and Maiti, J. (2007) *Behavioral factors in underground mines*. Safety Science.
- PwC (2023) *Transforming India's mining with autonomous technology*. PwC India.
- Sadeghi, F. et al. (2024) *IoT for underground mine safety*. Journal of Mining Environment.
- Sharma, S. et al. (2023) *Risk Assessment for Mines*. IJRPR.
- Tripathy, D.P. and Ala, C.K. (2018) *Safety hazards in*

Indian underground coal mines. Journal of Sustainable Mining.

Verma, S. and Chaudhari, S. (2017) *Safety in Indian Mines*. Safety and Health at Work.

Cliff, D. (2012) *The continuous improvement in safety in the minerals industry*. Journal of the Australasian Institute of Mining and Metallurgy, 317(6), pp. 11-16.

Esterhuizen, G.S., Ellenberger, J.L., Bajpayee, T.S. and Tulu, I.B. (2023) *Practical design guidelines for the development of reliable underground hard rock pillar layouts*. International Journal of Rock Mechanics and Mining Sciences, 168, article 105421.

Godfrey, N., Murray, N. and Watson, M. (2019) *Evaluating the effectiveness of MOSH in South African mines*. Journal of the Southern African Institute of Mining and Metallurgy, 119(5), pp. 457-464.

Government of Ontario (2015) *Final Report of the Mining Health, Safety and Prevention Review*. Ministry of Labour, Training and Skills Development.

Hebblewhite, B. (2009) *Mine safety – through appropriate combination of technology and management practice*. Procedia Earth and Planetary Science, 1(1), pp. 13-19.

Hermanus, M.A., Godsell, G. and Watson, M. (2015) *Mine occupational safety and health leading practice adoption system (MOSH) evaluated for implementation*. Journal of the Southern African Institute of Mining and Metallurgy, 115(8), pp. 717-724.

Kenny, G.P., Flouris, A.D., Dervis, S. and Friesen, B.J. (2012) *A review of safety considerations for working in the heat*. Journal of Occupational and Environmental Hygiene, 9(4), pp. 184-198.

Mishra, R.K. and Rinne, M. (2022) *A review of preventive measures for explosions in underground coal mines*. International Journal of Mining Science and Technology, 32(5), pp. 1035-1049.

Morissette, P., Hadjigeorgiou, J. and Punkkinen, A. (2017) *Ground support design for dynamic loading conditions: A critical assessment of the state-of-the-art*. Rock Mechanics and Rock Engineering, 50(5), pp. 1435-1453.

Vidya Prakash

Research Scholar

Dr. Deepak Miglani

School of Law

Sushant University, Sector 55,
Golf Course Road, Gurugram-12011

"Mapping the Evolution of Managerial Training and Leadership: A Bibliometric Perspective"

Kareena Saini, Dr. Seema Rathee



Abstract

The goal of the study is to provide an overview of the development of managerial training and leadership. It also summarizes the leading authors, significant papers, journals, and future directions for this field. The literature for this study was reviewed using bibliometric analysis and R Studio. A total of 899 articles from Scopus-indexed journals published between 2014 and 2024 were considered. This review highlights the foremost writers, organizations, nations, and sources in the field of managerial training and leadership studies. Furthermore, R Studio programming and VOS Viewer were utilized for data analysis and discussion. To guarantee consistency in the results, Data for this study came from a single source, the Scopus database. As a result, by adding more databases, future studies may expand the purview of bibliometric analysis. This work is innovative in offering insightful advice by assessing existing research and expanding our understanding of the evolution of managerial training and leadership.

Keywords: Bibliometric analysis, Managerial training, Leadership, Management, and biblioshiny.

1. Introduction

The development and training of management have increasingly been recognized as central components of organizational strategy, essential for enhancing productivity, efficiency, and competitiveness in both domestic and global markets (Analoui & Khoury, 2010; Analoui, 2007; Boxall & Gilbert, 2007; Gray, 2005). Organizations seeking innovation over a reactive approach must invest in employee development to sustain performance and growth (Hooi & Ngui, 2014; Jennings et al., 1995). Training and development are recognized as core human resource practices that significantly contribute to economic advancement and organizational transformation (Patton & Marlow, 2002; Longenecker & Fink, 2001; Drucker, 1999; Buckley & Kemp, 1989; McCall et al., 1988). Despite the acknowledged importance, organizations often allocate low priority to training, perceiving it more as a liability than an asset (Blackburn & Hankinson, 1989). Managerial training, although prioritized by Fortune 500 companies (Ralphs & Stephan, 1986), faces similar

neglect, with most programs remaining informal and institutionalized.

Management development underpins organizational success by equipping managers to meet evolving business needs, fostering better performance, and ensuring leadership succession (Basterritxea & Albizu, 2010; Armstrong, 2006). In service organizations, particularly, managerial and non-technical training has assumed strategic importance. Leadership within management is conceptualized as the administration of reinforcement contingencies (Podsakoff et al., 2006), while functional managerial leadership focuses on long-term performance and positive workplace outcomes (Binder, 2016). Studies identify three fundamental leadership behaviors associated with effective results: setting goals (Choi & Johnson, 2022; Gowen, 1985), providing positive verbal performance feedback (Sleiman et al., 2020; Weatherly & Malott, 2008), and engaging in consequential listening (Arnold et al., 2000; Grill, 2018; Theorell et al., 2012). Collectively, these behaviors enhance organizational culture and productivity (Choi & Johnson, 2022; Gravina et al., 2017, 2021; Komaki, 1986, 2015; Yukl et al., 2019).

Organizations invest considerable time and financial resources in leadership development (Kaiser & Curphy, 2013; Lacerenza et al., 2017), yet leadership training remains an evolving field. Empirical findings suggest limited use of randomized controlled trials, which are essential for establishing causal relationships between training interventions and leadership outcomes (Antonakis, 2017; Eden, 2017, 2021; Güntner et al., 2020; Podsakoff & Podsakoff, 2019). The distinction between management and leadership has been a recurring focus of research (Bass, 1990; Katzenbach, 1995; Quinn, 2000). The Competing Values Framework (Cameron et al., 2006; Quinn & Rohrbaugh, 1981) categorizes management competencies into four domains: clan, adhocracy, market, and hierarchy, essential for organizational effectiveness. Analoui (1993) expands this categorization into task-related, people-related, and analytical/self-related skills. Task-related skills involve planning and setting objectives, while people-related skills encompass communication, conflict resolution, and

motivation. Analytical and self-related skills focus on decision-making and personal growth. Managerial excellence, therefore, depends not only on skill sets but also on personal attributes such as self-efficacy and social support.

Using bibliometric methods, the current study synthesizes prior research on managerial training and leadership. It maps the intellectual structure of the field, highlights key themes, and identifies contemporary trends, thereby contributing to a comprehensive understanding of how effective managerial development enhances leadership capacity and strengthens organizational performance.

1.1 The Rationale for the Study

Over the past few decades, scholars have extensively investigated this topic. Previous review studies have primarily focused on management training, particularly in the realm of human resource management. For example, several researchers, including **Danvila-del-Valle et al. (2019)**, **Fauziah, N., & Tjahjono, H. K. (2024)**, and **Putri, R. F. (2022)**, have conducted bibliometric analyses on human resource management training. Additionally, **Kahraman, S., & Bozkuş, K. (2022)** performed a bibliometric review specifically on the training of educational managers. While these prior works have made significant contributions, this study distinguishes itself by concentrating on managerial training and leadership. The authors employ the specific key term "managerial training," which has not been utilized in previous research. By analyzing a comprehensive collection of papers, this study aims to highlight additional aspects that may have been overlooked in earlier investigations. Through performance analysis and science mapping, the research elucidates the conceptual framework of this subject. To achieve this, the authors address the following research questions (RQs):

RQ1. What are the major research trends in managerial training and leadership over the past decades?

RQ2. What are the most influential journals and authors in this research domain?

RQ3. Which are the most dominating scholarly papers in this field?

2. Methodology

Reviewing existing literature is a common approach to

transform ideas from previous works into objective and systematic forms for defining, specifying, mapping, and evaluating content. Traditional review methods are inadequate for extracting the intellectual structure of any domain (**Zainuldin & Lui, 2022**). However, a systematic literature review (SLR), a conventional method, addresses this limitation. SLR follows a well-defined procedure for searching multiple databases using a predetermined search strategy, enhancing research quality by increasing transparency, scientific rigor, and comprehensiveness (**Jain et al., 2021**). The bibliometric technique, a subset of SLR, quantitatively examines content. This recently developed methodology has gained popularity for evaluating scientific output (**Donthu et al., 2021**). It is a structured process that describes published work in terms of leading journals, countries, authors, and other relevant factors, specific to a research domain. Bibliometric analysis enables a holistic evaluation of scholarly work (**Khatib et al., 2021**). Two primary tools — performance analysis and science mapping — collectively constitute bibliometric analysis (**Donthu et al., 2021; Jain et al., 2021**).

Various software tools exist for conducting bibliometric analysis, including VOSviewer, Bibliometrix, and CiteSpace, each with its own strengths and limitations. This research utilized the Biblioshiny package from R programming and VOSviewer, which are widely accepted in bibliometric reviews and offer interactive mapping features (**Goel et al., 2021**).

2.1 Screening and selection procedure

Among the most renowned databases, Web of Science (WOS) and Scopus stand out, with Scopus offering more extensive coverage (**Monika & Dr. Ram Rattan Saini, 2022; Farooq, 2022; Kumar et al., 2021; Zainuldin & Lui, 2022**). Consequently, this review utilizes the Scopus database. Selecting appropriate keywords presents the most significant obstacle when conducting search queries in bibliometric databases (**Jain et al., 2021**). A research string was formulated as follows: ("Managerial training") AND ("leader*" OR "Leadership*" OR "Coaching*" OR "Mentor*" OR "Mentoring*"). The initial search yielded 2565 documents. To minimize inaccurate results, a combination of exclusion and inclusion criteria was applied to refine the search. The second step involved limiting articles to the

2014-2024 range, resulting in the elimination of 879 documents. Subsequently, focusing on the subject areas of "Business Management and Accounting" and "Social Science" excluded an additional 807 documents. Applying a filter for articles and review articles removed 152 more documents, resulting in 969 relevant papers. Finally, restricting the language to English reduced the count to 899 documents. This final set of 899 documents constitutes the sample literature for this work (The complete filtration process is illustrated in Figure 1).



Source: Author's own creation, **Figure 1.** Document Search and Filtration Procedure

3. BIBLIOMETRIC ANALYSIS AND DISCUSSION

3.1 Summary Statistics

This section presents an overview of a bibliometric study examining 899 publications on managerial training and leadership from 2014 to 2024. Table 1 displays the key findings of the research. The Scopus database contains 899 articles from 505 sources, authored by 2552 individuals. Throughout the entire dataset, the 2552 writers employed 3056 keywords to categorize their work. Among the authors, 115 produced solo publications. The average citation count per document in

this field is 15.26. Each manuscript lists an average of 2.98 co-authors, with international collaborators comprising 22.91% of the co-authorship. These findings suggest that most articles on this topic are the result of collaborative research efforts. This demonstrates the willingness of experts in the field to work together, providing emerging researchers with access to seasoned scholars and opportunities for in-depth exploration of the subject. Overall, the statistical summary highlights the breadth and diversity of the analyzed dataset.

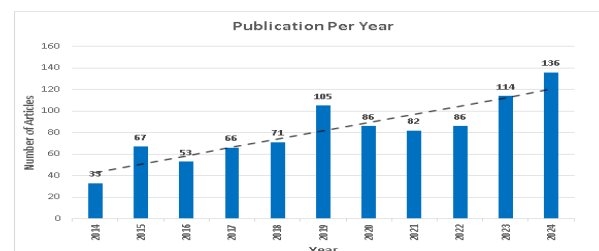
TIME SPAN	2014:2024
Sources (Journals, Books, etc.)	505
Annual growth rate %	15.21
Average citation per doc.	15.26
Author's keywords	3056
Authors	2552
Author of single-authored docs	114
Documents	899
Single-authored documents	115
Co-Authors per document	2.98
International Co-authorships %	22.91
Document Average Age	5.06
Article	872
Review	27

Source: Author's own creation

Table 1. Summary Statistics

3.2 Annual publication trend

Publication Trend Over Time. **Figure 2** addresses RQ1 and illustrates the annual publication count in the Managerial Training and Leadership field from 2014 to 2024. The graph reveals a steady increase in published articles, starting from 33 in 2014 and reaching 136 in 2024. For enhanced analysis, Figure 3 is divided into distinct periods. The initial phase (2014-2018) saw relatively few publications. However, the subsequent period (2019-2024) exhibited a marked upward trend compared to the previous years. Notably, 2019 witnessed 105 article publications. Moreover, the latter period accounted for over 60% of the total 899 articles (609). These statistics indicate a growing interest in this research area over time.



Source: Author's own creation

Figure 2. Annual Publication Trend

Publication Trend

3.3 Prominent Journals

Identifying journals that publish high-quality research on a specific topic is crucial for understanding the current state of the field and its future directions. The 899 articles on managerial training and leadership are distributed across 505 journals. Table 2 lists the top journals in this domain. "The Journal of Human Resource Management" leads with 54 articles, while "Sustainability (Switzerland)" follows with 20 publications. Among the 505 journals, the top 10 have collectively published 153 articles, representing 17% of the total. "Benchmarking," "European Journal Of Training And Development," and "Leadership And Organization Development Journal" share the same ranking with nine articles each.

Source	Articles	h_index	g_index	Total Citation	Py_start
SA JOURNAL OF HUMAN RESOURCE MANAGEMENT	54	10	16	357	2018
SUSTAINABILITY (SWITZERLAND)	20	9	18	332	2018
INTERNATIONAL JOURNAL OF CONTEMPORARY HOSPITALITY MANAGEMENT	17	8	8	286	2016
JOURNAL OF MANAGEMENT DEVELOPMENT	11	8	13	206	2014
BENCHMARKING	9	6	9	92	2015
EUROPEAN JOURNAL OF TRAINING AND DEVELOPMENT	9	6	11	220	2014
LEADERSHIP AND ORGANIZATION DEVELOPMENT JOURNAL	9	6	9	184	2017
SAFETY SCIENCE	8	6	6	166	2015
EMPLOYEE RELATIONS	8	5	5	96	2015
HUMAN RESOURCE DEVELOPMENT INTERNATIONAL	8	5	5	70	2016

Source: Author's own creation **Table 2.** Top contributing journals

3.4 Key Contributors

Table 3 showcases the most productive researchers in the field, based on their article count and fractionalized contributions. The fractionalized count is determined by dividing each article among its co-authors according to the extent of their shared input. This method provides a more accurate representation of an author's contribution relative to the total number of co-authors (**Sanchez-Garcia et al., 2023**). The table reveals that "Mohamad Ni" leads with four articles and a fractionalized contribution of 1.42, indicating significant influence in the field. Following closely are "Ali M, Botha Pa, Festa G, Jyoti J, Kim J, Lee S, Li X, Pieters Wr, Schultz Cm," each with three articles and respective fractionalized contributions

of 0.87, 1.17, 0.70, 1.33, 1.08, 0.87, 0.83, 1.17, and 1.03.

Authors	Articles	Articles Fractionalised
MOHAMAD NI	4	1.42
ALI M	3	0.87
BOTHA PA	3	1.17
FESTA G	3	0.70
JYOTI J	3	1.33
KIM J	3	1.08
LEE S	3	0.87
LI X	3	0.83
PIETERS WR	3	1.17
SCHULTZ CM	3	1.03

Source: Author's own creation **Table 3.** Top Contributing Author's

3.4 Network Analysis

3.4.1 Citation Analysis

To address RQ 3 regarding the most influential articles, we employed citation analysis. This method assesses a study's academic impact within a scientific field by counting the number of times it is referenced by other works (**Ding et al., 2009; Kumar et al., 2020**). **Figure 4** presents a network diagram of influential documents based on citation analysis. In cluster one (green color), the most impactful articles are **Lyons et al. (2018)**, which examined who benefits from entrepreneurship programs; **Wegner (2020)**, which explored university entrepreneurial push strategy and student entrepreneurial intention; and **Kotha et al. (2023)**, which investigated whether ambitious entrepreneurs benefit from training. Cluster two (red color) features other notable documents, including **Chattrji et al. (2019)** and **Asterbro et al. (2021)**. Additional significant works include **Teodorovic et al. (2024)**, "Investing in general human capital as a relational strategy: evidence on flexible arrangements with contract workers," and **Dimatridis et al. (2022)**, "Social skills improve business performance: evidence from randomized control trial with entrepreneurs in Togo."

Source: Author's own creation. **Figure 3:** Citation network of documents

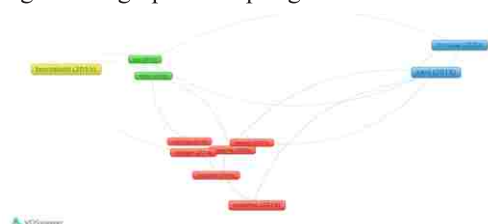
3.4.2 Bibliographic Coupling Analysis



Bibliographic coupling refers to the shared references between two documents (Zainuldin & Lui, 2022). A high coupling strength indicates a large number of common citations between two papers (Jain et al., 2021), suggesting that they share similar content. This approach offers a dynamic method for examining the intellectual structure of a subject domain (Koseoglu, 2016; Zainuldin & Lui, 2022). We utilized bibliographic coupling to identify knowledge clusters in the field of managerial training and development. Due to the extensive number of co-cited documents, we set a minimum threshold of 80 citations for cluster formation. This resulted in four final clusters comprising 26 articles (see Figure 4).

Clusters	Authors	Year	Article title
Cluster 1 Managerial Skills training, Safety and Wellbeing (Red Colour)	Yoo, M. S. et al.	2018	Exploring the Influence of Nursing Work Environment and Patient Safety Culture on Missed Nursing Care in Korea
	Soomro, Z. A. et al.	2016	Information security management needs a more holistic approach: A literature review.
	Jyoti, J., & Rani, A.	2017	High-performance work system and organisational performance: role of knowledge management
	Iriyama, A. et al.	2016	Playing dirty or building capability? Corruption and hr training as competitive actions to threats from informal and foreign firm rivals
	Hoobler, J. M., et al	(2014).	Women's Managerial Aspirations: An Organizational Development Perspective
	E. Ellinger, A., & D. Ellinger, A.	2013	Leveraging human resource development expertise to improve supply chain managers' skills and competencies
	Daniels, K. et al.	2017	Job design, employment practices, and well-being: a systematic review of intervention studies
	Dahling, J. J., et al.	2016	Does coaching matter? A multilevel model linking managerial coaching skill and frequency to sales goal attainment
	Al Aina, R., & Atan, T.	2020	The Impact of Implementing Talent Management Practices on Sustainable Organizational Performance
Cluster 2 Service Employees and Managerial Training (Green Colour)	Wirtz, J., & Jerger, C.	2016	Managing service employees: literature review, expert opinions, and research directions
	Wilder, K. M. et al	2014	Tailoring to Customers' Needs: Understanding How to Promote an Adaptive Service Experience With Frontline Employees

Sources: Author's own creation, **Table 4.** Cluster division through Bibliographic Coupling



Source: Author's own creation, **Figure 4.** Network Mapping of Bibliographic Coupling Analysis

Conclusion

This study provides a comprehensive bibliometric analysis of the evolution of managerial training and leadership research, highlighting key trends, influential authors, and emerging themes. Over the years, the field has experienced a shift from traditional leadership theories to more dynamic, evidence-based, and context-driven approaches. The integration of technology, cross-cultural perspectives, and sustainability considerations has also gained prominence in recent literature. The findings suggest that while foundational theories remain relevant, there is a growing emphasis on adaptive leadership, digital transformation, and the role of soft skills in managerial effectiveness. The increasing collaboration among scholars across disciplines and regions indicates a more interconnected research landscape. Future research should focus on exploring the impact of artificial intelligence, remote work, and diversity in leadership development. By continuing to refine theoretical frameworks and adopting innovative methodologies, scholars can further contribute to the advancement of managerial training and leadership practices in an ever-changing business environment.

References :

1. Al Aina, R., & Atan, T. (2020). The impact of implementing talent management practices on sustainable organizational performance. *Sustainability*, 12(20), 8372.
2. Analoui, F. (1993). Skills of Management. In J. W. Cusworth & T. R. Franks (Eds), *Managing projects in developing Countries*. Harlow: Longman Scientific and Technical.
3. Analoui, F. (2007), *Strategic Human Resource Management*, Thomson, London.
4. Analoui, F. and Khoury, G. (2010), "How Palestinian managers cope with stress?", *Journal of Management Development*, Vol. 29 No. 3, pp. 282-291.
5. Anton Robert Sabella Farhad Analoui, (2015), "Managerial training and development in telecommunication organizations in Palestine", *Journal of Management Development*, Vol. 34 Iss 6

pp. 685 - 703 Permanent link to this document:
<http://dx.doi.org/10.1108/JMD-08-2014-0083>

6. Antonakis, J. (2017). On doing better science: From thrill of discovery to policy implications. *The Leadership Quarterly*, 28(1), 5–21. <https://doi.org/10.1016/j.leaqua.2017.01.006>
7. Armstrong, M. (2006), *A Handbook of Human Resource Management Practice*, 10th ed., Kogan Page, London
8. Arnold, J. A., Arad, S., Rhoades, J. A., & Drasgow, F. (2000). The empowering leadership questionnaire—The construction and validation of a new scale for measuring leader behaviors. *Journal of Organizational Behavior*, 21, 249–269. [https://doi.org/10.1002/\(SICI\)1099-1379\(200005\)21:33.0.CO;2-%23](https://doi.org/10.1002/(SICI)1099-1379(200005)21:33.0.CO;2-%23)
9. Bass, B. (1990). *Handbook of leadership: Theory, research, and managerial applications*, 3rd ed. New York: Macmillan.
10. Basterritxea, I. and Albizu, E. (2010), “Management training as a source of perceived competitive advantage: the Mondragon Cooperative Group case”, *Economic and Industrial Democracy*, Vol. 32 No. 2, pp. 199-222.
11. Binder, C. (2016). Integrating organizational-cultural values with performance management. *Journal of Organizational Behavior Management*, 36(2–3), 185–201. <https://doi.org/10.1080/01608061.2016.1200512>
12. Blackburn, R. and Hankinson, A. (1989), “Training in the smaller business – investment or expense?”, *Industrial and Commercial Training*, Vol. 21 No. 2, pp. 27-29.
13. Bortolotti, T., Boscari, S., & Danese, P. (2015). Successful lean implementation: Organizational culture and soft lean practices. *International Journal of Production Economics*, 160, 182-201.
14. Boxall, P. and Gilbert, J. (2007), “The management of managers: a review and conceptual framework”, *International Journal of Management Reviews*, Vol. 9 No. 2, pp. 95-115.
15. Buckley, J. and Kemp, N. (1989), “The strategic role of management development”, *Management Education and Development*, Vol. 20 No. 1, pp. 157-174.
16. Cameron, K. S., & Quinn, R. E. (2006). *Diagnosing and changing organizational culture*. San Francisco: Jossey-Bass
17. Cameron, K. S., Quinn, R. E., DeGraff, J., & Thakor, A. V. (2006). *Competing Values Leadership: Creating Value in Organizations*. New York: Edward Elgar.
18. Chatterji, A., Delecourt, S., Hasan, S., & Koning, R. (2019). When does advice impact startup performance?. *Strategic Management Journal*, 40(3), 331-356.
19. Choi, E., Johnson, D. A., Moon, K., & Oah, S. (2018). Effects of Positive and Negative Feedback Sequences on Work Performance and Emotional Responses. *Journal of Organizational Behavior Management*, 38(2–3), 97–115. <https://doi.org/10.1080/01608061.2017.1423151>
20. Dahling, J. J., Taylor, S. R., Chau, S. L., & Dwight, S. A. (2016). Does coaching matter? A multilevel model linking managerial coaching skill and frequency to sales goal attainment. *Personnel Psychology*, 69(4), 863-894.
21. Daniels, K., Gedikli, C., Watson, D., Semkina, A., & Vaughn, O. (2017). Job design, employment practices and well-being: A systematic review of intervention studies. *Ergonomics*, 60(9), 1177-1196.
22. Danvila-del-Valle, I., Estévez-Mendoza, C., & Lara, F. J. (2019). Human resources training: A bibliometric analysis. *Journal of Business Research*, 101, 627-636.
23. Ding, E. L., Song, Y., Manson, J. E., Hunter, D. J., Lee, C. C., Rifai, N., ... & Liu, S. (2009). Sex hormone-binding globulin and risk of type 2 diabetes in women and men. *New England Journal of Medicine*, 361(12), 1152-1163.

Kareena Saini

Research Scholar
 Department of Commerce
 MDU, Rohtak

Dr. Seema Rathee

Research Scholar
 Department of Commerce
 MDU, Rohtak

सारांश

आधुनिक काल में वस्त्र विज्ञान का महत्व बढ़ गया है। यह विज्ञान हमारे रोजमर्रा की जिंदगी से सीधे जुड़ा हुआ है। जिस तरह रोटी और मकान जरूरी हैं, उसी तरह कपड़े भी हमारी बुनियादी जरूरत हैं। सिर्फ पहनने के लिए ही नहीं, बल्कि घर को सजाने और आरामदायक बनाने के लिए भी कपड़ों का बहुत महत्व है। वस्त्र हर मौसम में हमें प्रकृति के प्रभावों से बचाते हैं। साथ ही, ये हमारी सभ्यता और संस्कृति की निशानी भी हैं। हम वस्त्र पहनकर न सिर्फ अपने आप को आकर्षक बनाते हैं, बल्कि अपनी सामाजिक स्थिति, पेशे (जैसे नेवी या पुलिस की वर्दी) और पहचान को भी दर्शाते हैं। हम कपड़ों से अपनी खूबसूरती बढ़ाते हैं, अपने पद और समृद्धि को प्रदर्शित करते हैं, और यहाँ तक कि विभिन्न पेशों जैसे नौसेना, पुलिस आदि की वर्दी से हमारी भूमिका का पता चलता है (कपूर, 2018)।

रेशा या तंतु वस्त्र की मूल इकाई है। हर कपड़े की शुरुआत प्लंत्स नामक छोटे-छोटे रेशों से होती है। ये तंतु इतने बारीक होते हैं जैसे बाल होते हैं। यही तंतु मिलकर धागा बनाते हैं, और फिर वे धागे आपस में बुने जाकर कपड़े का रूप लेते हैं। ये तंतु प्राकृतिक चीजों जैसे कपास, रेशम, जूट और ऊन से मिलते हैं, लेकिन आजकल इंसान ने लैब में कृत्रिम तंतु भी बना लिए हैं। अगर हम अपने पहने हुए कपड़े के एक टुकड़े को ध्यान से देखें, तो हम पाएंगे कि वह लंबाई और चौड़ाई में बुने हुए धागों से मिलकर बना है। अगर हम एक धागे को अलग करके देखें, तो पता चलेगा कि वह और भी पतले-पतले तंतुओं से बना हुआ है। इन तंतुओं को इकट्ठा करके, सीधा करके, और एक-दूसरे के ऊपर लपेटकर ही मजबूत धागा बनाया जाता है (गुप्ता, 2019)।

वस्त्र विज्ञान का अर्थ एवं परिभाषा

वस्त्र विज्ञान वह व्यवस्थित विज्ञान है, जिसके अंतर्गत वस्त्र बनाने वाले प्राकृतिक एवं कृत्रिम तंतुओं का, वस्त्र निर्माण की सभी विधियों का, वस्त्र को आकर्षक बनाने (परिष्कृति) का और उनके रख-रखाव का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है (शर्मा, 2020)। किसी भी वस्त्र की शुरुआत प्लंत्स (थपइमत) से होती है। तंतु वस्त्र निर्माण की सबसे छोटी और मूलभूत इकाई है, जो एक बारीक, बाल जैसा धागा होता है। ये तंतु मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं:

1. कपास (पौधे के बीज से)
2. ऊन (भेड़ आदि जानवरों के बाल से)
3. रेशम (रेशम के कीड़े से)

4. जूट (पौधे के तने से)

इन प्राकृतिक तंतुओं के अलावा, आज मनुष्य ने कृत्रिम तंतु (जैसे रेयॉन और पॉलिएस्टर) भी बना लिए हैं।

वस्त्र बनने की प्रक्रियारू तंतु से वस्त्र तक

वस्त्र बनाने की प्रक्रिया एक व्यवस्थित विज्ञान है, जो तीन मुख्य चरणों में पूरी होती है:

1. तंतु (थपइमत)रू यह पहला चरण है। तंतु या तो प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त होते हैं या फिर कृत्रिम रूप से बनाए जाते हैं।
2. धागा (लंतद)रू दूसरे चरण में, इन तंतुओं को आपस में बटकर, लपेटकर और ऍठकर एक मजबूत धागा बनाया जाता है।
3. वस्त्र (थंडतपब)रू अंतिम चरण में, इन धागों को बुनकर या बिना बुने हुए तरीके से वस्त्र का रूप दिया जाता है। फिर इस वस्त्र को रंगकर और अन्य प्रक्रियाओं (परिष्कृति) से गुजारा जाता है ताकि यह पहनने लायक बने (सिंह, 2021)।

वस्त्र विज्ञान को हम सरल शब्दों में परिभाषित कर सकते हैं कि बुना हुआ कपड़ा या वस्त्र। इस परिभाषा को हम इस प्रकार समझ सकते हैं—

तंतु धागा वस्त्र पहनने योग्य वस्त्र

अतः वस्त्र विज्ञान को हम इस तरह से परिभाषित कर सकते हैं— वह विज्ञान जो हमें वस्त्र निर्माण के लिए प्रयुक्त लघुतम इकाई रेशों से, परिधान एवं अन्य उपयोग हेतु वस्त्र निर्माण करने तथा इनका संरक्षण एवं संचयन करना सिखाता है, वस्त्र विज्ञान कहलाता है। वस्त्रों की देखरेख, साज-संभाल, सफाई धुलाई, संरक्षण एवं संचयन भी वस्त्र विज्ञान के अन्तर्गत ही आता है।

तंतुओं (Fibres) का वर्गीकरण: एक विस्तृत अध्ययन वस्त्र विज्ञान को समझने के लिए तंतुओं (Fiber) का वर्गीकरण करना आवश्यक है। इस वर्गीकरण से वस्त्र विज्ञान का अध्ययन सरल एवं वैज्ञानिक हो जाता है। अध्ययन की सुविधा के लिए मुख्य रूप से तंतुओं को दो बड़े वर्गों में बाँटा गया है:

1. प्राकृतिक तंतु

इस वर्ग में वे तंतु हैं जो प्रकृति से सीधे-सीधे प्राप्त होते हैं। इन्हें बनाने की आवश्यकता नहीं होती केवल इन्हें प्राप्त करके, साफ करके उपयोग में लाया जाता है। प्राकृतिक तंतुओं को मुख्यतः तीन उप-वर्गों में बाँटा जा सकता है:

प. वनस्पति जगत से प्राप्त तंतु (पादप-जन्य)रू ये तंतु पौधों के विभिन्न भागों से प्राप्त होते हैं।

□ बीज वाले तंतु: इनमें कपास एवं कपोक आते हैं। कपास

वस्त्र उद्योग का सबसे महत्वपूर्ण तंतु है।

□ तने वाले तंतु (बास्ट फाइबर): ये पौधों के तने की छाल से प्राप्त होते हैं, जैसे जूट (पटसन), लिनेन (फ्लैक्स का पौधा), हेम्प (गांजा)।

□ पत्तियों से रू सिसल (एगोव पौधे की पत्तियों से)।

पप. प्राणी जगत से प्राप्त तंतु (प्राणि-जन्य): ये तंतु जानवरों या कीड़ों से प्राप्त होते हैं और मुख्यतः प्रोटीन से बने होते हैं।

□ बालधून से: भेड़ की ऊन, अंगोरा (खरगोश के बाल), कश्मीरी (कश्मीरी बकरी के बाल), मोहयर (अंगोरा बकरी के बाल)।

□ रेशमध्माव से: रेशम, जो रेशम के कीड़े (केटरपिलर) द्वारा बनाए गए ककून से प्राप्त होता है।

पपप. खनिज स्रोत से प्राप्त तंतु ये तंतु धरती की खानों से प्राप्त होते हैं।

□ एस्बेस्टॉस (अभ्रक): यह एक प्राकृतिक खनिज तंतु है जो अग्निरोधक वस्त्र बनाने के काम आता था, लेकिन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होने के कारण इसका उपयोग अब सीमित है।

2. कृत्रिम तंतु

इस वर्ग में वे तंतु हैं जो प्रकृति में तैयार रूप में नहीं मिलते। इन्हें मनुष्य द्वारा वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के माध्यम से बनाया जाता है। इन तंतुओं के निर्माण ने वस्त्र उद्योग में क्रांति ला दी है। इन्हें दो प्रमुख श्रेणियों में बाँटा जाता है:

प. मानव निर्मित तंतु (Regenerated Fiber): इन तंतुओं को बनाने के लिए कच्चे माल के रूप में प्राकृतिक स्रोतों (जैसे लकड़ी का गूदा या कपास लिंटर) से प्राप्त सेलूलोज का प्रयोग किया जाता है। इस सेलूलोज को रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा एक नया, बेहतर तंतु तैयार किया जाता है।

□ रेयॉन (आर्टिफिशियल सिल्क): यह प्राकृतिक रेशम की नकल में बनाया गया पहला मानव-निर्मित तंतु था।

□ लायोसेल (Tencel™): यह एक आधुनिक और पर्यावरण-अनुकूल पुनर्जनित तंतु है।

पप. रासायनिक विधि से निर्मित तंतु: ये तंतु पूरी तरह से प्रयोगशाला में तैयार किए जाते हैं। इनके लिए कच्चा माल पेट्रो-रसायन (कोयला, पेट्रोलियम या प्राकृतिक गैस) होता है। इन पदार्थों की पॉलिमराइजेशन नामक रासायनिक प्रक्रिया द्वारा लंबी-लंबी श्रृंखलाएँ बनाई जाती हैं, जिनसे तंतु तैयार होते हैं।

□ नायलॉन: यह दुनिया का पहला पूर्ण संश्लेषित तंतु था और इसे अत्यधिक मजबूती के लिए जाना जाता है।

□ पॉलिएस्टर: आज सबसे अधिक उपयोग होने वाला

संश्लेषित तंतु (Synthetic Fiber), जो मजबूत, सूखने में तेज और सिलवटों के प्रति प्रतिरोधी होता है।

□ एक्रिलिक: इसे सिंथेटिक ऊन भी कहा जाता है, क्योंकि इसके गुण प्राकृतिक ऊन से मिलते-जुलते हैं।

□ स्पैन्डेक्स (लाइक्रा): इसमें अद्वितीय लोच (खिंचाव) होती है और इसका उपयोग स्पोर्ट्सवियर और अंडरगारमेंट्स में होता है।

वस्त्र तंतुओं के वर्गीकरण को लेकर विद्वानों में एक रोचक मतभेद रहा है। कुछ विद्वानों का मानना है कि प्रकृति में कोई विशेष वस्त्र तंतु होते ही नहीं हैं, बल्कि साधारण प्राकृतिक तंतु होते हैं जिन्हें मनुष्य ने अपनी जरूरत के लिए चुन लिया है। उनका मानना है कि प्रकृति ने ये तंतु कपड़े बनाने के लिए नहीं, बल्कि अपने अलग उद्देश्यों के लिए बनाए हैं। जैसे भेड़ का ऊनी कोट उसे सर्दी से बचाता है, रेशम का कीड़ा ककून बनाकर उसमें सुरक्षित रहता है, कपास के पौधे में रूई बीजों की सुरक्षा करती है, और जूट जैसे तंतु पौधों को मजबूती देते हैं। मनुष्य ने इन प्राकृतिक तंतुओं की खोज की, उनकी नस्ल सुधारी, और फिर उन्हें कपड़ा बनाने के काम में लगा लिया (भटनागर, 2017)।

अमेरिकन सोसायटी ने प्रकृति में पाए जाने वाले लगभग 100 तंतुओं की सूची बनाई है, लेकिन हमारे दैनिक उपयोग के कपड़ों में इनमें से 20 से भी कम का इस्तेमाल होता है, जैसे कपास, जूट, ऊन और रेशम। करीब एक सौ साल पहले मनुष्य ने पहली बार प्रयोगशाला में कृत्रिम तंतु बनाया। सबसे पहले उसने प्रकृति के सबसे महंगे और खूबसूरत तंतु रेशम की नकल करने की कोशिश की और रेयॉन नामक तंतु बनाया, जिसे शुरू में कृत्रिम रेशम कहा गया। बाद में पूरी तरह रासायनिक विधि से बनने वाले तंतु आए, जिन्हें संश्लेषित तंतु (Synthetic Fiber) कहा जाता है, जैसे पॉलिएस्टर और नायलॉन। दिलचस्प बात यह है कि चाहे तंतु प्राकृतिक हों या कृत्रिम, दोनों ही पॉलिमर नामक अणुओं की लंबी श्रृंखलाओं से बने होते हैं। एक धागे की खासियत – उसकी मजबूती, लोच, चमक आदि – इस बात पर निर्भर करती है कि उसके तंतु कैसे हैं और उनकी रासायनिक बनावट क्या है। मोटे तौर पर तंतुओं के दो मुख्य रासायनिक वर्ग हैं – प्रोटीन (जैसे ऊन और रेशम) और कार्बोहाइड्रेट (जैसे कपास और लिनेन), जिनके रासायनिक गुण उनमें मौजूद अलग-अलग परमाणु समूहों के कारण होते हैं (गुप्ता, 2019)।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि वस्त्रोपयोगी तंतुओं (Fiber) के दो वर्ग हैं। प्रथम, प्राकृतिक तंतु और दूसरा कृत्रिम तंतु। इन दोनों

प्रकार के तंतुओं में अंतर है जो निम्नवत है :-

1. प्राकृतिक तंतुओं को विभिन्न प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त किया जाता है जबकि कृत्रिम तंतुओं को किसी प्राकृतिक स्रोत से प्राप्त नहीं किया जाता बल्कि इन्हें प्रयोगशाला में कृत्रिम रूप से तैयार किया जाता है।
2. प्राकृतिक तंतुओं के सभी गुण प्रकृति-प्रदत्त तथा पूर्व-निश्चित हैं जबकि कृत्रिम तंतुओं के गुण वैज्ञानिक स्वयं निर्धारित करते हैं तथा आवश्यकता के अनुसार उनमें अपेक्षित परिवर्तन भी किया जा सकता है।
3. प्राकृतिक तंतुओं की लंबाई, रंग, चमक, संघटन तथा अन्य गुण निश्चित होते हैं जबकि कृत्रिम तंतुओं की लंबाई, रंग, चमक तथा संघटन आदि गुणों में परिवर्तन किया जा सकता है।
4. प्राकृतिक तंतु केवल सीमित मात्रा में ही प्राप्त किए जा सकते हैं क्योंकि इनकी प्राप्ति के स्रोत सीमित हैं जबकि कृत्रिम तंतुओं को आवश्यकता के अनुसार तैयार किया जा सकता है।

संदर्भ सूची (References)

- भटनागर, एस. (2017). वस्त्र विज्ञान की मूलभूत अवधारणाएँ. नई दिल्ली: शिक्षा भवन प्रकाशन.
- गुप्ता, एम. (2019). आधुनिक वस्त्र प्रौद्योगिकी. मेरठ: रस्तोगी पब्लिशर्स.
- श्रवैप, ड. (2022). Handbook of Totally Fibres- Cambridge: Woodhead Publishing-
- कपूर, आर. (2018). भारत में वस्त्र और संस्कृति. जयपुर: राजस्थान प्रकाशन.
- शर्मा, वी. (2020). गृह विज्ञान वस्त्र एवं परिधान. हैदराबाद: ओरिएंट ब्लैकस्वान.
- सिंह, पी. (2021). वस्त्र निर्माण की प्रक्रियाएँ. कानपुर: चौहान एकेडमिक प्रेस.
-

कुमारी निभा

सहायक प्राध्यापक, गृह विज्ञान विभाग
वैशाली महिला कॉलेज, हाजीपुर, बिहार.

मोक्ष सार

सदियों से स्त्री अपनी अस्तित्व की पहचान के लिए निरंतर संघर्षरत है। वह अपने ऊपर हो रहे अत्याचार पर आवाज उठा रही है। नारी समाज में अपनी महत्त्वकांक्षा बनाए रखने के लिए निरंतर संघर्षरत है। साठ के दशक के बाद नई विचार दृष्टि का विकास हुआ। बहुत से ५ व महिला साहित्यकारों ने अपनी लेखनी द्वारा स्त्री की संवेदनाओं को चित्रित किया है। आज स्त्री शारीरिक रूप से नहीं बल्कि मानसिक रूप से भी संघर्ष कर रही है। समाज स्त्रियों के पैरों में बेड़ियाँ डालने की कोशिश कर रहा है, परन्तु स्त्री इन बेड़ियों को तोड़कर निकलने का प्रयास कर रही है। स्त्री अपने आत्मविश्वास के साथ नज़र आ रही है।

बीज भाव : भारतीय समाज, मुस्लिम समाज, दांपत्य जीवन, संवेदना, सांप्रदायिकता, संघर्ष, घुटन, मुक्ति की चाह।

मूल आलेख

समकालीन महिला कथाकारों में ममता कालिया, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, राजी सेठ, मन्नू भण्डारी, कुसुम अंसल, मृदुला गर्ग, मेहरुन्निसा परवेज, नासिर शर्मा आदि प्रमुख लेखिकाएँ हैं। इन सब लोगों ने अपने साहित्य का केन्द्र स्त्री संवेदना को ही बनाया है। आधुनिक स्त्री की मानसिक जटिलता, संवेदनशीलता, समाज के साथ संघर्ष पर प्रकाश डाला है। इन सब लेखिकाओं में नासिरा शर्मा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

नासिरा शर्मा के व्यक्तित्व के विशेष आयाम

किसी भी साहित्यकार के संबंध में विस्तार से अध्ययन करने से पूर्व उसके विषय में जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। नासिरा जी सातवें दशक में हिंदी साहित्य में प्रवेश किया था और उनका लेखन कार्य अब तक जारी है।

इसके संवेदनशील व्यक्तित्व का प्रभाव निश्चित ही इनके साहित्य पर पड़ा है। अतः यह आवश्यक है कि इनके कथा साहित्य का अध्ययन करने के पूर्व इनके व्यक्तित्व के बारे में जाना जाए। नासिरा शर्मा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के संबंध में अशोक तिवारी जी का कथन है, “करीब 26-27 साल बाद नासिरा शर्मा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ गहनता से बावस्ता हुआ। नासिरा शर्मा का साहित्य के क्षेत्र में जितना योगदान है उतना साहित्येतर लेखन में भी है। समाज के गूढ़ अंतर्विरोधों को आपने न केवल अपनी कहानियों, उपन्यासों में उकेरा है बल्कि अपने साहित्येतर लेखन में भी उल्लेखनीय योगदान दिया है। आपके साहित्य में एक और जहाँ मानवीय मूल्य एवं सरोकारों की गूढ़ संरचना होती है, वहीं दूसरी

ओर आमजन के पक्ष में खड़ा होकर आवाज़ को बल देने के सूत्र भी मौजूद होते हैं।”

मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण उसके कर्मों द्वारा ही होता है। यही कर्म उसके जीवन को नई दिशा भी देते हैं। व्यक्तित्व में सादगी का होना बहुत जरूरी है वह नासिरा शर्मा में कूट-कूटकर भरा है। व्यक्तित्व जिसको अंग्रेजी में पर्सनल्टी कहते हैं, किसी भी व्यक्ति के व्यवहार आचार-विचार द्वारा तय किया जाता है। व्यक्ति का अर्थ है व्यक्त या प्रकट होना। एक तरह व्यक्ति के व्यक्त होने की दिशा से ही व्यक्तित्व का निर्माण होता है। व्यक्ति का व्यक्तित्व का प्रभाव समाज पर अवश्य पड़ता है। लेखकों के लिए कहा जायेगा कि उनके व्यक्तित्व का प्रभाव समाज पर अवश्य पड़ता है। लेखकों के लिए कहा जायेगा कि उनके व्यक्तित्व का प्रभाव उनके लेखन पर भी पड़ता है।

‘पत्थर गली’ कहानी संग्रह में प्रेरणादायक कहानियाँ

नासिरा शर्मा के ‘पत्थर गली’ कहानी संग्रह में आठ कहानियाँ संग्रहित हैं, जिनमें बावली, सरहद के इस पार, बन्द दरवाजा, कातिब, ताबूत, कच्ची दीवारें, पत्थर गी, सिक्का।

बावली कहानी एक मुस्लिम लड़की सलमा की कहानी है। जिसमें बताया गया है वह एक साधारण-सी लड़की है वह अपने आपको सदा दूसरों में बाँटती आई है। ठीक बावली पानी की तरह। जिस किसी को प्यास लगी, उसके वजूद की सीढ़ियाँ उतरता सीधा निचे चला आया और अपना खाली बरतन भरकर ले गया। वह कहती है, “मैं कुआँ तो थी नहीं जो किसी की रस्सी और डोल डालने की जहमत उठानी पड़ती, मैं तो एक बावली थी – पानी से भरी बावली, जिसके पीन का कोई भी अपने चुल्लुओं में भरकर अपने सूखे गले तर कर सकता था।”

बावली के वजूद के बेशुमार ताक बने हुए थे, जिसमें विभिन्न कबूतरों ने बसेरा कर रखा था। ताकों के बड़े-बड़े दरों में गर्मी तपती दोपहर से थके परिन्दे मेरे ठण्डे वजूद में अपनी पनाह लेते थे। मैं बावली अपना सब-कुछ भूलकर अपने-आपको सब में बाँटती रहती थी। लोग उसे एक पानी से भरी बावली के सिवाय कुछ नहीं समझते थे। उसे एक अकेले, तनहा आसमान के नीचे जमीन के सीने में धँसे हुए जीना है। “इस कड़वे सच की हकीकत से मैं बेखबर थी और इसी अन्जानेपन में, मुसाफिरों से सच्चे दिल से जुड़ती रही, यह क्या कह दिया मैंने उनको? वे मुसाफिर कब थे। कबूतरों की तरह मेरे वजूद के ताकों में बसेरा लेने वाले गुटरगूँ-गुटरगूँ की गर्म आवाज़ निकालनेवाले वे सब, दरहकीकत मुसाफिर नहीं, बल्कि मेरे

अपने थे। उनसे मेरा प्यास के पानी का नहीं, लिक प्यार और खून का रिश्ता था। सच पूछो तो वह सब मेरी जिन्दगी, मेरी रूह, मेरे अहसास थे। फिर वे सब पंख फैलाकर किस आसमान की तरफ उड़ गए ? किस तरफ ?”

वह अपने अतीत को याद करती है, जब वह एक अबोध बालिका थी। जब उसकी सहेलियाँ उसे चिढ़ाती थी तो वह अपनी माँ के आँचल में छुप जाती थी। तब उसकी माँ उसे पुचकारकर अपनी गोद में छिपा लेती थी। तब उसकी आँखों से आँसू थम जाते थे। तब वह फिर से लड़कियों के साथ खेलने लग जाती है, वे सब गाती हैं —

अक्कड़-बक्कड़ बम्बे बे
अस्सी-नब्बे पूरे सौ
सौ में लगा तागा
चोर निकलकर भागा
राजा की बेटी सोती थी
फूलों की मार पड़ती थी
रेल झमझमा चलती थी
आलू, भाँटा, सेम, धम।

नीम के पुराने पेड़ के नीचे हँसी के ‘फव्वारों’ के बीच वह दोनों हाथों से आँखें बंद करके तने से टिक जाती, ‘कूकी’ को तेज पुकार के साथ वह महेलियों के साथ भागी फिरती थी। आज वह अपनी पुरानी बातें याद कर रही है, उसकी आँखों में निंद नहीं है। वह देर रात तक जागती रहती है। आज वह बाथरूम में जाकर सुबक-सुबक कर रो रही है। थोड़ी देर बाद वह बाथरूम से निकली। घर के सामान को ठीक करने लगी, जो पहले-से ही करीने से रखा हुआ था उसे दुबारा ठीक करने लगी। बचपन छत की तलाश में गुजरा और आज छत है तो पैरों के निचे से जमीन गायब है। लगता है आज फिर उसकी जिंदगी चौराहे पर खड़ी है। सलमा की तीन बहनें व एक भाई सईद था। बहनों की शादी हो गई थी व भाई सईद एक दुर्घटना में इंतकाल हो गया था। उसकी माँ और वह दो सदस्य घर में बचे थे। शादी से पहले उसने कुछ नहीं देखा। अब शादी के बाद उसे सर छुपाने के लिए जगह मिली तो आज सात साल हो गए शादी को उसके बच्चा नहीं हुआ है। अब वह अपने पति की दूसरी शादी करवाना चाहती है ताकि उनके घर में औलाद हो जाए। सफाई करने वाली घर में आ गई है। वह अपने-आपको काम में लगाने की कोशिश कर रही है, परन्तु उसका मन काम में नहीं लग रहा है।

तभी उसके पति ऑफिस से आ जाते हैं। वह उसका उदास चेहरा देखकर भाँप लेते हैं, वो सलमा को अपने पास बिठा

लेते हैं और कहते हैं, “तुम्हारा गम मुझसे छुपा नहीं है सलमा। खालिद ने सलमा की कमान जैसी भौहों पर उँगली फेरते हुए कहा। सलमा खामोश रही। सिर्फ बोलती आँखें खालिद पर जग गई।” खालिद सलमा को समझा रहे हैं कि यह शादी उसकी पत्नी की मर्जी से हो रही है। “मुझे सहारा दो सलमा, मैं बहुत परेशान हूँ।” इस प्रकार परिवार की व्यथा से भरी कहानी है। अब खालिद की शादी हो जाएगी व सलमा अकेली रह जाएगी। अगले दिन खालिद की बरात जाने वाली है। सलमा परेशान है। अगले दिन बरात जा सही है सलमा भी बरात में गई है।

दुल्हन के कपड़े-लते, जेवर, शृंगार आदि सभी चीजें खरीदी जा चुकी हैं। सबको सजाती हुई सलमा सोच रही थी कि दुनिया के सारे रिश्ते झूठे हैं। हर रिश्ता कुछ माँगता है। जब न दो तो टूट जाता है। सलमा कहती है, “मैं पानी से भरी बावली रिश्तों के नाम पर बँटती आयी। हमेशा दिया, कुल लिया नहीं। आज जब अपनी कोख से एक बच्चा न दे सकी, तो मैं एक बेकार शै मान ली गई। मेरा और खालिद का रिश्ता इस औलाद को लेकर टूट गया। अगर खालिद मेरी गोद न भर पाते तो क्या मैं दूसरी शादी कर पाती ? उस समय गोद लेने की बात उठती। सब्र और कुर्बानी की बात उठती। तो क्या औरत के नाम के साथ मर्द कुर्बानी नहीं कर सकता ?” यह सब सलमा तब सोच रही है जब वह बरात में गई हुई है। अब सलमा बेहोश हो गई। सास सलमा की तरफ दौड़ी। खालिद भी सलमा के पास आए। अब सलमा को होश आ गया है। सलमा का ही मन शर्मिदा महसूस कर रही है। अब शादी करके दुल्हन खालिद के साथ घर आ गई है। शादी से अगली सुबह अचानक सलमा ने खालिद को देखा। शादी का लिबास, सर्प को कथई शेरवानी, जिसके सारे बटन खुले थे। बाल बिखरे थे। सलमा की आँखें गीली हो उठी। लगा, दिल की ज़मीन पर, बेहताशा शीशे टूटकर जमीन पर गिर रहे हैं। दर्द का एक अजीब लावा उसके अन्दर उमड़ने लगा। उसके सामने एक नयी तरह से जिंदगी शुरू करने का अनुबंध था। अब खालिद सलमा की तरफ आ रहे थे।

सलमा ने आगे बढ़कर खलिद को कुर्सी दी अब वह खामोशी से खालिद के सामने बैठ गई। खालिद के शानें थके और निढाल थे। सलमा के दिल में रह-रहकर एक ही बात उठ रही थी, “मैं एक बावली ठहरी, प्यास के लिए रिश्तों के नाम पर स्वयं को बाँटने वाली बाँटनेवाली। मेरे दिल के दालानों में थके-प्यासे परिन्दे अपनी प्यास बुझाते रहेंगे, दुःख बाँटते रहेंगे, मगर आखिरी साँस तक जीने और मरने का साथ न निभा पायेंगे। मैं पानी से भरी बावली, कहाँ जाएँगी ? मुझे तो अंतिम साँस तक

खुले आसमान और जमीन के सीने में घँसे जीना है।” इस प्रकार इस कहानी का अंत बड़ा दुःखद है।

सरहद के इस पार कहानी में नारी जीवन की त्रासदी खपरैल तड़ातड़ कच्चे आँगन में गिरकर टूट रही थी। मगर किसी में हिम्मत नहीं थी कि आँगन में निकलकर रेहान को आवाज़ देकर मना करता। अम्मा को दौरा पड़ गया था। हाथ-पैर ऐंठ गए थे। मुँह से झाग निकल रहा था। वह गिरकर बेहोश हो गया था। यह सब देखकर नरगीस ने शकूर चाचा को बुलाया और बताया कि आज भैया फिर सारे खपरैल आँगन में फँक रहे हैं। यह सुनकर शकूर चाचा कमरे में लपके। वह लड़का रेहान अपने पूरे होश-हवास में नहीं था। रेहान को पीछे से पकड़कर शकूर चाचा कमरे में ले आये थे। इस पकड़ा-धकड़ी में उसके हाथ-पैर कई जगह से जख्मी हो गए। नरगीस को रेहान भाई की हालत देख देखकर सुरैया आया से नफरत हो रही है। सुरैया, रेहान को बी०ए० करते समय कॉलेज में मिली थी। दोनों में गहरा प्रेम था। अब सुरैया की शादी पाकिस्तान के किसी रईस लड़के से होने जा रही है। बहुत दिनों तक यह बात रेहान से छिपी रही परन्तु कभी न कभी तो यह बात खुलनी ही थी। दो दिन पहले उसे सुरैया मिली थी। उसने कुछ भी ऐसा रेहान को नहीं बताया था। वह सुरैया के घर तो नहीं जा सकता था। घुटता रहा। वायदे के मुताबिक सुरैया जुम्मे की रात में भी नहीं आयी। बेकारी, इश्क में नाकामी और बेवफाई ने रेहान को दीवाना बना दिया। ददा का ख्याल था कि सुरैया की फुपफी ने रेहान पर जादू-टोना किया है। वह बहुत कठोर दिल की औरत है। उसने अपनी सौत के गुप्त अंगों को चिमटे द्वारा दागा था। ऐसे बुरे लोगों के बीच जाकर रेहान फस गया था। जितनी भी रेहान को सुरैया से नफरत दिलाई जाती वह उतना हो। उसके करीब आता जाता। अब शकूर सोप रहे हैं कि किस प्रकार रेहान को छत से उतारा जाए। शकूर चाचा काँपते हुए गुस्से में ऊपर चढ़े। बिना कुछ कहे लात व घूँसे रेहान की कमर पे जमाए। धक्का देकर आँगन में गिरा दिया। अगर सुरैया से प्यार करता है तो गाली देनी है तो उसके बाप को दे। रेहान को लात घूँसे मारकर शकूर चाचा दददा के पास जाकर बैठ गए। अब शकूर चाचा कहते हैं, “मोहल्ले में इसकी बेहूदगी के कारण आँखें चुरानी पड़ती हैं। कमबख्त ने कहीं का नहीं छोड़ा।”

आँगन में रेहान आँधे पड़े थे। मुँह का रस बाहर आँगन को मिट्टी भिगो रहा था। नरगीस का मन भैया के सिर की मिट्टी झाड़ने का कर रहा था परन्तु वह कर न सकी सबके फूले मुँह देखकर। रेहान के मन में आज सुरैया के लिए नफरत ही नरत उफन रही थी। सुरैया का विवाह पाकिस्तान के बड़े

ऑफिसर से हो रहा था। इसलिए वह चुप बैठी थी कि शादी के बाद सरहद पार चली जाएगी। सरहद के इस पार किसी के दिल पर क्या बिजली गिरेगी वह इस बात से बिल्कुल बेखबर थी।

घण्टाघर में बारह बज गए हैं। सारी रात की खामोशी फट गई। रेहान ने आसमान पर पज़र डाली—तारे चारों तरफ छिटके थे। उसने सोचा एक बार उस सुरैया से बात हो जाती तो उसे बताता कि बेवफाई किस तरह की जाती है। जितनी सिद्दत से इश्क किया जाता है उतनी ही सिद्दत से नफरत भी की जा सकती है। लौटते हुए उसने कानों में दबी—सी आवाज़ पहुँची, बचाओ ! बचाओ ! बढ़ते हुए कदम तक गए। ठीक उसी के परों के नीचे कुछ घट रहा था। यह सुनकर वह उस घर की तरफ दौड़ा व आँगन में कूदकर ढालान की तरफ बढ़ा। आवाज कमरे से आ रही थी। पैर की ठोकर दरवाजे पर मारी। दरवाजा बंद था दो पाट झट से खुल गए। एक हिंदू लड़की को पकड़े दो मुस्लमान लड़के खड़े थे। वह उन्हें घुड़ा रही थी। पास ही सूखा—सा लड़का बैठा था। क्या कर रहे हो ? रेहान ने पूछा व आगे बढ़ गया। उनमें से एक लड़के ने रेहान को पहचान लिया। उन्होंने उसे उस लड़की को न छोड़ने की बात की। वे रेहान को उसका हिस्सा देने की पेशकश कर रहे थे। रेहान को गुस्सा आया व एक लड़के के मुँह पर घुस्सा मारा। खून का फव्वारा छूटा और सामने के दाँत उछलकर दूर जा गिरे।

लड़की हिंदू थी और कमसिन भी। कपर्धू लगने की आपा-धीपी में यह लोग उसे उठा लाये थे। भाड़-भड़क्के में किसी को पता भी न चलेगा। किसी को पता भी नहीं था कि कौन कहाँ जा रहा है ? क्या सामान खरीद रहा है ? सबको इतने कम वक्त में सामान खरीदना, मिलना—जुलना रहता था। बौखलाये लोग समझ नहीं पा रहे थे कि क्या खरीदना है। घृणा की आग में वासना की आग दहक रही थी। दोनों लड़के पगलाए हुए थे। वे रेहान को चिड़ा रहे थे कि तुझे बड़ी हमदर्दी हो रही है लौंडिया से। दादा टाइप के दूसरे लड़के ने गर्दन से रूमाल निकालकर पैर पर मारते हुए बड़ी शाने बेनयाजी से कहा, जिसमें भिड़ने की चुनौती थी।

इस प्रकार वे लड़के रेहान को मनाने में लगे हुए हैं। वो गलत तरीके से उसे समझा रहे हैं कि इसमें हम तुम्हें भी हिस्सा देंगे। इस प्रकार रेहान ओर भी ज्यादा गुस्सा हो गया। उन तीनों में बात कहासुनी से हाथापाई पर पहुँच गई। इस प्रकार रेहान कहता है, “मैं एक ही काफी हूँ तुम सब को सँभालने के लिए। हाथ-पैर मरोड़कर फेंक दूँगा ! सुलझाते रह जाओगे !” इस प्रकार रेहान ने दोनों लड़कों की पिटाई की व लड़की को सुरक्षित

घर तक पहुँचाया। लड़की के पिता का नाम रामखिलावन था। उनकी परचून की दुकान है। इस प्रकार लड़की के पिता रामखिलावन ने रेहान का शुक्रिया किया।

उधर सुरैया के घर में शादी की तैयारियाँ चल रही है। नायक के जाने के बाद अम्मा चुपचाप हाथ में पकड़ कपड़े की बखिया उधेड़ती रही, मगर दददा ने कोसना शुरू कर दिया। नरगिस को एक ही बात समझ में नहीं आ रही थी कि हर एक से भिड़नेवाले निडर रेहान भैया उस एक लड़की सुरैया से क्यों डरकर बैठ गए? वह सारा जुल्म सह रहे हैं जबकि वे स्वयं मानते हैं कि जुल्म करने वाले से ज्यादा गलती जुल्म सहने वाले की होती है। जुल्म सहने वाला जालिम के हाथ और मजबूत करता है।

पलंग पर सोए रेहान के पास दबे पाँव नरगिस पहुँची। धीरे-धीरे उसने उसके बाजूओं पर हाथ फेरा। मछलियों की सख्ती का अंदाजा लगाया पत्थर जैसी हैं बिल्कुल। मुड़कर सामने गई ताकि चेहरे का मुआयना करे। गाल अब भी लाल हैं परन्तु चेहरा पीला पड़ गया है। मुँह पर बैठी मक्खी को हाँकती है। इस प्रकार एक दिन अचानक रेहान गायब हो जाता है। घर में पूरा मोहल्ला उमड़ा है। सरस्वती और रामखिलावन दोनों रो रहे हैं। नरगिस सरस्वती की लाल आँखें देखकर सोचती है, अगर सुरैया आपा यहाँ होती तो वह रोती? अगर सुरैया आपा भैया के पास होती तो वह मरने को सोचते ही क्यों? घर में धूप आ गई थी। अब भीड़ छँटने लगी थी। नरगिस अपने को बहुत तन्हा महसूस कर रही थी। उठकर चबूतरे के पास बैठ गई और आसमान की तरफ झाँकने लगी। नीले आसमान के नीचे चीलें डैने फैलाये उड़ रही थी। कहीं दूर से आवाज़ उभरी –

अण्डे-बच्चेवाली चील चिलोरिया!

घबराकर नरगिस ने भैया को देखा। आज तो भैया सचमुच मर गये – कहीं चील ...? वह तेजी से भैया से लिपटने भागी। आधी राह में ही उसे दादी ने पकड़ लिया, कहाँ जा रही है? घबराकर नरगिस ने भैया की तरफ देखा। आज तो भैया सचमुच मर गए ... कहीं चील ...? उसे बात समझ में नहीं आ रही थी कि क्या यह बदला भैया से चीलों से लेना था मगर ये कीड़े कहाँ से आ गए। भैया तो चींटियों, कीड़े-मकौड़ों को कागज से उठाकर घर में किनारे जाकर फेंकते थे। कहीं वे कीड़ें किसी के पैर के नीचे आकर दबकर न मर जाएँ। फिर ये सब कीड़े भैया के बदन को क्यों काट रहे हैं।

दददा ने उसे सीने से लिपटा लिया। सफेद मलमल की जम्पर से उठती खुशबू में उसे अपने भैया रेहान की खुशबू मालूम

पड़ती है। उस लड़की सुरैया का गम उसके भाई को घुन की तरह चाट गया। नरगीस को याद आया – घुन का चाटा खोखला गेहूँ का दाना। दददा के सीने से मुँह हटाकर उसने भैया की तरफ देखा, तो क्या सुरैया आपा घुन थीं?

‘बंद दरवाजा कहानी’ में नारी जीवन की त्रासदी

यह कहानी शबाना नामक लड़की की है जिसमें पारिवारिक तनाव के चलते लड़की व लड़के का जीवन खराब हो जाता है। शबाना की माँ शबाना से पूछती है शबाना तुम अब तक सोई क्यों नहीं हो? बदन तो फूँका जा रहा है अम्मा। आज उमस भी गजब की है। अंग्रेजी दवाओं का असर बहुत ज्यादा है। उसकी माँ पंखा झल रही है परन्तु वह बिल्कुल भी होश में नहीं है।

शबाना के दिल में शाम से एक ख्वाहिश बार-बार दस्तक दे रही है कि शहर जाने से पहले एक दफा उसे देख ले। अब जिन्दगी का कोई भरोसा नहीं रह गया है। कब उसकी डोली इस घर से रुखसत हो जाए। किसको भेजें उसे उसके पास? उसके अब्बा जान ने सबके हाथ काट दिए थे। शबाना आसमान पर आँखें टिकाये अपनी जिंदगी के उतार-चढ़ावों को सोच रही है। वह हिचकी ले रही है। नासिरा शर्मा लिखती है, “हिचकियों की आवाज़ सुनकर अम्मी हड़बड़ाकर उठ बैठी और उसके सिर को सीने से लगाकर सहलाने लगीं, अपने को संभालो शब्बो बेटा, अपने को संभालो मेरी जान! दोनों बहनें घबरायीं—सी पलंग के पापताने आकर बैठ गई। नसीबन सामने खड़ी होकर पंखा झलने लगी और एक-एक करके सब जाग गए। शब्बो आओ, डॉ० आ गयी है। अम्मा की आवाज़ से वह चौंक पड़ती है। उसकी नजरें सामने खड़ी लड़की की गोद में हुमकते और गौरे से गदबदे बच्चे पर टिकी हुई है। कितना प्यारा है, एकदम चाँद का टुकड़ा। उसकी बाँहें उसे गोद में लेने को मचल उठीं।”

शबाना हमेशा बेहोशी की हालत में रहती थी। डॉ० गुप्ता ने शब्बों की नब्ज देखकर बताया कि इस लड़की की हालत बहुत गंभीर है। शब्बो ने चाहा जैसे कि तुम औरतों की डॉ० हो तुम क्या बीमारी समझती नहीं हो। उधर लेट जाओ ताकि ब्लड प्रेसर ले सकूँ। शबाना उठकर दूसरे कमरे में चली गई। वह ठीक होने का दिखावा कर रही है। आज उसे अपने ससुराल से आए पंद्रह दिन हो गए न जाने कितने डॉक्टर बदल लिए हैं कितने टैस्ट करवा लिए हैं। अब भी वह ठीक होने का नाम नहीं ले रही है। दिन थोड़ा आराम से कट जाता है परन्तु रात बड़ी बेचैनी से कटती है। नींद तो हजार मिन्नतों के बाद आती है। कभी-कभी आधी रात को भी बेचैनी हो जाती है। चाचा जान शब्बो की दूसरी शादी करना चाहते हैं – क्या वह उसे छोड़ कर दूसरी शादी के

लिए राजी हो जाएँगे ? घर वाले तो राजी हो जाएँगे परन्तु शब्बो कभी खुश नहीं होगी। उसके आगे सारा आसमान धुँधला हो गया। आँखों के आगे तारे टूटने लगे। रात बहुत गहरी हो गई है। चारों तरफ सन्नाटा है। परिवारों की इस रंजिश में शबाना की माँ परेशान है। एक तरफ उसे शबाना का ख्याल है दूसरी तरफ शबाना के पिता व रइस मिर्जा नाक पर मक्खी भी नहीं बैठने दे रहे। काजिम (शबाना के पति) व शबाना का रिश्ता मियां बीबी का ही नहीं है बल्कि वे दोनों बचपन के दोस्त भी हैं। वे दोनों हमजोली हैं। दोनों परिवारों के अहम् में का विशय ऊपर है। इसके बाद आँगन में खामोशी छा गयी। ढलता हुआ चाँद फीका पड़ गया। रात को टिटहरी चीख रही

- राजेन्द्र अग्रवाल, हिन्दी साहित्य का नया क्षितिज, विवेक प्रकाशन, लखनऊ
- नासिरा शर्मा, 'पत्थर गली' कहानी संग्रह, पृ० 11
- नासिरा शर्मा, 'पत्थर गली' कहानी संग्रह, पृ० 12
- नासिरा शर्मा, 'पत्थर गली' कहानी संग्रह, पृ० 17
- नासिरा शर्मा, 'पत्थर गली' कहानी संग्रह, पृ० 18
- नासिरा शर्मा, 'पत्थर गली' कहानी संग्रह, पृ० 22
- नासिरा शर्मा, 'पत्थर गली' कहानी संग्रह, पृ० 26
- नासिरा शर्मा, 'पत्थर गली' कहानी संग्रह, पृ० 31
- नासिरा शर्मा, 'पत्थर गली' कहानी संग्रह, पृ० 35
- नासिरा शर्मा, 'पत्थर गली' कहानी संग्रह, पृ० 42

रेनू

House No 562, Sector 9,

Jind (Haryana)

Phone no- 8168717899

Pine code 126102